प्रकाशक
आरोग्य-मंदिर
गोरखपुर

पहली बार : जनवरी १९५१
दूसरी बार : नवंबर १९५४

मूल्य
अढ़ाई रुपये

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

इस अनुवादके बारेमें

'प्राकृतिक जीवनकी ओर' एडोल्फ जस्टकी प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी साहित्यमें बेजोड़ पुस्तक 'रिटर्न टू नेचर' (Return to Nature) का अनुवाद है।

इस अनुवादके साथ एक छोटी-सी कहानी जुड़ी हुई है।

गांधीजीकी आत्मकथाका हिंदी अनुवाद पहले पहल सन् १९२६ में निकला था। पुस्तक इतनी मनोहारी है कि मैं पढ़ना आरंभ करते ही उसमें तल्लीन हो गया। उसी वक्त मैंने जाना कि लोग पढ़नेके पीछे सोना कैसे भूल जाते है। उसमे गांधीजीने अपने प्राकृतिक चिकित्सा-प्रेमका भी उल्लेख किया है और बताया है कि 'रिटर्न टू नेचर' ने ही उनको प्राकृतिक चिकित्साकी ओर आकृष्ट किया और लगाया तथा इसके प्रयोगोंसे, विशेषकर मिट्टीके प्रयोगसे उन्होंने स्वयं लाभ उठाया ही, औरोंको भी लाभान्वित किया। उसी समय यह इच्छा हुई कि अगर इस पुस्तकका अनुवाद मिलता तो मैं भी पढ़ता, पर अनुवाद प्राप्त नही था। बात आई और चली गई।

सन् १९३६में जब मैं अपने रोगोंकी चिकित्साके सिलसिलेमें प्राकृतिक चिकित्सासे परिचित हुआ तो 'रिटर्न टू नेचर' का भी परिचय मिला और ज्ञात हुआ कि प्राकृतिक चिकित्साके मूल सिद्धांतोंको समझनेके लिए यह पुस्तक अत्यावश्यक है—यह तो नीवका वह पत्थर है जिसपर प्राकृतिक चिकित्साकी सारी इमारत खड़ी की गई है। अब मूलकी खोज हुई पर मूल भी मेरे खोजे हिंदुस्तानमें नहीं मिला। संयोगसे मिला जाकर सन् १९४१में एक मित्रके पास। पढ़ा, लगता था, कविता पढ़ रहा हूं, लेखक सादगीसे सत्यका अन्वेषण करता जा रहा है और उसके प्रकाशमें हमारा मोह, हमारी मूढ़ता, हमारी गलत धारणाएं विलीन होती जा रही हैं।

आत्मकथाके बाद यह दूसरी पुस्तक थी जिसने मुझे इस कदर सोचनेका सामान दिया।

इच्छा हुई कि इसका मैं अनुवाद करूं। उस समय इच्छाने और जोर पकड़ा—जब यह ज्ञात हुआ कि हिंदीको छोड़कर हिंदुस्तानकी प्रायः सभी मुख्य भाषाओंमें इसके अनुवाद मौजूद हैं और गुजरातीमें तो इसके एक नहीं पांच-पांच अनुवाद हुए हैं। किसी तरह इसका पहला अध्याय पूरा किया। लगा कि अनुवाद कर सकता हूं, पर कुछ तो अनुवादमें लगनेवाली मिहनतके ख्यालसे और विशेषकर अन्य कार्योंमें लगे रहनेके कारण अनुवादका काम आगे नहीं बढ़ सका।

इसे तीन वर्ष बीत चुके थे कि मैं जुलाई सन् १९४३में तत्कालीन सरकारद्वारा गिरफ्तार किया गया और गोरखपुर-जेलमें नजरबंद कर दिया गया। पकड़े जानेके समय ही मैंने अनुवाद पूरा करनेके विचारसे प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी पुस्तकोंके अपने ट्रंकमें यह पुस्तक और कागज-कलम भी रख लिया था। जेलमें समय काफी था, काफी ही नहीं था बल्कि वक्त काटनेका सवाल था अतः मुझे अनुवादका मुहावरा न होनेकी वजहसे अधिक समय लगनेका कोई डर नहीं था। एक विचार यह भी आया कि क्यों न समग्र प्राकृतिक चिकित्सापर ही एक पुस्तक लिखूं, पर 'रिटर्न टू नेचर' के मोहने जोर पकड़ा और मैंने इसका अनुवाद आरंभ कर दिया। जून १९४४में, जब मैं नजरबंदीसे रिहा किया गया, तब वह अनुवाद पूरा हो चुका था। तबसे अबतक यह अनुवाद पड़ा रहा। बहुत चाहा, पर कोई विश्वसनीय प्रकाशक न मिलने, प्रकाशनका अधिकार न मिलने, अच्छा प्रेस न मिलने और कागजकी दिक्कतकी वजहसे इसका प्रकाशन रुका रहा।

आज यह अनुवाद प्रकाशित हो रहा है, इसकी पांडुलिपिको सुरक्षित रखनेकी मेरी जिम्मेदारी खतम हो गई है। प्राकृतिक चिकित्साने मुझे स्वास्थ्य-दान दिया है, इस लिहाजसे इसके प्रति मेरा जो फर्ज है उसे मैंने इस रूपमें किसी अंशमें चुकानेका प्रयत्न किया है।

आशा है मेरे इस अनुवादसे औरोंको प्रेरणा मिलेगी और वे इससे अच्छा अनुवाद हिंदी जगत्को भेंट करनेका प्रयत्न करेंगे।

पाठकोंको एक बात और बता दूं वह यह कि गांधीजी सन् १९४६में प्राकृतिक चिकित्साकी ओर विशेषरूपसे रुजू हुए थे और अपना शेष जीवन इसीमें लगाना चाहते थे। वे प्राकृतिक चिकित्सा और प्राकृतिक चिकित्सकोंके भी संबंधमें लिखते रहे थे। २ जून १९४६के 'हरिजन' में उन्होंने लिखा था "कूने, जस्ट और फादर कनाइपने जो लिखा है वह सबके लिए है और सब जगहोंके लिए है, वह सीधा है, उसे जानना हमारा धर्म है। कुदरती इलाज जाननेवालोंके पास उसकी थोड़ी बहुत जानकारी होती है और होनी चाहिए।"

यहां जस्टसे मतलब उनकी उक्त पुस्तक "रिटर्न टू नेचर" (प्राकृतिक जीवनकी ओर) से ही है।

आरोग्य-मंदिर
गोरखपुर
३० जनवरी '५१

विषय-सूची

प्राकृतिक जीवनकी ओर

प्रकृतिके बोल

सृष्टिकर्ताने मनुष्यको सर्वथा नीरोग और सदाचारी बनाया; न शरीरमें कोई मलिनता थी न आत्मामें। भला, सर्वशक्तिमान, सर्वमंगलमय, सर्वज्ञ ईश्वरकी रचना अपूर्ण, सदोष, रोगी, पापी, कंगाल और दुःखी कैसे हो सकती थी ? मनुष्य पाप-तापसे विमुक्त आनंदपूर्ण स्वर्गमें रहता था। इसी स्वर्गीय आनंदकी बात सुननेपर लोग स्वर्गको पृथ्वीकी नहीं आकाशकी वस्तु माननें लगते हैं। यह सकारण है।

आज कहींपर एक भी तो मनुष्य स्वस्थ नहीं दिखाई देता। पृथ्वीपर सर्वत्र रोग और शोकका साम्राज्य है। जन्मसे मृत्युपर्यंत मनुष्यको रोग और दुःख घेरे रहते हैं। संसारमेंसे आत्मीयता, भ्रातृभाव उठ गये हैं। घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, पाप और अपराधोंने चारों ओर अपने पांव फैला रखे हैं। आज एक भी ऐसा व्यक्ति न मिलेगा जो चिंता, कष्ट, शोक, संताप, उदासी और निराशासे घिरा हुआ न हो।

मनुष्य इस दशाको क्यों पहुंचा ? प्रकृतिकी अवहेलना करके और विज्ञानके भ्रम-जालमें पड़नेके कारण।

प्रकृति माता तो आज भी हमें स्वास्थ्यका सीधा और सरल मार्ग बतानेको कुंठित नहीं है।

प्रकृतिकी सीखपर ध्यान न देनेके कारण ही मनुष्य

हजारों किस्मके रोगोंका शिकार बना हुआ है। वनके पशुओं और गगनचारी पक्षियोंने कभी अपने सिरपरसे प्रकृति माताका वरद हस्त हटने नहीं दिया। अतः वे रोगोंसे मुक्त तो हैं ही, उनमें पाप और अपराध-सरीखी वस्तु भी नहीं पाई जाती।

आज प्रकृतिके प्रांगणमें कदाचित ही कोई स्थान हो जो मनुष्यके हाथकी सफाईकी करामातसे अछूता हो, जहां अपना कुशल कर लगाकर उसने कुछ-न-कुछ बिगाड़ न दिया हो। इस कारण पशु या पेड़ोंमें रोगोंके कुछ चिह्न मिल जायेंगे; पर मनुष्यके अनंत दुःख और घोर कष्टोंकी तुलनामें उनकी कोई गिनती नहीं है।

प्रकृतिके संपर्कमें रहनेवाले पशु-पक्षी सर्वदा व सर्वथा नीरोग रहते हैं। पर उन्मुक्त प्रकृतिसे उनका संबंध-विच्छेद कर देनेपर, प्रकाश, वायु, पृथ्वी और जलसे उनका ताल्लुक तोड़ देनेपर उन्हें वह आहार नहीं मिलता जो प्रकृतिने उनके लिए उपजाया है और तब वे सहजमें रोगोंके पंजेमें फँसने लगते हैं।

विज्ञानका चश्मा अपनी आंखोंसे उतारकर खुले दिल और दिमागसे प्रकृतिकी ओर देखनेपर हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि हमारे रोगी बने रहनेका एकमात्र कारण हमारा प्रकृतिके बोलपर ध्यान न देना। हम उसके प्रत्येक नियमको कुचलते चलते हैं। हम उसके बताये रास्तेसे भटके हुए हैं।

प्रकृतिकी न्याय-परायणताके औचित्यके संबंधमें दो मत नहीं हो सकते। जहां वह अपना कोई भी नियम भंग करनेवाले अपराधीको दंड देती है, वहां उसके नियमानुसार चलनेपर वह पुरस्कार देना भी नहीं भूलती।

कैसा भी कोई रोग क्यों न हो मनुष्य उससे मुक्त होनेका अधिकारी है, अपनी नियत प्रसन्नता प्राप्त करनेका हकदार है। एकमात्र मार्ग उसका यही है कि वह ईमानदारीसे प्रकृतिकी शरण जाय। उसे प्रकृतिके बोलोंपर चलनेकी हर तरहसे कोशिश करनी चाहिए। भोजन उसे वही ग्रहण करना चाहिए जो प्रकृति माताने उसके लिए अपने हाथों पकाया है। उसे जल, वायु, आकाश, पृथ्वी और प्रकाशसे प्राकृतिक संबंध जोड़ना चाहिए। प्रकृतिकी भाषा अत्यंत सुबोध है, वह अपने आदेश सब प्राणियोंको—पशु और मनुष्य दोनोंको बहुत स्पष्ट रूपसे देती है।

प्रकृतिकी कभी यह इच्छा नहीं रही है कि मनुष्य जीवनके सच्चे रास्ते और स्वास्थ्य-प्राप्तिकी सरल पद्धतिके संबंधमें इतना अनभिज्ञ और इतना परेशान रहे कि उसे अपने साथियों-से इन नियमोंपर वाद-विवाद करना पड़े और अपनी अन-भिज्ञताके कारण उसे चिंता और शंकाका शिकार बनना पड़े। अब हम मनुष्यसे शिक्षा न लेकर प्रकृतिकी सीख सुनेंगे।

प्रकृतिके सिखावनके ढंग कुछ निराले हैं। उसकी शिक्षा न पुस्तकोंमें लिखी मिलती है न वह बंद कोठरियोंमें बिठाकर शिक्षा देती है। वह अपनी इच्छाको साफ और सही-सही मनुष्यकी नैसर्गिक वृत्ति और ज्ञानेंद्रियोंद्वारा प्रकट करती है। संयत मनुष्यका विवेक भी जाग्रत रखती है।

संसारके हर हिस्सेके जंगली कहानेवाले लोग आज भी स्वास्थ्य-नियमोंका पालन करते हैं। यह सर्वविदित है कि प्रकृतिके इन बच्चोंकी ज्ञानेंद्रियां इतनी सतेज और नैसर्गिक वृत्ति इतनी सतर्क होती हैं कि स्वास्थ्यके लिए हानिकर या उसे

जोखिममें डालनेवाली किसी भी वस्तुको वे तुरंत ताड़ जाते हैं। उदाहरणार्थ, वे न कभी वनस्पतिशास्त्रका अध्ययन करते हैं न किसी अन्य शास्त्रका, पर जहरीले पौधोंको पहचाननेमें वे कभी धोखा नहीं खाते।

पहले विकसित मनुष्य-जातिका सुसभ्य प्राणी भी जीवन-समुद्रके तरनेको शुभ नक्षत्रोंसे ही प्रकाश लेता था और रोग एवं दुःखसे वचा रहता था। पर उसकी वुद्धिके विकासमें 'अपनी वुद्धिसे अपना नाश' रूपी खतरा छिपा हुआ था।

पशुसे ऊपर मनुष्यको जो वुद्धि मिली है वह इसलिए कि वह ईश्वरसे अपना संवंध समझ सके। ईश्वरके शिव और सुंदर रूपको जान सके। प्रभुके योग्य पुत्रकी भांति आचरण करके अपना जीवन उन्नत कर सके। मनुष्यकी वुद्धिमें ही मनुष्यकी विशिष्टताकी पराकाष्ठा छिपी हुई है। पर मनुष्यने अपनी वुद्धिका उपयोग किया अपनेको कुदरतके रास्तेसे अलग करनेमें। पहले उसने प्रकृतिके वोलकी ओरसे अपने कान वंद किये और अपनी तर्क-शक्तिकी प्रेरणापर चलने लगा। उसे अपना शिक्षक और अपना नियंता स्वयं वननेकी इच्छा उत्पन्न हुई; वह अपना ईश्वर आप ही वन वैठा। अपनी तर्क-शक्ति, वुद्धि-वलको उसने विशेप एवं कठिन अध्ययन, अन्वेपणमें लगाया। उसके आधारपर उसने जीवनके लिए भोजन, वस्त्र, कार्य, शिक्षा इत्यादिके वर्त्तमान नियम वनाये। यहींसे आधुनिक सभ्यताका जन्म हुआ।

मनुष्य-वुद्धिके इस दुरुपयोगद्वारा विज्ञानकी उत्पत्ति हुई। ऐसी गलत नींवपर खड़े किये गये विज्ञानसे अनर्थके सिवा और क्या आशा की जाती?

यहां हम औषधोपचार, रसायनशास्त्र, देह-रचनाशास्त्र और देह-धर्मशास्त्रके उपदेशों एवं उनके द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों-पर विचार करेंगे।

कुदरतकी आवाज हमेशा मनुष्यके प्रति ईमानदार रही है; पर विज्ञान बाइबिलकी कथाके सर्पकी भांति प्रारंभसे ही उसे धोखा देने, पथ-भ्रष्ट करने और गलत शिक्षा देनेमें लगा रहा। यद्यपि प्रारंभसे ही विज्ञानकी प्रशंसाके गीत गाये जाते रहे हैं कि यह सुख-शांतिका प्रदाता है, पर मनुष्यने विज्ञानकी जितनी ही अधिक सुनी, विशेषतः ओषधि-विज्ञानकी, उतना ही वह रोग और दुर्भाग्यका अधिकाधिक शिकार बना।

निश्चित रूपसे स्वास्थ्य और सुख प्राप्त करनेका एक ही उपाय है कि मनुष्य विज्ञान और विज्ञानसम्मत सभी वस्तुओंसे किनाराकशी अख्तियार करे।

विज्ञानके इस धूर्त सर्पसे पूर्णतः अपनी रक्षा कर सकना तो अत्यंत कठिन है; क्योंकि बचपनसे ही मनुष्यके कानोंमें विज्ञानकी गुनगुनाहट पड़ती रही है और पोथियोंद्वारा भी यह विष उसके दिमागमें पहुंचता रहा है। मनुष्यका अधिकांश स्वास्थ्य और सुख इसी विज्ञानकी भेंट हो गया है तथापि आज जिधर देखो उधर देवताकी भांति विज्ञानकी पूजा हो रही है।

शंका-कुशंकाओंको त्यागकर अब जब एक बार फिर मनुष्य प्रकृतिका आश्रय लेनेको तैयार हुआ तो विज्ञान आरोग्य-शास्त्र, रोगशास्त्र, कीटाणुवाद, पौष्टिक भोजन, आवश्यक क्षार, सर्दी-गर्मी इत्यादिकी पुकार मचाकर उसे पथ-भ्रष्ट करनेपर तुला हुआ है। ऐसी दशामें मनुष्यका भटक जाना

बहुत आसान है। पर उसे चाहिए कि सब ओरसे ध्यान हटाकर प्रकृतिकी आवाज, नैसर्गिक वृत्ति, विवेक, ज्ञानेंद्रियपर चलनेका प्रयत्न करे।

प्रश्न यह उठता है कि क्या आजका मनुष्य प्रकृतिसे वही पथ-प्रदर्शन प्राप्त कर सकता है जो पशु अपनी नैसर्गिक वृत्तिके द्वारा पाता है?

इसमें संदेह नहीं कि मनुष्यको प्रकृतिकी आवाजपर चलना बंद किये एक युग हो गया। इस कारण उसकी नैसर्गिक वृत्ति और विवेक शिथिल हो गये हैं और ज्ञानेंद्रियां निस्तेज हो गई हैं तथापि हमारे पथ-प्रदर्शन करनेभरको वे पर्याप्त हैं। कवि-वर गेटेने लिखा है:

> **"हमारे हृदयमें बैठा हुआ देवता बहुत मंद-मंद बोलता है, आवाज धीमी है उसकी, पर है स्पष्ट। वह देवता हमें बताता रहता है कि हम क्या ग्रहण करें और क्या नहीं।"**

प्रकृतिकी वाणीपर ध्यान देना आरंभ करनेपर एक बार फिर प्रत्येक वस्तु मेरे सामने स्पष्ट हो गई। विशेष-विशेष विषयोंके संबंधका ज्ञान, जिसकी प्राप्तिकी मुझे आवश्यकता थी, प्राप्त हो गया। इसके लिए मुझे किसी प्रकारके अन्वेषण या शोधमें अपना समय गंवाना नहीं पड़ा।

जो कुछ मैंने सीखा है, कुदरतसे ही सीखा है। उसीने मुझे रास्ता दिखाया है।

मनुष्य जितना ही अधिक प्रकृतिकी ओर ध्यान देगा उतना ही उसका विवेक और नैसर्गिक वृत्ति जाग्रत होगी और ज्ञानें-

द्रियां सतेज होंगी। आज भी वह बच्चों और पशुओंसे प्रकृतिके निर्देशोंके संबंधमें बहुत कुछ सीख सकता है। इन सौभाग्य-शाली जीवोंने अपने पथ-प्रदर्शकके भावोंकी रक्षा की है। हर गाढ़े समयपर हमें इनसे सहायता लेनी चाहिए।

विज्ञानके मोहक रूपसे बचनेकी शक्ति प्राप्त कर लेनेपर प्रकृति मनुष्यका आसानीसे पथ-प्रदर्शन कर सकेगी। फिर स्वास्थ्य और सुखके मिलनेमें क्या देर लग सकती है? तब मनुष्यकी दशा समुद्रमें पड़ी उस बेपतवारकी नावकी भांति नहीं रह जायगी कि जिसके भाग्यमें चट्टानोंसे टकराकर टूट जाना ही बदा है।

प्राकृतिक स्नान

पिछली शताब्दीमें अनेक प्रतिभाशाली एवं महान व्यक्ति प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीके उन्नयनमें लगे रहे। उनकी प्रतिभाने उन्हें प्रकृतिके नियमोंसे परिचित कराया। प्रिसनीज, स्क्राथ, ग्रेहम, रूसो, रिकली, कनाइप, कूने, डेंसमूर, ट्राल आदिने इस दिशामें महान कार्य किये और अक्षय कीर्ति कमाई। उन्होंने अंधेरेमेंसे प्रकाशकी किरणें खोज निकालीं।

पर इन सभी सज्जनोंने नैसर्गिक वृत्तिको पथ-प्रदर्शनका मौका नहीं दिया और न कभी प्रकृतिकी अन्य सब आवाजोंका, जिनका मैंने अक्सर जिक्र किया है, पूरी ईमानदारीसे अनु-सरण किया। उन्होंने बच्चों और पशुओंके जीवनका भी पूरा अध्ययन नहीं किया। ये छोटे प्राणी आज भी इस सभ्यता-के युगमें पले प्रौढ़ मनुष्योंकी अपेक्षा प्रकृतिकी राहका अधिक

अनुसरण करते हैं। इन सज्जनोंने प्रकृतिके उपादानों एवं इच्छाओंपर भी ध्यानपूर्वक और समझदारीसे विचार नहीं किया इसलिए उनकी शिक्षा और उनका बताया मार्ग पूर्ण नहीं है। उसमें अनेक भूलें और गलतियां मिलती हैं। उनकी उपचार-पद्धतियोंको लोग अधिकतर भूल गये हैं और वह दिन दूर नहीं है जब वे विस्मृतिके गर्तमें सर्वथा विलीन हो जायंगे।

मनुष्यको प्रकृतिसे अपना संबंध-विच्छेद किए हजारों वर्ष हो गए। अब धीरे-ही-धीरे वह प्रकृति और उसके नियमों-के संबंधमें अपना कर्तव्य समझ सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीके निर्माणमें हाथ बटानेवाले सभी सज्जन हमारी अधिक-से-अधिक प्रशंसाके पात्र हैं। वे सर्वांगीण सत्य प्राकृतिक नियमोंके निकट पूरी तरहसे नहीं पहुंच सके एवं उनकी पद्धति सदोष है। इसके लिए न तो हमें उनकी निंदा करनी चाहिए, न उन्हें दोषी ठहराना चाहिए।

दुनियाके सभ्य समाजमें हुए अबतकके सभी आंदोलनोंमें प्राकृतिक चिकित्सासंबंधी आंदोलन सबसे अधिक गंभीर और शक्तिशाली है। उसका संबंध मनुष्यकी सबसे बड़ी निधि—स्वास्थ्यसे है। स्वास्थ्यपर ही उसके जीवनके सारे आनंद एवं खुशियां निर्भर हैं, और स्वास्थ्य ही उसे प्रत्येक प्रकारके दुःख, कष्ट और त्राससे बचा सकता है। अतः इस विषयपर अपने विचार प्रकट करते समय हमें न किसीके संबंध-में चुप रहने और न किसीके दोषोंपर परदा डालनेकी जरूरत है। हमें चाहिए कि इस महान कार्यमें लगे हुए लोगोंपर अपनी सतर्क दृष्टि रखें और प्रत्येक वस्तु, हितों और व्यक्तियों-को उसके सामने गौण समझें।

इस दृष्टिसे मैं अपने पहलेकी प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति और पुराने चालके शाकाहारकी गलतियां प्रकाशमें लानेसे नहीं झिझकूंगा। पर ऐसा करनेमें किसीको कष्ट पहुंचानेकी मेरी जरा भी इच्छा नहीं है।

अब मैं एक ऐसी जीवन-पद्धति और चिकित्सा-पद्धतिका जिक्र करूंगा जिसका विज्ञानसे कोई संबंध नहीं है। इसमें हमें, जैसा कि मैंने पहले कई बार कहा है, प्रकृति-गुरुसे पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना होगा और निश्चय ही एक दिन एक उज्ज्वल सुंदर प्रभात-की वेलामें तमसावृत गगनको भेदकर प्रकाशकी किरणें प्रस्फुटित होंगी, जिसका मानव-जाति प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करेगी।

यह चिकित्सा-पद्धति प्रकृति-गुरुकी भांति ही अत्यंत सीधी-सादी एवं सरल है। इस पद्धतिमें प्रत्येक रोग और रोगोंकी एक ही प्रणालीसे चिकित्सा होती है और इसकी मान्यता है कि सभी रोगोंका कारण अप्राकृतिक जीवन है तथा प्रकृतिके नियमों एवं कार्योंमें कहीं वैषम्य नही है। मेरी धारणा है कि सभी प्रचलित प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतियां धीरे-धीरे इस एक सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिमें विलीन हो जायंगी।

इस पद्धतिमें, जिसे सीखना कहा जाता है उस अर्थमें, सीखनेको कुछ नहीं है। कोई भी, जिसने अपनेको आधुनिक विज्ञानकी चकाचौंधसे मुक्त कर लिया है एवं बुद्धिमत्ताको आधुनिक अर्थोंमें ग्रहण करनेसे अपनेको बचा लिया है, इसका व्यवहार कर सकता है। इस पद्धतिका अनुसरण करनेवाला सारा चिकित्सक समुदाय, भेषज-पंडितों आदिकी गुलामी करनेसे और परवशतासे बच जाता है।

प्रकृति कभी गलती नहीं करती। अतः प्रकृतिमें वह

विरोधाभास और चूक नहीं है जिसके कारण लोग प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीको अपनाते झिझकते हैं।

जो रोगी हर तरहका पथ-प्रदर्शन प्रकृतिसे ही प्राप्त करता है उसे प्रकृति विना किसी प्रकारकी कठोरता दिखाए बड़ी कोमलतासे, विना कष्टकर अभावोंमें डाले, बड़े आराम, मौज, शीघ्रता और निश्चयात्मक भावसे स्वास्थ्य, शक्ति और जीवनके तेजवान कुसुमोंसे भरे, हरे-भरे प्रकाशपूर्ण उद्यानका अधिकारी बनाती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि सख्त-से-सख्त प्राणलेवा रोग, जिन्हें देखकर चिकित्सक अपनेको असहाय पाता है, प्रकृतिके हाथों पड़कर अपनी भयंकरता खो देते और नष्ट हो जाते हैं।

सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिकी रोग-भंजक शक्ति मस्तिष्क और आत्मातक पहुंचती है। दिमागके काले परदे फट जाते हैं और आत्मा स्वास्थ्यदायक शक्ति जलमें अवगाहन करती है। मनुष्य पाप, दोष, घृणा, ईर्ष्या एवं अशुभ चिंतनसे मुक्ति पा जाता है और पीड़ित मनुष्यके हृदयमें फिर शांति, आनंद, मातृभाव एवं प्रसन्नताको स्थान मिलता है।

अंतमें नूतन वसंत अपनी उषा सुंदरी लिए अवतरित होता है और मनुष्यको इस पृथ्वीपर स्वर्गका आनंद मिलने लगता है।

मैं अपनी चिकित्सा करते वक्त एक बार प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीकी गलतियों, उलझनों एवं इसके द्वारा मनुष्य और प्रकृतिके बीच खड़े किए गए झगड़ेको देखकर इससे भाग खड़ा हुआ था। जिस प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिका मैं वर्णन करने जा रहा हूं, अंतमें जाकर उसीमें मुझे सत्य, शांति और आनंद मिला।

जब इस शताब्दीमें लोगोंने नैसर्गिक वृत्तिद्वारा प्रेरित होकर एक बार फिर प्रकृतिकी राह पकड़ी तो उन्हें ज्ञात हुआ कि सभी रोग शरीर एवं रक्तके दूषित होने—उनमें रोगोंके कीटाणु एवं विजातीय द्रव्यके प्रवेश पानेसे होते हैं। इस सत्यकी जानकारीके बाद औषधोपचारकी सीखके अनुसार रोगियोंके शरीरमें विष एवं कोई भी असजातीय वस्तु—दवा आदि डालकर रोगका भूत भगानेकी कोशिश बंद कर दी गई। फिर लोगोंने रोगी शरीरमेंसे विजातीय द्रव्य निकालनेकी कोशिश प्राकृतोपचारके केवल एक साधन—जलद्वारा की।

इस दिशामें विंसेंट प्रिसनीज नामक एक किसान सज्जन अग्रणी थे। इसलिए उन्हें आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीको सही नींवपर खड़ा करनेवाला पहला आदमी कहना चाहिए।

आरंभमें जल-चिकित्सा-प्रणाली ही प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली थी। पहले पहल केवल जल-चिकित्सालय स्थापित हुए।

इसलिए मेरी पहली कोशिश यही हुई कि मैं स्वयं पहले प्रकृतिसे जलके सही प्रयोग सीखूं।

इस कोशिशमें मैंने महसूस किया कि मेरी अंतर्ध्वनि, जिसे नैसर्गिक वृत्ति कहनी चाहिए, जलके किसी खास प्रयोगके लिए प्रेरित नहीं कर रही है।

पर मुझे कुछ वनवासियोंसे ज्ञात हुआ कि प्रकृतिके प्रांगण-में विचरनेवाले पशु, जो अपने सारे कार्य नैसर्गिक वृत्त्यनुसार करते हैं, स्नानके विषयमें कुछ खास नियम बर्तते हैं।

मैंने उनकी आदतोंका अध्ययन करना आरंभ किया और इन तथ्योंपर पहुंचा।

नदीमें कूदकर सारे बदनको धो-धोकर नहाना प्रकृतिके अनुकूल नहीं है। नदी अथवा टबमें नहाते वक्त सारे बदनको भिगोना प्रकृतिके विरुद्ध है।

धरतीपर विचरनेवाले पशु नहाते वक्त सारे बदनको भिगोना नापसंद ही नहीं करते वरन् ऐसा करते घबराते भी हैं। अगर आप किसी पशु (खास तौरसे बंदर) को पानीमें उछाल दें तो देखेंगे कि वह बड़ी आतुरतासे किनारेपर पहुंचनेकी कोशिश करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सभी पशु बड़ी अनिच्छासे और सो भी दबाव पड़नेपर ही स्नान करते हैं।

अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेके आदी घरेलू पशुओंमेंसे इक्के-दुक्के पानीसे प्रीति करनेवाले मिल जाएं तो उन्हें नियमका अपवाद ही समझना चाहिए।

देखा यह जाता है कि पृथ्वीपर विचरण करनेवाले उच्च प्रकारके पशु (स्तनपायी पशु), खास तौरसे जंगली सूअर और हरिन, मुक्त प्रकृतिके साथ (जंगलमें) रहते समय आदतन छोटे पंकिल दलदलों या गढ़ोंमें लोटते हैं। पहले वे धरतीसे केवल अपना पेट सटाते हैं, फिर उसे कीचड़में इधर-उधरसे रगड़ते हैं।

इसके बाद पशु उठता है और साधारणतया अपना कूल्हा और गुदाद्वार कीचड़में गड़ाकर बैठता है। इसके बाद वह कुछ क्षणतक कीचड़में लोटता है, उसका सारा बदन धरतीके संपर्कमें आ जाता है और फिर उठकर वह अपने सारे शरीरको सूखी जमीन, पेड़ या अन्य किसी चीजपर रगड़ता है। पशुओं-की इस क्रियाको शिकारी लोग 'गदह लोट' कहा करते हैं।

अब देखिए पक्षी क्या करते हैं। वे सोते या नालेपर

जाकर अपनी गरदन पानीमें डुबोते हैं और इस प्रकार गरदन और पीठके बीच बनी गहरी जगहके द्वारा और पंखोंको पानीमें छपककर अपने शरीरपर पानी छिड़कते हैं। फिर वे अपनी चोंच, गरदन और पंख-कुहनियों—यह नाम मैं दो पंखोंके जोड़को दे रहा हूं, उसकी शकल मनुष्यकी कुहनी-सी होतीहै—से अपने शरीरको रगड़ते या घिसते हैं।

कई बार यह निरर्थक प्रश्न किया गया है कि जब कि पक्षी केवल स्वच्छ जलमें स्नान करते हैं, हमारे जंगलका राजा सुंदर लाल हरिण, जो हमेशा अपने शरीरको साफ रखता है, अपनी मांदको भी गंदी होनेसे बचाता है, और भी हर तरहसे साफ रहता है कीचड़ मिले जलमें नहाते वक्त क्यों लेटता है।

इस संबंधमें मेरा मत यह है कि स्तनपायी पशु कीचड़में इसलिए नहाते हैं कि वे अपने पेट और जननेंद्रियको कीचड़में अच्छी तरह रगड़ और घिस सकें। बहते स्वच्छ जलके नीचेकी कठोर भूमिपर ऐसा कर सकना संभव नहीं है।

पक्षियोंकी बनावट पशुओंसे भिन्न होती है। वे अपने शरीरको अपने अनेक अंगोंसे रगड़ और घिस सकते हैं। अतः उन्हें इस कार्यके लिए कीचड़की जरूरत नहीं होती।

कीचड़की आवश्यकता शरीरको रगड़नेके लिए ही होती है, इस बातको जंगलमें रहनेवाले सभी लोग युक्तिपूर्ण मानते हैं।

तब यह बात तो साबित हो जाती है कि उच्च प्रकारके पशु स्नान करते हैं।

अन्य पशु इसलिए स्नान नहीं करते; क्योंकि प्रकृतिने उन्हें ऊंचे पहाड़ और पथरीली जगहमें रहनेको बनाया है, जहां जल सदा नहीं मिलता। हिंसक जानवर भी स्नान नहीं करते।

ये क्यों स्नान नहीं करते यह भी स्पष्ट[1] है। स्नानसे शांति मिलती है, यदि शिकारपर जीनेवाला जानवर शांत हो जाय तो उसका काम ही बिगड़ जाय। उनके लिए यह स्वभावतः आवश्यक है कि वे खूंख्वार और गरम बने रहें, तभी वे अपना शिकार कर सकते हैं। उसकी खूनकी यह चाह[2] उनके मांसाहारी होनेका कारण है।

फिर कोई कारण नहीं कि जीवोंका सिरमौर मनुष्य क्यों न स्नान करे। यही मानना ठीक होगा कि प्रकृति चाहती है कि मनुष्य स्नान करे ताकि उसकी शारीरिक और आध्यात्मिक शक्ति बनी रहे और उनका पूर्ण विकास हो सके।

मनुष्यकी नैसर्गिक वृत्ति हमेशासे उसे स्नानके लिए प्रेरित करती रही है। यद्यपि उसके अंदरकी आवाज उसे साफ-साफ बता नहीं रही है कि वह किस तरह स्नान करे;

---

[1]घरेलू कुत्ता जब तेज गर्मी पड़ती है तो कभी-कभी पानीकी जगहमें चला जाता है, इसे स्नानका नाम नहीं दिया जा सकता।

[2]मांसाहारके कारण शिकारी जानवरके मुंहमें खून किस प्रकार लग जाता है, यह आसानीसे समझा जा सकता है।

शिकारी कुत्ता जबतक उसे निरामिष भोजन दिया जाता है शिकारपर हमला न कर केवल शिकारको हांकनेका काम करता है, पर ज्यों ही उसे गोश्त खिलाने लगते हैं वह शिकारको पकड़ने और मारनेका काम करने लगता हैं।

एक अजायबघरके एक बंदरका स्वभाव बड़ा स्नेही और शांत था। पर जब उसे गोश्त खिलाने लगे तो वह बदमिजाज हो गया और अपने रखवालेको भी, जिससे पहिले उसकी दोस्ती थी, काट खानेको दौड़ने लगा।

यदि शिकारी जानवर क्रूर और खूंख्वार न हो तो शिकार कर ही न सके।

फिर भी प्रत्येकको अपना पेड़ू, मलद्वार, जननेंद्रियको जलद्वारा ठंडा रखनेकी आवश्यकता प्रतीत होती ही है।

अतः पशु अपने शरीरकी बनावटके अनुसार अलग-अलग रीतिसे स्नान करते हैं। स्तनपायी पशु और पक्षी भिन्न-भिन्न रीतिसे स्नान करते हैं।

जिस किसीने पशुओंको ध्यानपूर्वक स्नान करते हुए देखा होगा उसे इस बातकी प्रतीति हुई होगी कि पशु कीचड़ (या पानी) में स्नान करते वक्त अपनी जननेंद्रियको ठंडा करने या रगड़नेका बहुत ध्यान रखते हैं। इससे यह भलीभांति समझा जा सकता है कि मनुष्यको, जब कि वह खास तौरसे खुलेमें बिना किसी बाहरी वस्तु या किसी व्यक्तिकी सहायतासे स्नान करता है, किस प्रकार स्नान करना चाहिए।

अब मैं प्राकृतिक स्नानका वर्णन करूंगा। इन दिनों सब
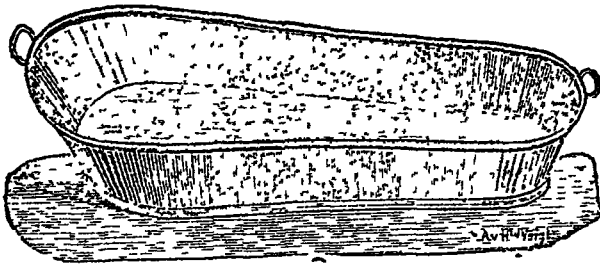
प्राकृतिक स्नानके लिए टीनका बना हुआ टब

लोग घरमें कमरोंमें ही स्नान करते हैं और सबको सब समय बाहर खुली जगहमें स्नानकी सुविधा भी नहीं है। अतः लोगोंको पानी रखनेके लिए टबकी या किसी पात्रकी आवश्यकता पड़ती

है। इस स्नानके लिए कोई भी पात्र या टव' हो सकता है पर वह इतना बड़ा जरूर होना चाहिए कि उसमें पैर सिकोड़कर घुटने ऊंचे किए हुए आसानीसे वैठा जा सके।

स्नानार्थीको अपने टवमें साढ़े तीन इंच गहरा पानी, जो स्वाभाविक ठंढा हो, भरकर इस प्रकार वैठना चाहिए कि जल उसके पैर, नितंव और जननेंद्रियके अधिकतर भागपर आ जाय। नितंव और पैरके तलवे टवके पेंदेसे लगे रहें और घुटने हमेशा ऊपर उठे रहें।

लकड़ीका वना हुआ एक टव
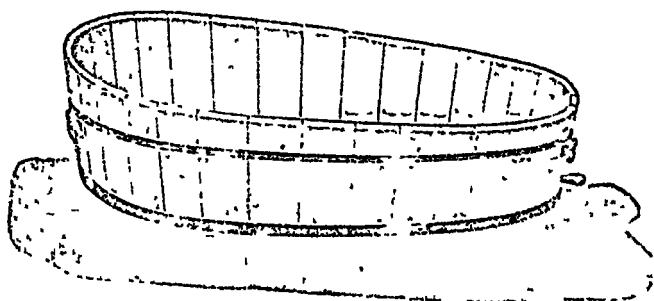
इस प्रकार टवमें वैठनेके वाद सटे हुए घुटने फैला दिए जाते हैं और पानीको हथेली (चुल्लू) से पेड़ूपर जोरसे मारा जाता है।

इस प्रकार पेड़ूपर पानी मार लेनेके वाद तुरंत पेड़के वीच-के भागको, दोनों किनारोंको और सारे पेड़को ही एक या दोनों हाथोंसे तेजीसे मला जाता है। पानी मारना और पेड़ू रगड़ना

'टव जस्ते और लकड़ी दोनों ही प्रकारके हो सकते हैं, पर लकड़ीके वने टवको अधिक लाभकर समझना चाहिए।

थोड़ी ही देर चलता है और फिर यदि स्त्री यह स्नान ले रही है तो उसे ऊरुसंधि (दोनों जांघोंके बीचका भाग) और जननेंद्रियके ऊपरी भागको खुले हाथसे जलके अंदर (टवके पेंदेमें नितंब लगे रहेंगे तो यह भाग जलके अंदर ही रहेगा) रगड़ना चाहिए। पुरुष भी ऊरुसंधिके चारों ओर, अंडकोषको और मलद्वार और जननेंद्रियके वीचके सीवनके चारों ओर पानीके अंदर ही खुले हाथसे रगड़ें। इसके वाद हाथोंसे पानी ले-लेकर सारे शरीरको धो डालना चाहिए। शरीर धोनेमें देर न लगे इसके लिए इस काममें किसी दूसरे आदमीसे भी सहायता ली जा सकती है। फिर सारे शरीरको खुले हाथोंसे (तौलिए या अंगोछेसे नहीं) रगड़-रगड़कर अच्छी तरह सुखा लेते हैं। शरीरको सुखानेके लिए तौलिए या अंगोछेका व्यवहार विल्कुल न करना चाहिए।

अच्छा हो कि स्नानके वाद रगड़नेकी सारी क्रिया खुद ही करें। इससे कसरतका भी लाभ मिलेगा। जरूरत समझी जाय तो शरीरको दूसरेसे भी रगड़वाकर सुखाया जा सकता है। इससे भी लाभ होगा, हानिकी कोई संभावना नहीं है। शरीर रगड़नेके संबंधमें अपने विचार मैं विस्तारसे फिर कहूंगा।[1]

स्नानके वाद कमरेमें और सुविधा हो तो खुली जगहमें थोड़ी देर नंगे वदन टहलना अच्छा है। पर स्नानके वाद शरीरमें गर्मी आ जाय, इसका सदा ध्यान रखना चाहिए।

---

[1]स्नानके साथ जननेंद्रिय धोने और रगड़नेकी जो क्रिया वताई गई है वह खास तौरसे स्त्रियोंके लिए है पर पुरुषोंके लिए भी वहुत लाभदायक है। इससे जननेंद्रियकी उत्तेजना और जलन खास तौरसे दूर होती है

तेजीसे टहलनेसे कसरत या किसी भी श्रमसाध्य कार्यसे गरमी जल्द आ जाती है। यदि टहलने या कसरत आदिद्वारा गरमी न लाई जा सके तो कंबल वगैरह कुछ गरम चीज ओढ़कर लेट रहना चाहिए।

उष्णता और शक्तिके स्रोत धूपमें रहकर शरीरमें गरमी लाना अति उत्तम है।

प्राकृतिक स्नान कितनी देरतक किया जाय? इसका उत्तर शरीरकी स्थिति और गरमीपर निर्भर है। इस विषयमें प्रत्येक-को अपनी रुचि समझने और अंदरकी आवाज सुननेकी कोशिश करनी चाहिए। ठंडकके दिनोंमें दो से पांच मिनटतक यह स्नान करना काफी होता है। गरमीके दिनोंमें और खूब गरमी हो तो यह स्नान दस मिनटतक या इससे अधिक समयतक भी लिया जा सकता है। जितना समय स्नानमें लगाया जाय उस समयका आधा पेड़ू और जननेंद्रिय भागके मलनेमें लगाया जाय।

स्नानके लिए जो समय यहां निश्चित किया जा रहा है उसमें स्नानके बाद सारे शरीरको धोने और उसे रगड़कर सुखानेमें लगनेवाला समय सम्मिलित नहीं है। कितनी बार यह स्नान किया जाय? इस प्रश्नका उत्तर भी प्रत्येक व्यक्तिको स्वयं देना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतुमें यह स्नान नित्य किया जा सकता है और यदि खुली जगहमें[1] सूर्यके प्रकाशमें या प्रकाशभरे कमरेमें किया

---

[1]खुलेमें स्नान करनेके लिए पत्थर या सीमेंटके टब बनवाए जा सकते हैं। सभी टब कुशादा होने चाहिए। छोटे टबमें अच्छी तरह स्नान करते नहीं बनता।

जाय तो दिनमें दो वार भी स्नान कर सकते हैं। जाड़ेके दिनोंमें यह स्नान दो-तीन दिनमें एक वार करना काफी होगा। कभी-कभी कुछ समयके लिए इस स्नानको विल्कुल भी वंद कर दे सकते हैं।

ज्वरसे जलते हुए रोगी और पुष्ट शरीरवाले, ठंडी देह-वाले, कमजोर, रक्ताभावके रोगीकी वनिस्वत अधिक वार स्नान करेंगे।

कई लोग यह स्नान थोड़ी देरतक करते हैं और कई वार करते हैं; कई इसे देरतक करना और देरमें करना पसंद करते हैं। ये दोनों वातें प्रकृतिके संपर्कमें रहनेवाले वनके पशुमें भी देखी जाती है।

प्राकृतिक स्नानके लिए गरम पानी कभी न लिया जाय। यदि यह स्नान कमरेमें किया जाय तो उसकी खिड़कियां खुली रहनी चाहिए ताकि कमरा ठंडा रहे।

स्नानके वाद पैरों और मलद्वारको अच्छी तरह साफ पानी-से धो डालना चाहिए। इससे ये स्थान साफ रहेंगे। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यह वहुत आवश्यक है।

यह स्पष्ट है कि खुली जगहमें स्नान करना अत्युत्तम और अधिक प्राकृतिक है।

खुलेमें प्राकृतिक स्नानकी सुविधा हर कहीं भी मिल सकती है; क्योंकि जहां आदमी रहते हैं वहां थोड़ा वहुत पानी तो आसानीसे मिल ही जाता है।

सारा शरीर डुवोकर स्नान करनेकी सुविधा प्रकृतिके प्रांगणमें हर जगह नहीं है। ऐसा स्नान वहुत थोड़ी-सी जगहोंमें किया जा सकता है—केवल उन्हीं जगहोंमें जहां वड़ा नाला,

नदी, झील या तालाब होता है। इसलिए खुलेमें प्राकृतिक स्नानकी सुविधा साधारण स्नानकी सुविधाकी बनिस्वत अधिक जगहोंमें और आसानीसे पाई जा सकती है।

प्राकृतिक स्नान जिस प्रकार बैठकर लेते है उसमें बड़ा आराम मिलता है। वह आसन कष्टकर तो किसी प्रकार है ही नहीं।

प्राकृतिक स्नान जलके अन्य सभी प्रयोगोंसे भिन्न है, खास तौरसे इस मानेमें कि यह स्नान करते समय नहानेवाला चुपचाप बैठा या लेटा नहीं रहता बल्कि शरीरके कुछ विशेष अंगोंको हरदम रगड़ता रहता है और अंतमें अपने सारे शरीरको तौलिए या इसी तरहकी किसी अन्य चीजसे नहीं बल्कि खुले हाथसे रगड़ता है।

आजतकके प्रचारित जलके सभी प्रयोग इस प्राकृतिक स्नानसे भिन्न हैं, अतः वे प्राकृतिक नहीं हैं। उनसे लोगोंको कभी समुचित लाभ नहीं हुआ और अनेक बार वे नुकसान करते देखे गये हैं। प्रकृति यह चाहती है कि लोग उसकी इच्छा-नुसार ही चलें। अबतकके प्रचलित सभी स्नानोंसे प्राकृतिक स्नान प्रत्येक दृष्टिसे अधिक सरल और लाभकर है। इसमें थोड़ेसे पानी (गरमं पानीकी तो बिलकुल नहीं) की जरूरत होती है और यह अपने आप लिया जा सकता है। इसमें किसी सहायककी आवश्यकता नहीं होती। इसके लिए जिस टबकी जरूरत होती है वह बहुत साधारण प्रकारका होता है और अन्य टबोंकी बनिस्वत आसानीसे हटाया-उठाया जा सकता है। बड़े मजेमें आप इसे खाटके नीचे सरका दे सकते हैं और सबेरे उठते ही उसमें स्नान कर सकते हैं।

इसलिए यह आशा की जाती है कि इस स्नानका अन्य जटिल स्नानोंकी वनिस्वत कुटुंवोंमें और सावारण जनतामें अधिक शीघ्रतासे प्रचार होगा।

यात्रा करते समय या अन्य किसी मौकेपर इस स्नानके लिए आवश्यक टव या कोई वड़ा पात्र न मिले तो यह स्नान एक अन्य सरल रीतिसे किया जा सकता है। इस रीतिमें केवल हाथ धोनेवाली चिलमची (टीनिया) की जरूरत होती है।

स्नान करनेवाला पानीसे भरी चिलमचीपर वैठ जाता है और मलद्वारको धोता तथा जननेंद्रियपर हाथसे कुछ मिनटतक पानी डाल-डालकर ठंडा करता रहता है। इसके वाद क्रमसे पेड़ू और सारे शरीरको धोकर वदनको रगड़-रगड़कर सुखाते हैं।

इस तरहका स्नान कहीं भी किसी समय भी किया जा सकता है और इससे सरल और सादा दूसरा स्नान संभवतः है भी नहीं।

यह स्नान इस प्रकारसे लेनेके वाद भी थोड़ी देरतक नंगे वदन टहलना अच्छा है। इससे स्नानके लाभमें वृद्धि होती है।

प्राकृतिक स्नान चाहे किसी रीतिसे भी क्यों न लिया जाय, सभी प्रचलित जलप्रयोगोंसे अधिक लाभकारी है।

मैंने इस स्नानकी रीतिपर जितना ही अधिक विचार किया मुझे अधिकाधिक स्पष्ट होता गया कि स्नानकी यह रीति नहानोंकी अन्य सभी रीतियोंसे निश्चय ही श्रेष्ठ है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पृथ्वीके आदिम निवासीको हफ्तों और संभवतः कभी-कभी महीनोंतक गीली जगहमें चलना पड़ता था और कभी-

प्राप्त करना चाहिए। इसके लिए किसी तरहकी चालाकीकी जरूरत नहीं है, न इसके लिए कुछ जानने या सीखनेकी आवश्यकता है वरन् स्वास्थ्यका सही रास्ता पानेके लिए उसे उन सभी झूठी और अनावश्यक बातोंको भुला देना चाहिए जो जबरदस्ती सीखनी पड़ी हैं। उसे अपने सिरपरसे अक्लके सारे बोझको उतार फेंकना चाहिए। इस बोझके नीचे आत्मा और मन दबे रहते हैं और इसने मनुष्य-जातिको मूर्ख और अंधा बना रखा है। जब मनुष्य प्रकृतिके बोल सुनने लगता है तब उसे और किसी चीजके जाननेकी इच्छा नहीं रह जाती। वह यह नहीं जानना चाहता कि प्रकृतिके नियमोंपर चलनेपर रोगोंका क्यों नाश हो जाता है और क्यों शरीरका स्वास्थ्य एवं शक्ति बढ़ जाती है और न उसे शरीर, मन एवं आत्माके व्यापारके समझनेकी ही जरूरत रह जाती है। मनुष्यका आजका ज्ञान अविश्वसनीय है, मनुष्य इसके चक्करमें पड़कर भटक जाता है।

बच्चेकी तरह प्रकृति माताकी गोदमें अपनेको डाल देनेमें ही मनुष्य-जातिका कल्याण है।

प्रकृतिविरोधी सभी आदतें एक साथ छोड़ सकना संभव नहीं है। यदि कुछ आदतें अच्छी हों तो मैं उन्हें भी बुरी आदतोंके साथ धो बहाना नहीं चाहता और आजके मनुष्यकी हर एक चीजको सकारण समझनेकी आदतको भी तरजीह देना चाहता हूं।

इसलिए मैं रोगकी उत्पत्तिके संबंधमें अपने विचार समय-समयपर उपस्थित करता रहूंगा और प्राकृतिक स्नान एवं अन्य प्राकृतिक चिकित्साके उपादानोंके उग्र प्रभावशाली होनेका कारण बताऊंगा।

रोग अप्राकृतिक भोजन करने अर्थात् ऐसा भोजन करनेसे, जिसे प्रकृतिने मनुष्यके लिए नहीं बनाया है और न उसकी पाचन-प्रणाली ही उसके पचाने योग्य बनी है, पैदा होते हैं। ऐसी दशामें अप्राकृतिक खाद्योंके पेटमें जानेपर या तो उनका पाचन बिल्कुल होता ही नहीं और यदि होता भी है तो आधापर्धा। जिस अंशका पाचन नहीं होता वह अंश विजातीय द्रव्य बनकर शरीरमें पड़ा रहता है, अंग-प्रत्यंगमें घुस जाता है, सड़ने[1] लगता है और मनुष्यके लिए रोग, दुःख तथा कष्टका कारण बनता है।

जल, प्रकाश आदिके अभावके समान मनोभावोंका कठिन आवेग भी स्नायुसंबंधी क्रिया और पाचनक्रियाको बिगाड़कर और पंगु बनाकर तथा विजातीय द्रव्यके सड़नेमें सहायक होकर या प्रोत्साहन देकर रोगोंका पोषण करता है और रोगोंकी उत्पत्तिका कारण होता है।

सड़न गरमी पैदा करती है जिसमें रोगोंके घातक और हानिप्रद तत्त्व निवास करते हैं।

रोगनाशके लिए सबसे पहले हमें शरीरकी भीतरी गर्मीको शांत करना चाहिए; किंतु जीवन-शक्तिको भी उद्दीप्त

---

[1]आजकल अधिक जीर्ण रोगके ही रोगी देखनेमें आते है। जब विजातीय द्रव्य तेजीसे सड़ने लगते है तो शरीरमें एक क्रांति-सी मच जाती है। ऐसी दशामें शरीर विजातीय द्रव्यको एकाएक और शक्तिशाली ढंगसे निकालने लगता है। शरीरकी इस क्रियासे तीव्र रोग (सर्दी, मियादी बुखार, निमोनिया आदि) होते हैं। शरीरमें जब इतना बल नहीं होता कि तीव्र रोग पैदा कर सके तो वह जीर्ण रोगोंका घर बन जाता है।

करना आवश्यक है। इस शक्तिके सहारे ही शरीर भोजनसे पोषण (शरीरकी मरम्मतके लिए सामान) ग्रहण करता है और विजातीय द्रव्य (रोगके विष)को पसीने, पेशाव, पाखाने-द्वारा निकालता है। जीवन-शक्तिपर ही मनुष्यका जीवन निर्भर है।

यह स्पष्ट है कि प्राकृतिक स्नान इन दोनों लक्ष्योंकी पूर्ति करता है।

रोगोंके उत्पत्ति-केंद्र पेड़पर और स्नायुओंके मुख्य केंद्र जननेंद्रियपर ठंडे जलका प्रयोगकर हम शरीरकी भीतरी गर्मी-को शीघ्र-से-शीघ्र कम करनेमें सफल होते हैं। स्नानके समयकी रगड़नेकी क्रिया भी स्नायुओंको जगाती है और शरीरके भीतर-की गर्मी कम करनेमें सहायक होती है।

इस स्नानमें गुदाद्वारका धुल जाना और उसका ठंढा हो जाना इसका विशेष अंग है।

सभी औषधियां जो प्रकृतिसे नहीं ली गई हैं एवं जो प्रकृति-के नियमानुकूल नहीं हैं चाहे उन्होंने ऊपरी लाभ बार-बार दिखाया हो पर अंतमें वे निरर्थक ही साबित होती हैं। अप्रा-कृतिक ओषधियोंके बहुतसे धोखे हैं। सभी अप्राकृतिक ओष-धियोंसे निश्चयपूर्वक नुकसान होता है और यह नुकसान चिकि-त्साके आगे-पीछे जरूर दिखाई देता है। कभी-कभी ये ओष-धियां जब भीतर बहुत अधिक नुकसान पहुंचा देती हैं तभी उसका असर बाहर प्रगट होता है। ऐसे सब अप्राकृतिक उपचार अथवा ऐसे उपचार, जो पूरी तरह प्रकृति नियमानुकूल नहीं हैं, आते-जाते रहते हैं। उन्हें कभी समाजमें स्थायी स्थान नहीं मिलता।

ओषधि-संसारमें रोज ही नई दवाएं ईजाद होती हैं, उनका प्रचार होता है और जितनी शीघ्रतासे उनका प्रचार होता है उतनी ही शीघ्रतासे वे मिट भी जाती हैं। आज कहा जाता है कि कार्बोलिक एसिडसे दुनियाका उद्धार हो जायगा, कल सैसीसाइलिक एसिडका नाम लिया जाता है, परसों किसी नये दर्दनाशकके गुण गाये जाते हैं, फिर किसी और ओषधिपर संसारके भाग्य टिके बताये जाते हैं, और अंतमें ये सभी ओषधियां हानिप्रद एवं अनर्थकारी सिद्ध होती हैं। आज तो लोग चुपचाप अपनेको उन भयानक ओषधियोंकी भेंट कर देते हैं जिनका भयानक फल भविष्यके गर्भमें छिपा रहता है।

डाक्टर फास्टने अपने स्वर्गवासी पिताके साथ अनेक वार लोगोंको ओषधियां और जादूभरे नुस्खे वांटे थे। ईस्टरके दिन लोग इसके लिए उनके प्रति भक्ति प्रदर्शित करने आए तो वे दवाके रूपमें विष वांटनेके अपने पश्चात्तापको छिपा न सके। कविवर गेटेने उनके हृदयगत पश्चात्तापको उनके मुंहसे इस प्रकार प्रकट कराया है :

"यदि आप लोग मेरे अंतर्तमके भावोंको जान सकते तो जानते कि मैं अपने पिता और अपनेको आपके समाजके कितना अयोग्य समझता हूं। हम लोगोंकी दवा करती क्या थी? रोगकी नहीं रोगीको ही समाप्त कर देती थी। किसीने इसके लिए हमसे कभी जवाब तलब नहीं किया। आज

मैं ही पूछता हूं यदि किसीने हमारी ओषधियोंसे लाभ प्राप्त किया है तो वह सामने आए। आपकी इन सुंदर एवं पवित्र घाटियों और पहाड़ियोंमें हमारी नारकीय गोलियां महामारीकी तरह आईं। मेरे दिये उस जहरने हजारोंको मौतके घाट उतारा और आज हमारे-ऐसे बेशर्म खूनियोंकी दुनिया प्रशंसा कर रही है और उसे सुननेके लिए मैं जीवित हूं।"[1]

प्रकृतिकी शरणमें जानेके बादसे जब कभी मैंने अपने स्वास्थ्य और उसकी कुशलताके लिए सच्चा उपाय जाननेकी कोशिश की है तब हर बार मैंने देखा है कि ये उपाय सर्वथा प्राकृतिक होते हैं, अर्थात् जो कुछ जब कभी मैंने प्रकृतिसे जाना है उसकी परीक्षा करनेपर वह पूर्णतया सत्य साबित हुआ है। जब प्रकृतिके नियमानुकूल सभी कार्य किए जाते हैं तब उन कार्योंकी सत्यताकी जांच व्यर्थ है। जो कार्य प्रकृतिकी इच्छा-

---

[1]गत शताब्दीके अंतमें मनुष्यजातिके रोगी-वृक्षमें एक सजीव शाखा प्राकृतिक चिकित्सा प्रस्फुटित हुई। महाकवि गेटेने इसका प्रकाश पहलेसे पा लिया था। इस महान शक्तिके सामने सभी चीजें पूर्ण स्पष्ट नहीं हुई थीं—यह उनके अंतिम वाक्य हैं—"ईश्वर! हमारा हृदय प्रकाशसे भर दो।" इसीसे प्रकट होता है कि प्रकृतिमें जो सत्य है उसके निकट वे पहुंच गये थे। प्राकृतिक चिकित्साके जन्मकी सूचना उन्हें मिल गई थी। गेटेने अपनी महान कृति "फास्ट" में जगह-जगह अपनी ओजपूर्ण कवितामें आजकी सभ्यताकी बेहूदगियोंकी कटु आलोचना की है।

नुसार होते हैं उन्हें हमेशा सत्य समझना चाहिए। पशु और पृथ्वीके आदिम निवासी जब वे प्रकृतिके संपर्कमें रहते थे तो क्या वे स्नान और भोजनपर प्रयोग करके जानते थे कि उन्हें कैसे नहाना चाहिए और क्या खाना चाहिए ? अतः प्राकृतिक स्नानको भी किसी ऐसे प्रयोगमें पड़नेकी जरूरत नहीं हुई।

इस प्रकार जब मैंने पहली बार स्नान किया तो मुझे वह लाभ और वह ताजगी मालूम हुई जो मुझे अपने जीवनमें जलके अन्य किसी स्नानसे नहीं प्रतीत हुई थी।[1]

मेरे सिवा और दूसरे जिन लोगोंने इसकी परीक्षा की उन सबको भी इसकी अनुकूलता और इससे प्राप्त हुए लाभपर आश्चर्य हुआ। सबको स्नानके समय एक बड़ी ही सुखद ठंढककी प्रतीति होती थी और स्नानके बाद उनका बदन पहलेसे ज्यादा अच्छी तरह और समान रूपसे गरम हो जाता था। प्रायः सभी लोग कहते थे कि नहान आरंभ करनेके बादसे भूख बढ़ गई है, पैर ठीक तौरसे गरम रहते हैं, त्वचा ठीक

---

[1] थोड़े ही ऐसे थे जो इस स्नानके कारण हुए रोगके उभारसे डर गये थे। उदाहरणार्थ एक सज्जनको जिन्हें पुरानी फेफड़ेकी बीमारी थी, जब उन्होंने स्नान शुरू किया तो उनका जीर्ण रोग नवीन रोगमें परिणत हो गया—रोग जानेका यह शुभ लक्षण है। इन्हीं महाशयने यह भी कहा कि धूपस्नान उनके अनुकूल नहीं पड़ता। जब धूपस्नान लेते हैं तो बदनके अंग-अंगमे दर्द हो जाता है। जब कि इस दर्दका यह मतलब है कि उनके शरीरके विजातीय द्रव्य (रोगके कीटाणुओंको) सूर्यकी किरणें अपनी जगहसे निकाल फेंकनेके लिए हटा रही है। जिन रोगियोंको प्रकृति और उसकी चिकित्सा-शक्तिका इतना-सा ज्ञान नही है वे शायद ही कभी स्वास्थ्यलाभ कर सकें।

तौरसे काम करती है, पसीना थोड़ा-थोड़ा निकलने लगा है, चित्त प्रसन्न और प्रफुल्लित रहता है, काम करनेमें जी लगता है, और भी सब तरहसे लाभ प्रतीत होता है।

इस स्नानकी तारीफमें मुझे मिले सैकड़ों पत्र और खुशी-खुशी आकर लोगोंकी गाई गई प्रशंसा मैं यहां उद्धृत कर सकता हूं। पर मैं किसी तरहके ढोल व नगाड़े बजाकर इसकी तरफ लोगोंका ध्यान आर्काषित करना नहीं चाहता, मैं चाहता हूं कि लोग स्वयं इसे कर देखें और इसके लाभको समझें।

प्रत्येक व्यक्ति जो प्रकृतिको समझता है वह जानता है कि प्राकृतिक भावोंके अनुकूल और उसकी इच्छाके अनुसार किए गए कार्य मनुष्यमात्रके लिए कल्याणके साधन हैं। ऐसा व्यक्ति इस स्नानका स्वागत अवश्य करेगा और उसे यह स्नान अकूत सुख और स्वास्थ्य प्रदान करेगा। यदि ऐसे आदमी जिनका प्रकृतिकी अवहेलना करना ही धर्म है और जिन्होंने विज्ञान और डाक्टरमें अपनी सारी श्रद्धा डुबो दी है, यदि इस स्नानका उपहास करें और इसकी ओर घृणाकी दृष्टिसे देखें तो हमें उसकी परवाह नहीं करनी है।

इस स्नानका प्रयोग आरंभ करनेवालोंको मैं इसके संबंधमें कुछ और बातें बता देना चाहता हूं। इस स्नानके गरम पानीसे किए जानेका मैं विरोधी हूं। ऐसा करना प्रकृति-विरुद्ध है। ठंढे-से-ठंढे पानीमें भी पैर और नितंब रखकर बैठना बहुत कठिन नहीं है। जहां एक बार पेड़ और जननेंद्रिय धोई और रगड़ी गई, पेड़ूके अंदर ठंढक पहुंची कि खून वहां (जो ठंढे पानीसे बहुत डरते हों वे आरंभमें यह स्नान बहुत हलके गरम पानीमें या गरम कमरेके अंदर कर सकते हैं) दौड़ आता

है और सारे बदनमें गरमी आ जाती है। पर इसपर भी जाड़ेके दिनोंमें यदि कोई यह स्नान न कर सके, गोकि ऐसा होता बहुत कम है, तो या तो वह स्नान बहुत थोड़ी देरके लिए करे या फिर बिल्कुल ही बंद कर दे। ऐसी अवस्थामें नंगे रहना, पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी रखना, जिसके बारेमें आगे चलकर मैं विस्तारसे बताऊंगा, आदि उपचारोंसे लाभ उठाया जा सकता है।

स्नानके लिए टबमें जो पानी भरा जाय वह बहुत गहरा न हो, रोगीके हाथके पंजे जितना गहरा काफी होगा। साधारणत: एक व्यक्तिके लिए तीन इंच गहरे पानीसे अधिककी जरूरत नहीं होती। स्नानके बाद शरीरको रगड़ने और कसरत करनेकी जो राय दी गई है वह कसरतके किन्हीं खास नियमों अथवा मालिशकी किसी खास पद्धतिके अनुसार नहीं होनी चाहिए वरन् इनके करते वक्त अपनी इच्छा और रुझानका ख्याल रखना चाहिए।

जिसे सुविधा हो (जो खोजता है उसे सुविधा मिल ही जाती है) वह यह स्नान खुली जगहमें ले। आरंभमें मनुष्य खुली जगहमें ही स्नान करता था। यदि वह इस स्नानसे पूरा लाभ लेना चाहता है तो फिर खुलेमें वह इसे करना आरंभ कर दे। गंदी हवा और कमरेमें बैठकर भोजन करनेके बजाय खुली जगहमें बैठकर भोजन करनेपर भोजन भी अधिक स्वादिष्ट लगता है और उससे शरीरको लाभ भी अधिक पहुंचता है।

स्त्रियोंको मासिक धर्मके समय यह स्नान बंद कर देना चाहिए पर नंगे पांव टहलना, वायु और प्रकाशस्नान करना,

मिट्टीकी पट्टी लेना आदि बंद करनेकी जरूरत नहीं है। इस समय इन्हें करते रहना विशेष लाभकारी है।

यह स्नान नदीमें, (यदि गहरी हो तो तटके निकट) झरनों एवं छोटे तालाबमें किया जा सकता है। यदि कमरेमें किया जाय तो खिड़कियां थोड़ी-बहुत जरूर खुली रहें। सबेरे कुछ भी खानेके पहले अथवा तीसरे पहर दोपहरका भोजन पच जानेके बादका समय यह स्नान करनेके लिए सर्वश्रेष्ठ है।

सभी मछलियां (जलके जीव) हवासे दूर रहना चाहती हैं और हवामें रहनेवाले सभी प्राणी अपने शरीरको पानीसे बचाते हैं और जब स्नान भी करते हैं तो अपने शरीरकी बनावटके अनुसार शरीरके कम-से-कम भागमें पानी लगने देते हैं। मनुष्य प्रकाश और वायुमें रहनेवाले सब जीवोंमें श्रेष्ठ है। यदि उसे हवा मिलनी एकाएक बंद हो जाय तो वह बहुत थोड़ी देरमें मर जायगा। यदि उसके लिए आवश्यक वायुका बहुत थोड़ा भाग भी रुक जाय तो जिस प्रकार पानीसे निकलते ही पानी बिना मछली मरने लगती है उसी प्रकार आदमीकी भी जीवन-शक्ति कम होने लगती है और वह कमजोर हो जाता है। जब आदमी प्रचलित स्नान करता है तो वह अपने शरीरको पानीमें डुबो देता है, उस वक्त वह अपने रोमकूपों जिनसे वह काफी वायु शरीरमें ले जाता है न शुद्ध वायु ही खींच सकता है और न उपयोगमें लाई हुई गंदी वायु ही निकाल सकता है। अतः इस प्रकारके स्नानसे शरीरको हानि पहुंचती है और वह कमजोर हो जाता है। यदि ऐसा स्नान बहुत थोड़ी देर, कुछ क्षणोंके लिए ही किया जाय तो शरीरमें ठंढक पहुंचनेसे उसे जो लाभ मिलता है और यह ठंढक कुछ क्षणोंमें ही शरीरमें

पहुंच जाती है—वह शरीरके उतनी देर वायुसे वंचित रहनेकी हानिसे कुछ अधिक हो सकता है। पर यदि वह स्नान प्रचलित प्रथाके अनुसार पांच, दस या पंद्रह मिनट या इससे भी अधिक देरतक किया जाता है तो इससे वहुत अधिक हानि होती है। पर यदि हमारे किसी विशेष अंगको या भागको वायु न लगे जैसा कि चमड़ेके दस्ताने पहन लेनेपर हाथोंका हाल होता है, तो उस अंगको क्षति पहुंचती है। उससे वह एक तरहसे पंगु हो जाता है। बैठक-नहान[1] लेते वक्त कमर और पेट चारों ओरसे पानीसे ढक जाता है इसलिए शरीरका यह अंग वायुसे वंचित हो जानेके कारण अकर्मण्य-सा हो जाता है और स्नान लेते वक्त समुचित रूपसे क्रियाशील नहीं रहता। अतः इस स्नानसे बहुत कम लाभ मिलता है। बैठक-नहानमें न पेड़ूपर पानी मारते हैं और न उसे रगड़ते हैं। प्राकृतिक स्नानमें पिछले जल-प्रयोगोंकी सभी गलतियां जिनके कारण स्नानका पूरा लाभ नहीं मिलता था दूर कर दी गई हैं। जलके इस प्राकृतिक प्रयोगसे जो लोगोंको बड़े-बड़े लाभ मिल रहे हैं उसका यही रहस्य है।

अव यह आशा की जानी चाहिए कि प्राकृतिक स्नानका अमीर और गरीव, छोटे और बड़े समान रूपसे आदर करेंगे और जनतामें इसका प्रचार हो जायगा। इसके द्वारा बूढ़े और जवान, वच्चे और वड़े सवको वह आनंद प्राप्त होगा जिसे सहृदया प्रकृतिमाता खुले हाथों लुटानेको उत्सुक रहती

---

[1]वैठक-नहान कूनेके कटिनहानकी तरह लिया जाता है। अंतर इतना ही है कि आदमी चुपचाप टवमें वैठा रहता है, पेड़ूको नहीं मलता।

—अनुवादक

है। यदि कोई कहे कि मैं स्वस्थ हूं अतः मुझे इस स्नानकी जरूरत नहीं है तो यह उसकी गलती है, क्योंकि प्रकृतिकी प्रधान इच्छा यह नहीं है कि रोगी ही स्नानकर खोया स्वास्थ्य प्राप्त करे वल्कि वह तो यह चाहती है कि सभी स्नान करें, स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें और सबका चेहरा प्रकाशसे दीप्त रहे। प्रकृतिके जिन अलंघ्य नियमोंके अनुसार गरमीके बाद जाड़ा और रातके बाद दिनका होना अवश्यंभावी है, उन्हीं नियमोंके अनुसार अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवाले, गंदी हवामें रहनेवाले, शराब, चाय, काफी, तंबाकूका व्यवहार करनेवालेका रोगका शिकार होना अवश्यंभावी है। इसका यह मतलब नहीं है कि इस विनाशमें पड़े हुएको वही रोग हों जिनसे लोग आमतौरसे परिचित हैं या जो दिखाई देते हैं वरन् कोई-न-कोई रोग शरीरमें अवश्य घर कर लेता है और आगे-पीछे वह स्पष्ट रूपसे प्रगट भी होता है।

कई बच्चे जब स्कूलमें जाते हैं तो उनका पढ़नेमें ध्यान नहीं लगता, वे सुस्त रहते हैं और उन्हें सबक बड़ी मुश्किलसे याद होता है। बहुधा वह लाड़-प्यारमें खराब हुए होते हैं और पाप एवं दुराचारमें फँस जाते हैं। उन्हें इसके लिए दंड दिया जाता है और अक्सर वे बुरी तरहसे पीटे जाते हैं। सही बात यह है कि वह बच्चा भयंकर रूपसे रोगसे पीड़ित है; उस निर्दोषको व्यर्थ दंड दिया जाता है। पिताको अपने प्रिय पुत्र, और पतिको अपनी प्रिय पत्नीके साथ कठोरताका और कभी-कभी राक्षसका-सा व्यवहार करते और फिर उसके लिए पश्चात्ताप भी करते आपने देखा होगा। बेचारे नहीं जानते कि शराब तथा अन्य विषका उपयोग करनेके कारण

उनके स्नायु आवश्यकतासे अधिक गरम हो गए हैं और वे बीमार हैं।

कई अन्य प्रकारके लोग भी अनेक तरहके दुराचार और अपराधमें फँस जाते हैं। ऐसे लोगोंको रोगमुक्त करने एवं स्वस्थ बनानेके बजाय जेलों और पागलखानोंमें भेज दिया जाता है।

नववधू घरमें पैर रखती है और शीघ्र ही उसके स्वभावमें परिवर्तन होने लगता है। वह वहमी, चिड़चिड़ी और मूर्छा रोगसे आक्रांत हो जाती है। "विवाहके कपड़े मैले होनेके पहले ही हृदयकी चिर संचित कामनाएं छिन्न-भिन्न हो जाती हैं।" वैवाहिक जीवनमें चिर अभिलषित सुख नहीं मिलता, स्वर्ग नरकमें परिणत हुआ प्रतीत होता है। विवाहके समय जिस युवतीको लोग सर्वगुणसंपन्न एवं सहृदया कहते थे उसे लोग धीरे-धीरे डायन कहने लगते हैं। पर उस बेचारीकी भर्त्सना करना व्यर्थ है। जिस प्रकारका अप्राकृतिक जीवन विवाहित दंपति साधारणतया व्यतीत करते हैं उसका कुछ फल तो मिलना ही है और पहला फल अक्सर पत्नीको ही चखना पड़ता है।

प्रकृतिके संपर्कमें रहनेवाले वनके पशु और पौधों (खेतके पौधे नहीं) का स्वास्थ्य, सौंदर्य और यौवन प्रत्येक जातिके लिए एक निश्चित समयतक कायम रहता है—केवल उनको छोड़कर जिनके प्राकृतिक जीवनमें मनुष्यने बाधा डाल दी है—और फिर उन सबकी मृत्यु हो जाती है।

आजके जमानेमें मनुष्योंकी हालत यह है कि बचपनमें ही किसीकी आंखें खराब हो जाती हैं, किसीको सुनाई ही कम देने लगता है, किसीके दांत गिर जाते हैं, किसीके बाल झड़

जाते हैं, कितनों ही को स्नायुदौर्बल्यका रोग हो जाता है और कितनों ही का दिमागतक कमजोर हो जाता है। आजकी अनिंदितांगी सुंदरीपर कल ही कुरूपताकी छाया पड़ जाती है, वह पीली और दुबली हो जाती है अथवा मोटी और भद्दी और अभी-अभी जो युवक उसके सौदर्यसे अभिभूत था उसे वह घृणा-स्पद प्रतीत होने लगती है।

कितने ही आदमी, जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक रहती है, चिंतित और घबराए रहते हैं; कितने ही लखपतियोंपर तो भोजनतककी चिंता सवार रहती है।

"चिंता हृदयके अंतस्तलमें निवास करने लगती है। एकांत पाते ही यह चिंता उसका कलेजा काटने लगती है, वह लुटी-सी दशामें छटपटाती रहती है।"

× × ×

"हम उस आघातसे डरते रहते हैं जो हमें कभी नहीं लगा, हम उस वस्तुके लिए रोते रहते हैं जो हमने कभी नहीं खाई।"

(गेटेके 'फाउस्ट' से)

इन सभी काली घटाओंको, जिनसे राजाके महल और रंककी झोंपड़ीकी शांति और सुख समानरूपसे विनष्ट होता रहता है, प्राकृतिक स्नान उड़ा और भगा देगा।

यह नवीन प्राकृतिक स्नान जिसे प्राचीन विशेषणसे विभूषित करना ही ज्यादा उपयुक्त होगा, मनुष्यको अपनेको जीवित रखनेकी आजकी लड़ाईके लिए जवानोंको शक्ति और

स्फूर्ति प्रदान करेगा और उसके दौड़-धूप हड़वड़ीभरे जीवनमें शांति और मधुरता भरेगा। कुत्तोंद्वारा पीछा किए जानेपर थकान और वदहवासीकी हालतमें मैंने पशुओंको अपने स्नायुओं-को शांत करने और पुनः शक्ति प्राप्त करनेको स्नानके लिए जलकी तलाश करते देखा है। आजके हतभागे मनुष्योंको जो आपसमें ही एक दूसरेका इस तरह पीछा करते हैं कि वे हमेशा थकानसे हांफते रहते हैं और उनके स्नायु हमेशा उत्तेजित-से रहते हैं। क्या ही अच्छा होता यदि उन्हें यह ज्ञात हो जाता कि प्राकृतिक स्नान उन्हें शांति और शक्ति दोनों प्रदान करेगा।

इस स्नानसे तत्काल लाभ यह मिलता है कि पेड़ूकी गरमी शांत हो जाती है, ठंडक आ जाती है और जीवन-शक्ति (पाचन-शक्ति) इस हदतक वढ़ती है कि वह विजातीय द्रव्यको और अप्राकृतिक भोजनके कम पचे या अनपचे भागको निकालने लगती है जिससे वे लोग भी, जिन्होंने अपने जीवनमें कभी किसी प्रकारके सुधारको स्थान नहीं दिया, रोगोंके आक्रमणसे वच जाते हैं।

जो इस रीतिसे वरावर स्नान करेंगे वे कभी पक्षाघात, विषाद रोग, मियादी वुखार, हैजा, नासूर, क्षय आदि रोगोंके चंगुलमें नहीं फँसेंगे।

प्राकृतिक स्नानके जो लाभ यहां वताए जा रहे हैं, इस स्नानके वाद होनेवाली अनुभूतिके आधारपर उनकी कोई भी आशा कर सकता है।

इस स्नानसे शरीरकी प्रतिक्रिया शक्ति भी वहुत अधिक वढ़ जाती है। उसकी दशा पहलेकी-सी हो जाती है जव कोई भी अनावश्यक वस्तु शरीरमें प्रवेश करते ही यह शक्ति उसे

निकाल बाहर करनेकी कोशिश करती थी। (उदाहरणके लिए जब कोई पहले-पहल सिगरेट पीनेकी कोशिश करता है तो उसे कै और मिचली आती है।)

प्राकृतिक स्नान करने लगनेके बाद सिगरेट पीनेवालोंको सिगरेट पीना अच्छा नहीं लगता। शराब और मांसके आदि-योंको कोई भी शराब अच्छी नहीं लगती और न मांस खानेकी इच्छा होती है। अधिकतर लोगोंका प्रकृतिके प्रति आकर्षण बढ़ जाता है और इस आकर्षणका लाभ उठाकर वे प्राकृतिक जीवन-को अधिक-से-अधिक अपनानेकी कोशिश करते हैं। इस प्रकार आज जो अपनेको स्वस्थ कहते हैं वे भी इस स्नानसे आरोग्य लाभ करते हैं।

मैं चाहता हूं कि यह स्नान रोगियोंके निवासस्थानमें भी प्रवेश करे और अशक्त और ज्वराक्रांत, गठियासे पीड़ित और लुंज, अंधे, बहरे, स्नायुदौर्बल्य एवं क्षयसे पीड़ितोंको भी, जो कष्टसे कराहते रहते हैं एवं की गई गलतियोंके लिए पश्चात्ताप करते रहते हैं, खुशीका संदेश सुनावे।

रोगी निराशाके अंधकारमें आशाकी किरणें ढूंढ़ते रहते हैं। सान्त्वनाका प्रत्येक शब्द उनपर असर करता है। प्राकृ-तिक स्नानकी बात बताई जानेपर उनमेंसे अनेक ठंढे दिलसे कहते हैं, आपकी बातें तो समझमें आ रही हैं पर विश्वास नहीं होता। ठीक है, अनेक बार अनेक प्रकारकी ओषधियोंपर उन्होंने विश्वास किया और फल ऐसा निराशाजनक निकला कि उनकी सारी आशा ही मर गई।

पर पूछना यह है कि अबतक किसकी सहायताकी याचना और प्रार्थना की गई? जिन देवताओंकी अबतक पूजा की

गई उनकी परीक्षा होनी चाहिए थी; यदि उनकी वड़ी-वड़ी उपाधियों और वाहरी तड़क-भड़कको हटाकर उन्हें देखा जाता तो मालूम होता कि वे वहुत साधारण किस्मकी मिट्टी और पत्थरके वने हैं।

उनका विश्वास दवा देनेवाले चिकित्सकपर था और यदि कोई रोगी चिकित्सक महाशयके सामने प्राकृतिक चिकित्साकी तारीफ करता तो चिकित्सक महाशय कह देते कि उनकी दवा भी प्रकृतिसे ही ली गई है अतः हानिरहित है। इसमें क्या संदेह है कि सभी चीजें प्रकृतिसे मिलती हैं। तंवाकू और शराव भी तो प्रकृतिसे ही मिलती हैं जिनके कारण लोगोंको अपार कष्ट होता है! ऐसे जहर भी तो प्रकृतिसे ही मिलते हैं जिन्हें थोड़ी मात्रामें भी आदमी खा ले तो तुरंत मर जाय। ये चिकित्सक अपनी दवा अधिकतर जहरीले पौधों और खनिजोंसे वनाते हैं। जंगली लोग और पशु, जिन्हें वृक्ष-विज्ञानका कोई ज्ञान नहीं होता, जहरीले पौधोंको विना चखे ही पहचान जाते हैं और उन्हें शत्रु समझकर उनसे वचते हैं। ये जहरीले पौधे और 'शोधक' रसायन हमारी विकृत रसनाको भी अपनी प्राकृतिक अवस्थामें वहुत वुरे लगते हैं! इससे यह सावित होता है कि जव इन्हें अप्राकृतिक तरीकोंसे और भी खराव कर दिया जाता है, तव वह हमारे लिए और भी हानिकर होते हैं। स्वास्थ्यावस्थाकी वनिस्वत रोगावस्थामें इनका उपयोग अधिक हानिकर होगा।

ईश्वर अपनी आज्ञाएं स्पष्ट शब्दोंमें और विविध रीतियोंसे वरावर देता है जैसे, "तू वृक्षोंको न खा" हम उस सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ईश्वरकी आज्ञाओंका उल्लंघन वरावर

करते हैं और दंडस्वरूप स्वर्गसे वार-वार निकाले जाते हैं।

कुछ लोग प्राकृतिक चिकित्साकी वड़ाई सुनकर इतने अंधे हो जाते हैं कि वे अपनेको "प्राकृतिक चिकित्सक" के हाथों सौंप देते हैं और समझते हैं कि उनकी अच्छी-से-अच्छी चिकित्सा हो रही है। ऐसी दशामें भी अनेकोंकी आशा निराशामें ही परिणत होती है।

यदि हम प्रकृतिकी शरण जायं तो आज भी हमें निश्चय-पूर्वक और आसानीसे ज्ञात हो सकता है कि स्वास्थ्य-रक्षा और रोग-निवारणके लिए हमें किन साधनोंका अवलंवन करना चाहिए। चिकित्सक कहता है कि ताजे फल न खाओ। खाना है तो उन्हें उवालकर खाओ। पर प्रकृति हमारे लिए हमेशा उबाले हुए नहीं, ताजे फल ही उपजाती है इसलिए ताजे फल ही प्रत्येकके लिए और प्रत्येक दशामें अच्छे रहेंगे; क्योंकि प्रकृतिकी पाकशाला सर्वोत्कृष्ट पाकशाला है। दूसरे प्राकृतिक चिकित्सक महाशय गेहूंके आटेकी रोटी भर-भर पेट खानेकी राय देते हैं। हमने देखा है कि स्पैरो (एक पक्षी) और घोड़ा राई और गेहूंकी वालियां खाना पसंद करता है पर मालूम होता है मनुष्य इन वालियोंको प्राकृतिक दशामें नहीं पचा पाता। पशु इन्हें कच्ची या अधपकी दशामें और इनको डंठलसमेत खाना ज्यादा पसंद करता है पर साधारण रोटी या खमीर उठाई हुई रोटी भूसी और डंठल निकालकर केवल पके अन्नके गूदे (विना चोकरका आटा) की वनती है। और भी देखा जाता है कि जव घोड़ों और अन्य पशुओंसे खास तौरसे कठिन श्रमका काम नहीं लिया जाता उस वक्त यदि उन्हें गेहूं या जई ज्यादा खानेको दी जाती है तो उनके पैरोंमें सख्ती आ जाती है

और वे वदमिजाज हो जाते हैं। घोड़ेकी संवेदनशीलता तो देखिए कि जहां उसे खास तौरसे सवारीके काममें आनेवाले घोड़ेको ज्यादा आटा खिलाया गया कि वह वीमार पड़ा। जंगली घोड़े और जेवरा जो केवल घास खाकर रहते हैं, पालतू घोड़ोंसे कितने अधिक सुंदर, तेज, मजबूत और कठिनाई वर्दाश्त करनेवाले होते हैं। डवल रोटीका अन्न पिस-पककर अपनी प्राकृतिक अवस्थासे वहुत भिन्न हो जाता है इसलिए अच्छा यही है कि डवल रोटी खानेकी राय देनेवालोंकी वात अनसुनी कर दी जाय और जव कोई उपाय न चले तभी खमीर उठाई रोटी खाई जाय और उसे थोड़ी-से-थोड़ी खाकर काम चलाया जाय। जिस आटेमें वाहरी चीजें डालकर खमीर उठाते हैं उसकी रोटी तो कभी न खाई जाय।

अक्सर लोग वाष्पस्नानकी राय देते हैं पर प्रकृतिने किसीके साथ वाष्पस्नानका कटघरा पैदा नहीं किया, न प्रकृतिमें कहीं कोई ऐसी चीज मिलती है जिसकी तुलना वाष्पस्नानके कटघरेसे की जा सके। इसलिए चाहे सभी प्राकृतिक चिकित्सक एक स्वरसे क्यों न वाष्पस्नानकी तारीफ करें पर है यह नुकसानदेह ही। मेरे कथनकी सत्यता तो भविष्य प्रमाणित करेगा गोकि इक्के-दुक्के लोग तो आज भी वाष्पस्नानका खुल्लमखुल्ला विरोध करते सुनाई देते हैं।

तो यह साफ है कि प्रकृति वड़ी सरल और सुवोध भाषामें वोलती है। प्रकृतिकी यह भाषा किसी स्कूलमें नहीं पढ़ाई जाती पर यदि हम इसके समझनेकी कोशिश करें तो यह भाषा हमें अधिकाधिक समझमें आने लग जायगी।

कुछ लोगोंको समयके प्रभावसे प्रकृतिकी आवाज सुनाई नहीं

देती और जिन्होंने विश्वविद्यालयोंमें और ऐसे स्थानोंमें, जहां स्वास्थ्य-संबंधी ज्ञान प्रकृतिका विरोध करना समझा जाता है, शिक्षा पाई है उन्हें विशेषतः यह आवाज नहीं सुनाई पड़ती। इन विश्वविद्यालयोंमें खाद्योंपर प्रयोग किए जाते हैं, उनके विभाज्य अंगोंका पता लगाया जाता है और एकपर दूसरेकी प्रतिक्रिया जानी जाती है और वहां यह उम्मीद की जाती है कि मुर्दे बतायेंगे कि जिंदोंमें भोजन किस प्रकार सजीव पदार्थमें परिणत हो जाता है।

समुचित भोजन क्या है? स्वास्थ्य-रक्षाके लिए भोजनके संबंधमें क्या जानना चाहिए? इन प्रश्नोंके उत्तरके लिए आदि निवासियोंने न कभी रसायनसंबंधी तालिकाको देखा, और न जंगलमें रहनेवाले घोड़े और हिरन अपने भाई-बहनोंके शवकी जांच करते हैं और न पेटकी बनावट जानते हैं और न आंतोंकी लंबाई ही नापते हैं। इसलिए प्रकृतिकी यह इच्छा नहीं है कि उपरोक्त रीतिसे हमलोग स्वास्थ्यसंबंधी ज्ञान प्राप्त करें; इस प्रकारका ज्ञान प्रकृतिके विरुद्ध है। अतः यह हमेशा गलतीके रास्तेपर ले जानेवाला है। प्रयोगशालामें निर्जीव वस्तुएं उत्पन्न की जाती हैं पर मनुष्यकी पाचनशालामें उसके सजीव शरीरके अंग और विभाग तैयार होते हैं। रासायनिक द्रव्योंकी बाहर होनेवाली क्रिया-प्रतिक्रियाकी तुलना मनुष्य-शरीरके स्नायुजालपर होनेवाले असरसे नहीं की जा सकती। शरीरके परिचालन, पाचन एवं जीवनके पीछे कुछ गुप्त शक्तियां काम कर रही हैं जिन्हें हम न कभी समझ सके, न कभी उन्हें समझ सकनेकी उम्मीद है। निःसंदेह आजका मनुष्य निरंतर और बिना दम लिए अन्वेषणके कार्यमें लगा

हुआ है पर यह भी वह एक देवीके इस श्राप—"पृथ्वीपर तू आवारगी और भगोड़ेका जीवन व्यतीत करेगा"—का भरना भर रहा है, लेकिन—

> **"दिनके प्रकाशमें भी वह हमें दिखाई नहीं देता, हमारे शोर करनेपर वह हट नहीं सकता, प्रकृति जो हमें बताना नहीं चाहती, वह हम संड़सी, हथौड़े और चाकूके जोरसे नहीं जान सकते।"**
>
> (गेटेके 'फाउस्ट' से)

जिन तत्त्वों, द्रव्यों और क्रियाओंका महत्त्व प्रयोगशालामें होता है उनका मनुष्यके आमाशय और स्नायुजालके लिए लाभकर होना आवश्यक नहीं है। यही नहीं, ये उनके लिए अनर्थकारी भी सिद्ध हो सकते हैं। फलतः इस प्रकारका विज्ञान हमेशासे मूर्खतापूर्ण विचारोंसे भरा रहा है।[1] ऐसे युवकोंपर जो बाहरी प्रभावके प्रति संवेदनशील रहते हैं और जो आजकी गलत शिक्षाके कारण आंख मूंदकर सर्वज्ञ और प्रमाणके पंडित कहे जानेवाले लोगोंकी बात सोलहों आने सही मान लेते हैं, गलतीका

---

[1]लोग कहते हैं कि औषध-विज्ञानको इस प्रकार सीधे-सीधे गलत नहीं कहा जा सकता। औषध-विज्ञानका जन्म मनुष्यके प्राकृतिक जीवनके पतनके साथ हुआ और ज्यों-ज्यों मनुष्यने अप्राकृतिक जीवनको अपनाया इसकी उन्नति हुई और अप्राकृतिक जीवनके अंतके साथ-साथ इस विज्ञानका अंत होना भी निश्चित है। इतिहास बताता है कि अनेक प्रकारके दूषण सदियोंतक प्रचलित रहे हैं और फिर मिटे हैं। जादूगरीको मिटते तो विज्ञानने स्वयं देखा है।

असर खास तौरपर होता है। यह असर इनपरसे मिट नहीं पाता, उनपर इसकी छाप लग जाती है। जो चिकित्सक विद्यालय-द्वारा अपने सिरपर लादे बोझको उतार फेंकना चाहता है और वहां सीखी गई गलतियोंसे छुटकारा पाना चाहता है उसे इसके लिए विशेष प्रयत्न करनेकी आवश्यकता होगी और अपने अंदरसे उस झूठे घमंडको, जो हलकी चीजोंको मूल्यवान बतानेकी कोशिश करता है, निकाल डालनेकी जरूरत होगी।

सबको ऐसी शिक्षा देनी कि सब अपनी चिकित्सा आप कर सकें, यह पवित्र आदर्श प्रत्येक प्राकृतिक चिकित्सकके सामने होना चाहिए।

दूसरे हमारे लिए सोचें या सोचनेका बहाना करें यह देख सकना बड़ा आसान और साथ-साथ मजेदार भी है। पर यदि लोग स्वास्थ्यका सत्य मार्ग पाना चाहते हैं, जीवन-वसंतमें विहार करना चाहते हैं तो प्रत्येकको अपना डाक्टर आप बनना चाहिए।

पर मैं किसी रोगीकी प्राकृतिक स्नान करनेकी राय दूं तो क्या उसे मेरी बात माननी चाहिए? जरूर? और बिना झिझकके! मेरा स्नानसे कोई संबंध नहीं है। यदि संबंध है तो इतना ही कि इस स्नानको इस रूपमें प्रकृतिसे प्राप्त करनेका मेरा सौभाग्य रहा है। और भी जो कुछ मैं इसके बारेमें कह रहा हूं वह केवल यह दिखानेके लिए कि खेत, चरागाह, जंगल और घाटीमें रहनेवाले प्राणी जो अब भी प्रकृतिके भावको समझ पाते हैं इस स्नानको जानते हैं और लाभके साथ इसका उपयोग करते हैं। गो कि हमारी भावना नैसर्गिक वृत्ति और विवेक बहुत कुछ दब गए हैं फिर भी वे इतने सजग तो हैं ही कि हम उनके

द्वारा यह जान सकें कि हमारे लिए सही रास्ता क्या है। आज भी हमें हमारी रसना बता सकती है कि बिना बिगाड़ी स्वाभाविक दशामें हम जिन खाद्योंका उपयोग कर सकते हैं वे करमकल्ला, आलू या मांस नहीं हैं। प्रकृतिने हमारे लिए फल, छोटे रसीले फल, (शहतूत, मकोय, जामुन इत्यादि) और गिरीवाले फल (बादाम, अखरोट, नारियल) ही उपजाये हैं। इसी तरह जिन्होंने और अनेक प्रकारके स्नान किए हैं प्राकृतिक स्नानसे उन्हें जो आराम और ताजगी मिलती है उससे इस स्नानकी सर्वश्रेष्ठताके विषयमें उनके मनमें कोई संदेह नहीं रह जाता।

इसलिए स्वास्थ्यमें किसी प्रकारकी गड़बड़ी आनेपर जिसे लोग आज रोगके नामसे पुकारते हैं या स्वास्थ्य बिलकुल खराब होनेकी दशामें भी जिसे नाना ओषधियां, जो कुछ-न-कुछ प्रकृति-विरोधी अवश्य रही होंगी, न सुधार पाई हों, हमें प्राकृतिक स्नानका पूरे विश्वासके साथ उपयोग करना चाहिए। पर एक रोगी जब खतरनाक और नुकसानदेह दवाओंसे अपना पिंड छुड़ा लेता है और प्राकृतिक निरापद ओषधियोंकी शरण जाता है तो खाई गई दवाओं और गलत चिकित्साके कारण उसका रोग इतना बढ़ गया होता है कि उसे प्रकृतिकी प्रकाश, वायु, भोजन, मिट्टी आदि अधिक आवश्यक ओषधियोंकी भी जरूरत होती है। यदि आज आप किसीको यह बताइए कि तुम्हें नंगे रहना पड़ेगा, खास तौरसे ठंढकके वक्त, चाहे बहुत थोड़े समयके लिए ही नंगे रहनेको कहिए और यह भी कह दीजिए कि यह क्रिया कमरेमें अकेले खिड़कियां खोलकर करना होगा तो भी वे घबरा जाते हैं और यदि उनसे कह दीजिए कि तुम्हें मांसका भी त्याग करना होगा तो उनकी व्याकुलता और

भी बढ़ जाती है ! क्योंकि वे समझते हैं कि उन्हें सारी शक्ति मांससे ही मिलती है। पर यदि इनसे स्नान करनेको कहिए तो ये किसी तरह मान जायंगे, खास तौरसे प्राकृतिक स्नान। क्योंकि इसमें ठंडे पानीमें सारे शरीरको क्या आधे शरीरको भी डुबोनेकी जरूरत नहीं पड़ती। तो फिर पहले प्राकृतिक स्नान ही करना आरंभ किया जाय।

निश्चय ही जल प्रकृतिकी विशेप ओपधि है जिसके द्वारा वह अपने बच्चोंको बड़े-बड़े लाभ देना चाहती है। और जो जलका यह प्रयोग प्रकृतिकी इच्छित रीतिसे करेगा उसे बाइबिलका यह वाक्य "पृथ्वीको कोई रूप नहीं मिला था, वह बिल्कुल शून्य थी और ईश्वरकी सत्ता समुद्रपर राज्य करती थी" समझमें आ जायगा। बपतिस्मा लेते वक्त पाक फिरिश्ते क्यों ईसाके पास आये ? और क्यों बपतिस्मा लेना ईसाई-संप्रदायमें धार्मिक संस्कार एवं शारीरिक आध्यात्मिक स्वास्थ्यका चिह्न माना जाने लगा—इसका कारण भी वह समझ जायगा।

पर आज देखिए तो कोई बहरा मिलेगा तो किसीको दूरकी चीज दिखाई नहीं देती, किसीके पैर सूजे हैं, किसीके कूबड़ निकल आया है, किसीका यकृत काम नहीं करता, किसीके मूत्राशयमें गड़बड़ी है, कोई मिरगीके दौरेसे परेशान है, कोई पागलपनका शिकार है तो कोई दिमागकी कमजोरीसे पीड़ित है। कितने ही यक्ष्मासे पीड़ित हो कब्रकी तरफ बढ़ते दिखाई देते हैं तो कितने ऐसे मिलेंगे जो समाजसे बहिष्कृत हैं क्योंकि वे उपदंशसे ग्रसित हैं। अब आप मुझसे पूछ सकते हैं "क्या यह स्नान इन सभी रोगोंका नाशक है, और जलका

यह एक प्रयोग क्या सभी रोगियोंका तारक है ? इस साधारणसे स्नानमें इतने करामात छिपे तो दिखाई नहीं देते" ? इस प्रश्नका मेरा उत्तर यह है "हां, प्रत्येक रोगमें प्रत्येक रोगीके लिए और रोगकी प्रत्येक अवस्थामें यह स्नान यथेष्ट है ।" इस रीतिसे रोग-निवारण वड़ा सरल-सा कार्य दिखाई देता है पर जो विधि प्राकृतिक है उसका सर्वथा सरल होना भी आवश्यक है । हमारे शरीर, मन और आत्मामें पैदा होनेवाले सारे विघ्नों और रोगके सारे लक्षणोंका कारण हमारा प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन करना एवं उनका रौंदना है । इसलिए स्वास्थ्य-प्राप्तिका एक ही मार्ग है और वह है प्रकृतिकी ओर लौटना, प्रकृति-पथपर चलना और प्रकृतिका वताया उपचार करना । जिस प्राकृतिक जल-प्रयोगकी यहां चर्चा की जा रही है उसके अलावा कोई अन्य प्रयोग प्रकृति हमें नहीं वताती ।

प्रकृतिमें वह प्रत्येक चीज, जिसे मनुष्यके हाथोंने अपवित्र और दूषित नहीं किया है, शिव और सुंदर हैं अर्थात् विश्वसनीय हैं । मनुष्य जितना ही प्रकृतिकी ओर वढ़ेगा और उसकी ओष-धियोंको अपनायेगा वह अपने शरीर, मन और आत्मामें आई खरावीके और वची जीवन-शक्तिके मुताविक जल्दी या देरी-से पुनः स्वास्थ्य प्राप्त करनेमें सफल होगा । अतः यदि हम प्रकृतिके आदेशोंको पुनः समझनेकी कोशिश करें और उनका पालन करना अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति और दशाके अनुरूप सच्चे हृदयसे आरंभ कर दें तो समझ लीजिए कि हमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया, जिसका परिणाम स्वतः हमारे लिए अधिक-से-अधिक शुभ और मंगलकारी होगा ।

सर्वांगसुंदर और सुशील मनुष्य अर्थात् पूर्ण स्वस्थ मनुष्यके

सबसे अच्छे उदाहरण हैं वल्वेडियरका अपोलो और वीनस (कामकी देवी)। ये यूनानी मूर्त्ति कलाकी उत्कृष्ट कृतियां हैं। उदाहरणके अभावमें हम इसकी कल्पना ही नहीं कर सकते कि मनुष्यकी बौद्धिक और आत्मिक शक्तिका मापदंड क्या होना चाहिए, उसे कितना सजीव होना चाहिए, उसकी बुद्धि कितनी ग्रहणशील और तीक्ष्ण, उसका स्वभाव कितना मृदु एवं उसके हृदयमें कितनी दया और प्यार होना चाहिए अर्थात् उसे देवत्वके कितने निकट पहुंचना चाहिए। इसकी कल्पना तो तव हो सकती जब पूर्ण विकसित काकेशश जाति (कोहेकाफके रहनेवाले) प्रकृतिसे विछुड़ न गई होती।

मनुष्य जब पूरी तरह प्राकृतिक जीवन अपना लेगा वह अपने शारीरिक,' मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्यके आदर्शके निकट पहुंच जायगा। इस आदर्शके कितने निकट वह पहुंचेगा यह उसके वंशानुगत प्रभाव, उम्र, जीवन-शक्ति और प्राकृतिक जीवनकी पूर्णता अथवा अपूर्णतापर निर्भर करता है।

वच्चोंके लिए यह अच्छा सुअवसर है। अतः जिस तरह हो उस तरह उन्हें पुनः स्वर्गीय सुखके रास्तेपर चलाना चाहिए और प्राकृतिक स्नान जरूर कराना चाहिए। तव हमें यह देखकर आश्चर्य होगा कि स्वभावसे वे सुशील हो गए हैं और स्कूलमें उन्हें पाठ भी वहुत जल्द याद होने लगा है। बोदापन और

'जलस्नान-जैसे पूर्णतः प्राकृतिक उपादानोंकी सहायतासे ही शरीरको सच्चे अर्थमें सुंदर वनाया जा सकता है। केवल यही एक ऐसा साधन है जिससे मुंहकी झुर्रियां गायव हो जायंगी और त्वचा सुचिक्कण। दूसरे सभी उपाय व्यर्थ हैं, लाभसे अधिक वे हानि पहुंचाते हैं। यदि हमारी माता और बहनें इसे समझ सकती !

मूर्खता भी पागलपनकी तरहके ही रोग हैं। ये भी प्राकृतिक स्नानसे अच्छे हो जाते हैं।

बांझपन और बच्चा होते वक्तके कष्ट बड़े भयावह हैं। प्राकृतिक स्नानके प्रयोगसे, इस प्रकार प्राकृतिक जीवनकी ओर आंशिक रूपसे लौटनेसे सभ्यताकी दीवानी स्त्रीपरसे यह श्राप बहुत कुछ हट जायगा। प्रकृतिके संपर्कमें रहनेवाली सभी मादाओंकी तरह उन्हें भी बच्चा जनते वक्त न कोई कष्ट होगा और न इससे उन्हें कोई खास कमजोरी आयेगी। बच्चा भी अधिक स्वस्थ और सुंदर होगा और उसे पिलानेका मधुर कर्तव्य पालन करनेके लिए प्रकृति उसे यथेष्ट दूध देगी। इस दिशामें मुझे अनेक अनुभव हुए हैं और सभी सफल रहे हैं। हम यह देख चुके हैं कि सभी रोग और विशेपतया जीर्ण रोग प्रकृतिके नियमोंके उल्लंघनके फल हैं। जैसा कि मैंने पहले कहा है अप्राकृतिक भोजन पचता ही नहीं और यदि पचता भी है तो बड़ी कठिनाईसे। ऐसे भोजनके कारण और हमारे अनेक दूपणोंके कारण हमारा स्नायविक बल अथवा जीवन-शक्ति घट जाती है। यहींसे जीर्ण रोगका आरंभ होता है। विजातीय द्रव्य पेटसे वायव्य, तरल और घन-रूपमें उठकर सारे शरीरमें फैल जाता है।[1] यह शरीरकी आकृतिको बदल देता है। मस्तिष्क और आत्मामें विकृति पैदा कर देता है। प्रत्येक विचारवान् आदमी जानता है कि शरीर, मस्तिष्क और आत्माका बड़े निकटका

[1]एक सैनिकके एक बार कंधेमें गोली लगी और वह उस वक्त निकल न सकी। वह धीरे-धीरे सरककर एक साल बाद पैरमें त्वचापर आ गई। उस उदाहरणसे शरीरमें विजातीय वस्तुके चलनेका अनुमान किया जा सकता है।

और गहरा संबंध है। भोजनका अनपचा भाग और विजातीय द्रव्य ज्यों ही शरीरमें इकट्ठा होना शुरू होता है शरीर उसे अपने निष्कासन मार्गोसे मल, मूत्र, प्रश्वास, स्वेद आदिके रूपमें निकालनेकी कोशिश करता है। पर यदि विजातीय द्रव्य बराबर इकट्ठा होता रहता है तो फिर वह इस स्वाभाविक रूपमें नहीं निकल पाता। तब फिर शरीर ताजी हवा, हवाके झोंके, ठंढक आदिसे उद्दीपन पाकर इसे जबरदस्ती निकालनेकी कोशिश करता है। शरीरकी इस क्रांतिको तीव्र रोग कहते हैं। इस क्रांतिके साधारण रूप जुकाम वगैरहको सर्दी लगना कहते हैं। उसके उग्र रूप जैसे चेचक, लालबुखार, हाफाडाफा, मियादी बुखार, हैजा आदिमें शरीरमें उठनी सड़ानके फलस्वरूप हमेशा ज्वर भी साथ होता है।

अतः तीव्र रोगोंको, जिनसे लोग व्यर्थ डरते हैं, शरीरका शोधक एवं लाभकर उभार समझना चाहिए और उनके आनेपर सहर्ष उनका स्वागत करना चाहिए। वे खतरनाक तभी साबित होते हैं जब उनका गलत उपचार होता है, मसलन् दवासे और जब रोगीको ताजी हवासे वंचित कर दिया जाता है। इससे शरीर कमजोर हो जाता है, उसके सारे कार्य बंद हो जाते हैं। और विजातीय द्रव्योंको, जो आंदोलित हुए रहते हैं, शरीर निकाल नहीं पाता; जिसके फलस्वरूप रोगीको बड़ा कष्ट होता है और उसकी मृत्युतक हो जाती है।

उदाहरणतः यदि कफ (विजातीय द्रव्य) काफी मात्रामें निकल जाय तो सर्दी लगना हमेशा लाभकर सिद्ध होता है। चेचकमें बालककी मृत्यु तभी होती है जब दाने परे वेगसे नहीं

निकलते अर्थात् दानोंके रूपमें शरीरका विजातीय द्रव्य अच्छी तरह बाहर नहीं आ जाता।

रोग, विजातीय द्रव्यमें गति आ जानेके कारण और उसके सड़नेकी अवस्थामें उसके कणोंके आपसमें रगड़नेके कारण जब शरीरमें गरमी उत्पन्न हो जाती है, बढ़ता है। यह गरमी खास तौरसे पेटमें, जो रोगका प्रधान स्थान है, पैदा होती है। तीव्र रोग अर्थात् तीव्र ज्वरमें जब विजातीय द्रव्य आंदोलित हो उठता है शरीरकी गरमी इतनी अधिक बढ़ जाती है कि शरीरके लिए खतरा पैदा हो जाता है। प्राकृतिक स्नानसे यह गरमी काफी कम की जा सकती है। पानी और खास तौरपर यदि वह ज्यादा ठंढा हो तो ज्यों ही वह पेटपर लगता है रोगीको बड़ी शांति मिलती है और वह ताजगीका अनुभव करने लगता है। स्नानसे शरीरकी जीवन-शक्ति भी बढ़ती है जो उसे रोगके कीटाणुओंको निकाल फेंकने और शरीरको निर्मल बनानेमें सदा सहायक होती है। फलतः मल शरीरसे शीघ्र ही (कभी-कभी इसमें दो-तीन दिनतकका समय भी लग जाता है) पसीने, पाखाने और पेशाबके रूपमें तेजीसे निकलने लगता है।

इसलिए तीव्र रोग होनेपर चाहे वह साधारण जुकाम हो या हाफाडाफा, मियादी बुखार, हैजा आदि-सा असाधारण रोग, प्राकृतिक स्नान करना चाहिए और फिर धूप लेकर या ऊनी कपड़े ओढ़कर पसीना लानेकी कोशिश करनी चाहिए। इन रोगोंमें वायु और प्रकाशस्नान खास तौरसे लाभकारी हैं। इसका खास खयाल रखना चाहिए कि रोगीको रात-दिन शुद्ध एवं स्वच्छ वायु मिले। जाड़ेके दिन हों और ठंढक काफी पड़ती हो तो भी कमरेकी खिड़कियां खुली रखनी चाहिए। भोजनका

चुनाव बड़ी समझदारीसे किया जाय। जहांतक हो सके इसे हमेशा प्राकृतिक रखा जाय। यदि इन नियमोंका पालन किया गया तो परिणाम हमेशा ठीक होगा और रोग जानेके बाद स्वास्थ्य इतना अच्छा हो जायगा कि आप यह कह उठेंगे कि दयालु प्रकृति हमारे शरीरमें रोग हमारे लाभके लिए उत्पन्न करती है। संभवत: यहां यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है कि तीव्र रोग होनेपर जितना शीघ्र इस विधिसे उपचार आरंभ कर दिया जायगा लाभ भी उतना ही निश्चयात्मक रूपसे और स्थायी मिलेगा। यदि इन उपायोंका अवलंबन रोगीकी अंतिम अवस्थामें करेंगे जब कि रोगीको गया हुआ समझ लिया जाता है तब वैसी अवस्थामें रोगीके अच्छे होनेकी उम्मीद बहुत थोड़ी रह जाती है।

ओषधियां शरीरको पंगु बना देती हैं और उसके तात्त्विक कार्योंको रोक देती हैं। शरीरकी इसी दशाको आजकल तीव्र रोगोंका शमन कहा जाता है। इन शमनात्मक उपायोंके फलस्वरूप शरीरकी बड़ी क्षति होती है। वह स्नायुदौर्बल्य, दूषित घाव, मृगी, यक्ष्मासे जीर्ण रोगोंका शिकार हो जाता है। आजकल जो नये-नये रोग इतनी जोरसे फैले हुए दिखाई देते हैं उसका कारण टीका और ओषधियां ही हैं।

जीर्ण रोगकी बढ़ी हुई अवस्थामें जीवन-शक्ति (पाचन-क्रिया) बहुत घट जाती है, मलनिष्कासनके द्वार (गुर्दे, पेट, आंतें) बिल्कुल निष्क्रिय हो जाते हैं और त्वचा अपना कार्य बिल्कुल नहीं करती। शरीरमें विजातीय द्रव्यको तेजीसे निकालनेकी शक्ति नहीं रह जाती—तीव्र रोग नहीं होते तब विजातीय द्रव्य शरीरके अंदर ही सड़ता रहता है फिर वह किसीके

फेफड़ोंमें, किसीके पैरोंमें, किसीकी आंखोंमें तो किसीके मस्तिष्कमें अंदरूनी ज्वर पैदा कर देता है। अंतमें सारा नाड़ीमंडल ही विक्षिप्त हो जाता है; उसमें पूर्ण अवसाद आ जाता है। अब यक्ष्मा, नासूर, उपदंश, मधुमेह, मिरगी, गठिया, खुले घाव, पागलपन आदि रोग होते हैं जिन्हें आमतौरसे जीर्ण रोग कहते हैं। इन रोगोंमें विजातीय द्रव्य शरीरको ध्वंस कर देते हैं और शरीर अधिकाधिक कमजोर होता जाता है। शरीरमें इतनी शक्ति नहीं रह जाती कि वह विजातीय द्रव्यको बलपूर्वक तेजीसे या धीरे-धीरे भी निकाल सके। अतः स्नायुदौर्बल्य, पागलपन और यक्ष्मा आदिके रोगियोंको शायद ही कभी जुकाम होता है और शायद ही कभी उन्हें मियादी बुखार आदिसे तीव्र रोग होते हैं। इसे शुभ लक्षण न समझकर रोगीके लिए बुरी सूचना समझनी चाहिए। इनमें भी किसी-किसी रोगीकी जीवन-शक्ति प्राकृतिक स्नान और अन्य प्राकृतिक उपचारोंसे इतनी तेजीसे और इतनी अधिक बढ़ती है कि कभी-कभी उन्हें जुकाम-खांसी, ज्वर आदिसे अन्य तीव्र रोग हो जाते हैं पर ये होते हैं बहुत कम और होते भी हैं तो बहुत हलके रूपमें। फिर भी इनकी निरापदता और शोधन-शक्ति स्पष्ट प्रकट होती है। जीर्ण रोगके रोगियोंको कभी-कभी फोड़े और नासूर भी हो जाते हैं जिसका अर्थ यही है कि प्रकृति उनके द्वारा विजातीय द्रव्यको बाहर निकालनेका प्रयास कर रही है।

इन रोगोंको हर दशामें शुभ लक्षण समझना चाहिए।

यही समय है जब प्राकृतिक उपादानों (स्नान, शुद्ध वायु और प्रकाश, प्राकृतिक भोजन) द्वारा विजातीय द्रव्य निकालनेमें शरीरकी सहायता करनी चाहिए ताकि शरीरको अधिक-

से-अधिक तीव्र रोगोंका लाभ मिल सके। सबसे बड़ी बात है ऐसे मौकोंपर हम जरा भी न डरें।

प्राकृतिक जीवन शुरू करनेपर अर्थात् प्राकृतिक स्नान, प्राकृतिक भोजन, नंगा रहना शुरू करनेपर लोग कुछ समयके लिए दुबले हो जाते हैं, कमजोरी और थकानका अनुभव करते हैं, चेहरा काला दुबला-सा दिखाई देता है और अंग-अंगमें दर्द होने लगता है। ये लक्षण उभारकी शुभ-सूचना हैं, इनकी वजहसे परेशान न होना चाहिए। हमें यह हमेशा ध्यानमें रखना चाहिए कि जो उपचार वस्तुतः प्राकृतिक हैं उससे कभी भी किसी प्रकारकी हानि होनेकी संभावना नहीं है। और उपचारकी अवस्थामें जो भी लक्षण उत्पन्न होते हैं, चाहे वे आधुनिक दृष्टिकोणके कारण[1] कितने ही खतरनाक क्यों न प्रतीत हों, स्वास्थ्यके लाभके ही लिए उत्पन्न होते हैं।

---

[1]प्राकृतिक चिकित्साके साथ एक बड़ी कठिनाई यह है कि शुरूसे ही और खास तौरसे रोगके तीव्र रूप धारण करनेपर कुछ नासमझ लोग अपनी राय और हिदायत आदिसे रोगीको डरा और घबरा देते हैं।

स्वस्थ और समझदार आदमी कभी ऐसा नहीं करते, एक तो उनके पास फालतू समय नहीं रहता, दूसरे वे जानते हैं कि जिस विषयका उन्हें ज्ञान नहीं है उस विषयपर उन्हें राय देनेका अधिकार नहीं है। पर जिन लोगोंकी मानसिक और शारीरिक शक्तियोंको रोगने क्षीण कर दिया है, जिन्हें चीजें समझमें नहीं आतीं, जो अपनी कमजोरियोंके कारण अपने जीवनसे असंतुष्ट हैं और जिन्हें कोई काम नहीं है प्राकृतिक जीवन शुरू करनेवालोंके लिए वास्तविक कष्टके कारण होते हैं। इन अभागोंसे बचनेका उपाय प्रत्येक आदमीको स्वयं सोचना चाहिए पर कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए कि इनको कष्ट हो। जो हमारे प्राकृतिक जीवन

वहुत पुराने रोगोंमें यह नवीन स्नान आश्चर्यजनक रीतिसे लाभ करता है। दीर्घकालसे आते रोगोंमें रोगीके सारे शरीरमें और खास तौरसे पेटमें वेहिसाव गरमी पैदा हो जाती है और वह उसमें भुन-सा जाता है। आंतोंकी श्लैष्मिक झिल्लियां सूख जाती हैं और मल सरक नहीं पाता; फलतः घातक कब्ज रहने लगता है। इस समय यदि पेटको ऊपरसे यथेष्ट शीतल जलद्वारा ठंढा किया जाता है और ऐसा करते वक्त उसे रगड़ा जाता है तो पाचन-शक्ति तुरंत उद्दीप्त होती है। उसे उस सुखका अनुभव होता है जिसे वह भूल-सा गया था। उसमें प्रसन्नता-प्रदायिनी आशाका संचार होता है और उसे विश्वास होने लगता है कि वह अवश्य स्वस्थ हो जायगा।

पैरकी सूजन, आंख और कानके रोग, नाकका नासूर या पैर-के खुले घाव-से जीर्ण रोगोंमें यदि जलका प्रयोग किया जाय तो किसीको किसी प्रकारका आश्चर्य करनेकी जरूरत नहीं है।

अपनानेपर हमारा मजाक उड़ाते हैं और हमसे घृणा करते हैं उनके प्रति भी हमें अशिष्ट न होना चाहिए वरन् उनसे प्रेमपूर्ण वर्ताव करना चाहिए। ऐसे आदमियोंमें अधिकतर ऐसे ही होते हैं जो अप्राकृतिक जीवनकी खामियों और उनसे उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयोंको जानते हैं। पर उनमें या तो साहस नहीं होता या उन्हें ऐसा सुयोग नहीं मिला कि वे अपनी गलत जीवन-पद्धतिको त्याग सकें। वे हमारी दया और सहानुभूतिके खास तौरसे अधिकारी हैं। यदि वे अपने रोगी स्वभावके वशीभूत होकर हमें कभी कुछ कह दें तो हमें उन्हें क्षमा करना चाहिए। ये लोग जो कुछ कहते है उसे सुनकर चिकित्सारंभमें ही कष्ट होता है। शीघ्र ही वह शांति और गंभीरता प्राप्त होती है जिसे किसीके कटाक्ष या बोल भंग नहीं कर सकते।

विजातीय द्रव्यकी उत्पत्ति पेटसे होती है। वहांसे वह रोगी-के अंगमें पहुंचता है। अब उस अंगके नीरोग होनेके लिए यह आवश्यक है कि विजातीय द्रव्य शरीरके बाहर निकल जानेके लिए सारे शरीरसे आकर पेटमें वापस जाय।

स्नायु-दौर्बल्य, पागलपन, नासूर, यक्ष्मा आदि रोग, जिन्हें आजकल सर्वथा दुस्साध्य समझा जाता है, से ग्रसित भयंकर रोगियोंको भी प्राकृतिक स्नानसे कुछ सप्ताह या कुछ महीनोंके अविश्वसनीय रूपसे थोड़े समयमें यथेष्ट लाभ होता है और कभी-कभी इतने ही समयमें उनका रोग सर्वथा निर्मूल हो जाता है।

साधारणतया ऐसे जीर्ण रोगोंमें जिन्हें रोगी वर्षोंसे पालता रहता है इस चिकित्सा-विधिमें बड़े धैर्य और लगनकी जरूरत होती है; क्योंकि ऐसे रोगीकी जीवन-शक्ति बहुत धीरे-धीरे और क्रम-क्रमसे ही बढ़ती है जिसपर रोगीका स्वस्थ होना निर्भर है। फिर भी लाभ और बहुत अधिक लाभ होता है—जो लाभ आजकी प्रचलित पद्धतियां संभव समझती हैं उससे तो यह लाभ हर हालतमें बहुत अधिक होता है। कुछ खास तरहके जीर्ण रोगियोंको जिनका रोग अत्यधिक पुराना होता है, कभी-कभी बहुत थोड़ा लाभ और कभी बिल्कुल लाभ नहीं होता। कभी तो ऐसे-ऐसे लोग, जो सर्वथा मृत्युके मुखमें गये होते हैं, चिकित्सा आरंभ करते हैं।

जख्मी हो जानेपर पशु अपने जख्मी अंगको ठंडा करनेके लिए पानीमें रखते हैं और बीच-बीचमें थोड़ी-थोड़ी देरके लिए लगातार चाटते हैं। आजकी प्रचलित चिकित्सा-पद्धति भी हथियारके भोंकनेसे हुए घाव; कटने, जलने, ददोरा पड़नेसे बने जख्मपर पहले पानी डालकर उसे ठंडा करती है और

फिर उसपर घावकी छोटाई-वड़ाईके अनुसार मोटी-पतली पट्टी पानीमें भिगोकर रखती हैं। फिर उसपर ऊनी कपड़ा रखकर वांध देती है। इन घावोंपर कपड़ेकी पट्टीसे मिट्टीकी पुल्टिस वांधना ज्यादा अच्छा रहेगा। मिट्टीकी पुल्टिसके वारेमें विस्तारसे मैं फिर वताऊंगा।

घावका चाटना, जहांतक कि यह संभव है, घावके लिए वड़ी अच्छी चीज है। एक नवजात शिशुको कुछ चर्मरोग था, उसकी मांने उसे चाट-चाटकर अच्छा कर दिया। यह वात अभी-अभी मेरे देखनेमें आई। घावको वीचमें जहां गंदगी वगैरह लगी हो न चाटकर घावके चारों तरफकी त्वचा चाटनी चाहिए। घाव वड़ा हो तो चाटनेके अलावा प्राकृतिक स्नान और अन्य प्राकृतिक उपादानोंका भी, जिनकी चर्चा मैं आगे चलकर करूंगा, सहारा लेना चाहिए। शरीरकी भीतरी गरमी शांत करनेके लिए और जीवन-शक्ति वढ़ानेके लिए इन उपचारोंकी वड़ी आवश्यकता है। प्राकृतिक चिकित्साद्वारा जो वड़े-वड़े लाभ होते हैं उनपर इन सव उपचारोंको साथ करनेपर किसीका भी विश्वास निश्चय ही हो जायगा।

उन पशुओंके, जो प्रकृतिके संपर्कमें रहते हैं, वड़े-वड़े घाव और चोट उनके प्राकृतिक जीवनके कारण आश्चर्यमें डालने-वाले थोड़े समयमें विल्कुल अच्छे हो जाते हैं। जंगलमें रहने-वाले किसी पशुके पैरमें यदि कभी गोली लग जाती है या जालमें फँस जानेके कारण उसका पैर फट जाता है तो वह वहुत थोड़े समयमें अच्छा हो जाता है और अच्छा हो जानेपर पशु इस प्रकार रहता है जैसे उसे कभी कुछ हुआ ही नहीं था।

एक वार एक हिरनपर वंदूक चलाई गई और गोली उसके

वक्षस्थलके पाससे पार हो गई, दूसरी तरफ जहां गोली निकली उसके पासकी जमीन खूनसे तर हो गई। दो-चार दिन बाद ही शिकारियोंने उसका पीछा फिर किया और उसे एक बाड़ेमें ला घेरा। उतना बड़ा घाव हो जानेपर भी हिरन बंदिशको बड़ी आसानीसे पार कर गया। इस हिरनको जो गोली लगी थी निस्संदेह उससे उसके फेफड़े, हृदय अथवा किसी विशेष अंगको कोई क्षति नहीं हुई थी।

आदमियोंको फोड़े होनेपर उनसे जो मवाद वगैरह बहती है वह शरीरका अपनी गंदगी निकालनेका प्रयास है। तीव्र रोगकी भांति उसे भी लाभकर चिह्न समझना चाहिए। उनसे खतरा और बिगाड़ तभी होता है जब उनकी झूठी चिकित्सा की जाती है। फोड़ोंकी चिकित्सा भापद्वारा कभी न करो, न उनपर कभी भाप लगाओ।

सबसे आवश्यक बात यह है कि अब मनुष्यके शरीरपर डाक्टरकी छुरी और छुरे लगने बंद हो जाने चाहिए। चीर-फाड़ मनुष्यकी मूढ़ताका चिह्न है। इससे प्रकृतिके कार्यमें हस्तक्षेप होता है जिसका परिणाम हमेशा भयंकर होता है। यदि परिणाम तुरत दिखाई न दे तो भी देर-सवेर जरूर प्रगट होता है।

जिसकी यह धारणा हो कि छुरी-चाकूके बगैर हर जगह काम नहीं चल सकता उसे पहले खराब-से-खराब रोगियोंपर प्रकृतिके उपादानोंका व्यवहार समुचित रूपसे और समुचित रीतिसे कर देखना चाहिए।

प्रकृतिको पट्टी-फट्टी[1] पसंद नहीं है। वह नहीं चाहती

---

[1]प्राकृतिक चिकित्सामें चीर-फाड़की जरूरत नहीं है—यह कहते

कि हड्डी टूटनेपर (पंसली या पैरकी हड्डी वगैरह) भी पट्टी बांधी जाय। यदि टूटी हड्डी यों ही छोड़ दी जाय तो वह कभी गलत जगह या जगहसे इधर-उधर नहीं जुटती।

इस तरह हमने देखा कि प्राकृतिक स्नान ठीक तरह लिया जाय तो बड़े कामका और बड़ा लाभकर सिद्ध होता है।

समय हमें उसकी परिधिको समझ लेना चाहिए। सभी जानते हैं कि दांतोंके खराव होनेका कारण हमारा अप्राकृतिक जीवन है। चीर-फाड़को विल्कुल तर्क करनेका अर्थ होगा खराव दांत उखड़वाए न जायं और खोड़रे दांत भराए न जायं। इसमें संदेह नहीं कि प्राकृतिक जीवन व्यतीत कर और मिट्टीकी पुल्टिसकी सहायतासे इन व्याधियों एवं इनसे होनेवाले दांतके दर्दसे भी वचा जा सकता है।

इसी तरह वाल और नाखून कटानेसे भी वचना कठिन है। प्रकृतिके संपर्कमें रहनेवाले पशु इन्हें नहीं कटाते फिर भी इसकी वजहसे उनका चेहरा कुरूप नहीं हो जाता। मुक्त प्रकृतिमें रहनेवालोंकी प्रत्येक चीजका नियमन प्रकृति स्वयं करती है।

और भी कई हालतोंमें (जन्मजात विकृतिमें भी) अस्त्रोपचारद्वारा कष्टसे वचा जा सकता है। वेकार अंगोंका उपयोग संभव हो सकता है और भी कई प्रकारसे लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। पर जिन अवस्थाओंमें अस्त्रोपचारकी वात मैं कर रहा हूं, वे आज जिन अवस्थाओंमें अस्त्रोपचार किया जाता है, उनसे वहुत भिन्न है। आजके अस्त्रोपचारके प्रभावकी जांच की जाय तो ज्ञात होगा कि इसकी वजहसे स्वास्थ्य वहुत खराव हो जाता है और दिन-प्रतिदिन खराव होता ही जाता है। यहांतक कि प्रकृतिके कार्यमें अस्त्रोपचारद्वारा व्याघात पड़नेके फलस्वरूप मृत्युतक हो जाती है।

तीव्र एवं जीर्ण रोग तथा फोड़े होनेकी अवस्थामें भी शरीर और मस्तिष्कको आराम देनेकी वड़ी आवश्यकता है। इन अवस्थाओंमें शरीरको रोगनिवारणके लिए अपनी सारी शक्ति लगानेकी जरूरत होती है।

मेरे चिकित्सालयमें लोग यह स्नान अधिकतर खुली जगहमें करते हैं और आरंभसे ही उन्हें इसमें आनंद आता है, प्रसन्नता प्राप्त होती है और इच्छित लाभ प्राप्त होता है। इस स्नानके प्रभावसे डरपोक, गमगीन और निराश, प्रसन्न, सतेज, हिम्मतवर और बहादुर हो गए हैं।

प्रकृति-पथपर फिर चलनेकी कोशिश करनेवालोंको इस स्नानसे बड़ी सहायता मिलती है।

इसकी सहायतासे प्रकृतिके और अधिक उपचारोंकी जानकारी होती है, स्वास्थ्य अधिकाधिक सुंदर होता जाता है और अधिकाधिक आनंदकी प्राप्ति होती है।

शरीरको थपथपाना और रगड़ना

प्राकृतिक स्नानकी विधि निर्धारित करते वक्त मैंने शरीरके रगड़नेकी चर्चा करते हुए इसकी ओर ध्यान आकर्षित किया है। गिरकर चोट खा जानेपर बच्चा जब रोता हुआ मांके पास आता है तब मां डाक्टरी किताब निकालकर नहीं देखती कि उसमें क्या करनेको कहा गया है वह तुरंत बच्चेके प्रति प्रेम और सहानुभूतिसे प्रेरित होकर चोट लगे स्थानपर हल्के-हल्के हाथ फेरती है, थपथपाती है।

क्या आपने गांवके ऐसे गुणियोंकी बात नहीं सुनी है जो लोगोंका दर्द और मोच मल और थपथपाकर जल्दी-से-जल्दी निकाल देते थे ?

गांवोंके ये सरल और पवित्र प्राणी यह काम अर्थ और लाभकी दृष्टिसे नहीं करते थे। उनका यह खयाल था कि सेवाके

बदले यदि व द्रव्य लेंगे तो उनकी चिकित्सा कारगर न होगी। उनकी भावना मेथ्यूके इस उपदेशसे मिलती-जुलती है :

"तुझे यह चीज मुफ्त मिली है और मुफ्त ही तू उसे बांट।"

अपने संगी-साथियों और गांवके निवासियोंकी इस प्रकारकी सेवा करते थे व केवल प्रेमभावसे। पिछले कुछ दशकोंमें विज्ञान और सभ्यता, शिक्षा और ज्ञानका बड़ा प्रचार हुआ है और इसका हमें बड़ा घमंड भी है। तथापि हमें दुःखपूर्वक यह कहना पड़ता है कि "पृथ्वी और स्वर्गमें अभी ऐसी अनगिनत चीजें हैं जो अबतक हमारे स्वप्नमें भी नहीं आई हैं।"

जब कभी हम उन सेवाव्रती नर-नारियोंकी बात करते हैं तो उनके प्रति हम अपनी घृणा और अवहेलना दिखाते देखे जाते हैं। आज उनकी जगह व्यापारी अंगमर्दक स्त्री-पुरुषोंने ले ली है। जो अपने कामकी खास शिक्षा पाये हुए होते हैं, उन्हें शरीर-शास्त्रका ज्ञान होता है, वे जानते हैं कि शरीरमें नस-नाड़ियां और मांसपेशियोंका स्थान क्या और कहां है। पर आजके ये अंगमर्दक वह काम सप्ताहों और महीनोंमें नहीं कर पाते जो गांवके वे अपढ़ अशिक्षित नर-नारी एक बारमें या दो-चार दिनमें कर देते थे। उनके हाथमें कुछ ऐसा जादू होता था कि उसके प्रभावसे रोग छू-मंतर हो जाते थे।

आजके अंगमर्दक अनेक दिनोंतक रोगीकी चिकित्सा चलाते रहते हैं। चिकित्साके बीचमें वे स्वयं पीले पड़ जाते

हैं और रोगी हो जाते हैं। परंतु कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि इनमेंसे कोई-कोई अंगमर्दक जो पहले बीमार थे स्वस्थ भी हो जाते हैं।

शरीरकी मालिश करते और थपथपाते वक्त एकका स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति दूसरेमें प्रवेश कर जाती है। इस विधिसे शरीरका रोगी अंग सप्राण हो उठता है। मालिश करने और थपथपानेका विशेष प्रभाव और लाभ यही है। इसके लिए अंगमर्दनकी शिक्षा प्राप्त करनेकी जरूरत नहीं है, शिक्षासे हानिकी ही अधिक संभावना है।

वाष्प और तरल वस्तुका जब संपर्क होता है तो दोनों आपसमें मिल जाते हैं।

मनुष्यकी आत्मा भी एक तत्त्व है, यह तत्त्व आकाश-तत्त्वसे भी अति सूक्ष्म है। पर मनुष्यकी आत्मा जिस तत्त्वकी बनी है वह तत्त्व एक केंद्रके चारों ओर इकट्ठा रहता है। यह केंद्र है इच्छाशक्ति। अतः मनुष्योंकी आत्माओंका पारस्परिक परिवर्तन या संमिलन दो जगह रखी हुई वाष्पोंकी भांति नहीं होता। उनकी इन क्रियाओंमें पारस्परिक पसंदगी, नापसंदगी, प्यार, उदासीनता, घृणाका बड़ा प्रभाव पड़ता है।

दो आत्माओंका पारस्परिक परिवर्तन, एकके प्रति दूसरेका आकर्षण अथवा विराग हम अपनी आंखोंसे देख सकते हैं। इन क्रियाओंके फोटो लिए गये हैं जिनसे ये बातें स्पष्ट प्रतीत होती हैं।

यही नहीं, दो प्राणियोंकी आत्माओंका यह पारस्परिक परिवर्तन इतनी पूर्णताके साथ हो सकता है कि उनके लिए कविका यह कथन सर्वथा लागू होता है :

"आत्माएं दो हैं; पर वे वहती हैं एक विचारमें; हृदय दो हैं, पर धड़कन एक ही है।"

जिन ग्रामनिवासियोंके वारेमें मैंने कहा है उनका शरीर तो स्वास्थ्य और जीवनशक्तिसे भरा-पूरा रहता ही था, सर्व-साधारणके प्रति उनका अगाध प्रेम होता था और ईश्वरके प्रति अटल विश्वास। यही कारण है कि उनके शरीरसे जादूका-सा प्रभाव रखनेवाली आरोग्यकारी शक्ति निस्सरित होती रहती थी।

जवतक मर्दक कुछ दिनोंतक लगातार रोगियोंकी मालिश करता रहता है तो उसकी वहुत-सी जीवनशक्ति और स्वास्थ्य खर्च हो जाता है और वह स्वयं वीमार पड़ जाता है। अव अगर वह ऐसे आदमियोंकी मालिश करता है जो उससे अधिक स्वस्थ हैं तो वह पुनः स्वस्थ हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि मालिश कराके लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता वरन् इससे जितना स्वास्थ्य है उसे खोनेका भारी खतरा रहता है। आजके मर्दकके लिए मालिश करना व्यापार है और यह वहुत आनंददायक व्यापार नहीं है। उसे किसी तरह अपनी रोटी कमानी है और इससे मिलनेवाले पैसेके लिए ही वह यह कार्य करता है। उसे यह नहीं देखना है कि जिसकी मालिश करने वह जा रहा है उसकी मालिश करनेकी उसकी इच्छा होती है या नहीं।

यहां भी यही कहना पड़ता है:

'प्रकृतिकी ओर लौटो!'

माता यदि कमजोर और रोगी न हो तो वह अपने प्यार-

भरे हाथोंसे अपने बच्चेकी मालिश करके और थपथपाकर उसे शीघ्र और पूरा लाभ दे सकती है। यदि वह कमजोर हो तब भी तो वह अपने बच्चेमें अपने प्राणोंकी अंतिम बूंद भी खुशी-खुशी डाल ही देगी।

मैंने यह कहा है कि मालिश करते और थपथपाते वक्त मालिश करनेवालेकी जीवनशक्ति और स्वास्थ्य रोगीके शरीरमें चला जाता है। इस क्रियामें मर्दकके शरीरकी उष्णता भी रोगीके शरीरमें प्रवेश करती है।

जिसमें जितनी ही उष्णता रहती है उसे उतना ही स्वस्थ समझा जाता है। इस गर्मी, स्वास्थ्य तथा जीवनशक्तिको एक ही समझना चाहिए। इसलिए ऐसे ही आदमी, जिनके हाथ गरम रहते हैं, मालिश करनेके उपयुक्त हैं। रोगियोंके हाथ-पांव हमेशा ठंढे रहते हैं।

माता, पिता, मित्र और ऐसे लोग जो हमें हृदयसे चाहते हैं यदि वे स्वयं स्वस्थ हैं तो उनकी मालिश और थपथपानेसे हमें लाभ मिल सकता है।

यहां स्वास्थ्यसे मेरा मतलब साधारण अर्थमें ही है। सच्चे अर्थोंमें तो सभ्य समाजमें पूर्ण स्वस्थ एक आदमी भी मिलना कठिन है।

मजदूरवर्गके स्वस्थ और सुपुष्ट जन, जिन्हें मानसिक कार्य और सुधरे हुए जीवनने रक्तविहीन, कमजोर और दुर्बल नहीं बना दिया है और जिन्हें खुलेमें श्रमसाध्य काम करना पड़ता है, यदि मालिश करें और थपथपावें तो वे बहुत अधिक लाभ पहुंचा सकते हैं। पर जीवनशक्तिका प्रेषण सबमें समान रूपसे नहीं होता। यह मालिश करने और करानेवालेके

पारस्परिक प्रेम (सहानुभूति) पर निर्भर है। उनमें किसी एककी भी दूसरेके प्रति घृणा तो होनी ही नहीं चाहिए अन्यथा मालिशका कोई फल न निकलेगा।

इसलिए मालिश करानेके लिए सशक्त, स्वस्थ और सहानुभूतिपूर्ण आदमी चुनना चाहिए। वह देखनेमें ही सुंदर न हो, उसका स्वभाव मृदु और विचार भी अच्छे होने चाहिए। खुदगर्ज, कामचोर और झूठे आदमीसे कोई सहायता नहीं मिल सकती। ऐसा आदमी अपनी उष्णता और जीवनशक्ति अपने लिए बचा रखता है। वह इसका थोड़ा भाग भी, किसी भी तरह दूसरेको देना नहीं चाहता।

हमें अपनी शिक्षा, सामाजिक और आर्थिक स्थिति आदिके भुलावेमें पड़कर अपनेको दूसरोंसे ऊंचा मानकर मनुष्य-मनुष्यके पारस्परिक प्रेम और सहयोगमें व्याघात न डालना चाहिए। हमेशा याद रखो जो प्रेम बोता है उसीके खेतमें प्रेम उपजता है।

जितना ही आदमी आजके विज्ञानसे मुक्त होगा, जितना ही वह बालकके समान सरल बनेगा उतना ही वह खुश रहेगा और उतनी ही सेवा वह अपने साथियोंकी कर सकेगा।

यह आवश्यक है कि मालिशद्वारा रोगीमें जीवनशक्ति और उष्णता डालनेकी बात ही न सोची जाय। कम-से-कम मालिश करते वक्त तो इसका खयाल बिल्कुल ही न किया जाय। मालिशका एकमात्र उद्देश्य अपने भाइयोंकी सहायता करना एवं उन्हें रोगमुक्त करना होना चाहिए और इसके लिए उसमें आवश्यक सदिच्छा, लगन और तत्परता होनी चाहिए।

यदि बात इतनी ही है तो मालिश करने और थपथपानेके लिए किसी विशेष शिक्षाकी क्या जरूरत है?

शरीरका कोई भी रोग-ग्रसित अंग जिसमें दर्द, सूजन या गठिया रोग हो मला और थपथपाया जा सकता है। उदाहरणके लिए सिरमें दर्द होनेपर गर्दनपर थपथपाना और मलना बहुत लाभ करता है। पेट और पिंडलीपर थपथपाना साधारणतया बहुत लाभकर है, इससे स्वास्थ्य उन्नत होता है।

शरीरके जिस अंगकी मालिश करनी हो या थपथपाना हो उसे पहले पानीसे जरूर गीला कर लेना चाहिए। (उसमें किसी तरहका तेल लगानेकी जरूरत नहीं है।)

मालिश और थपथपानेका काम शांतिपूर्वक स्थिरभावसे और कड़े हाथसे करना चाहिए। कभी-कभी हाथोंको मुलायम भी कर देना चाहिए। मालिशकी सही तरकीब धीरे-धीरे अपने आप मालूम हो जाती है।

शरीरमें उष्णता और जीवनशक्ति पहुंचाने तथा उसे सतेज एवं सशक्त बनानेके लिए सबसे उपयुक्त समय स्नानके तुरंत बाद है।

जब शरीर गीला रहता है तब जो आदमी उसे खुले हाथसे रगड़कर सुखानेकी क्रिया करता है उसकी जीवनशक्ति और उष्णताको वह बड़ी चाहसे पीता है।

प्राकृतिक स्नानके बाद शरीरको रगड़कर सुखानेके लिए जो समुचित व्यक्तिकी सेवा पा सकता है वह कुछ हालतोंमें बहुत लाभान्वित हो सकता है और रोगसे निवारणकी राह सरल बना ले सकता है।

प्रकृतिके प्रत्येक कार्य, अपनी क्रिया और प्रतिक्रियापर निर्भर हैं। संसारके सारे संबंध आकर्षण और अपकर्षण एवं तज्जनित विनिमयके आश्रित हैं।

अन्य पौधोंके साथ लगा हुआ पौधा अकेले खड़े पौधेसे ज्यादा तेजीसे बढ़ता और पनपता है। पालतू पशुओंमें भी देखा गया है कि अकेले रहनेवाले पशुको जब अन्य पशुओंके साथ रखा और खिलाया जाता है तो वह ज्यादा खुश और स्वस्थ रहता है।

परंतु पौधे और पशु अपने जातिवालोंपर जितने निर्भर हैं मनुष्य अपने भाइयोंपर उनसे अधिक निर्भर है। मनुष्यकी सारी खुशी उसके सामाजिक जीवन, पारस्परिक प्रेम और सहायतापर निर्भर है और इनसे उसका स्वास्थ्य बहुत अधिक संबंधित है। रोगी अपने बंधु-बांधवोंके प्यारपर खास तौरसे आश्रित रहते हैं।

आपने कई लोगोंको केवल दूसरेकी प्रभावशक्तिसे यौवन प्राप्त करते एवं आश्चर्यजनक रीतिसे स्वस्थ होते देखा होगा। कई रोगी जिनकी जवानोंसे प्रेमपूर्ण मैत्री हो गई है यकायक स्वस्थ हो गये हैं और उन्हें अपने स्वस्थ होनेका कारणतक ज्ञात नहीं हुआ है। आपसमें पवित्र और उत्कृष्ट प्रकारका प्रेम होनेके फलस्वरूप हुई आत्मिक एकताके बाद जिन लोगोंने शादी या सगाई की है उनका स्वास्थ्य असाधारण रूपसे अच्छा होते देखा गया है। जो दो आदमी एक साथ सोते हैं वे सोयेमें एक दूसरेको अपनी जीवनशक्तिका एक बहुत बड़ा अंश दे सकते हैं। इस रीतिसे जवानोंकी सहायतासे[1] कितने ही बूढ़ोंने

---

[1]सी० बटेन्स्टेडने अपनी पुस्तक "स्नायुशक्तिका स्थानांतरीकरण" में सभी उम्रके ऐसे अनेक रोगियोंका वर्णन किया है जो स्थानांतरीकरणकी रीतिसे जीवनशक्ति प्रदान किये जानेपर स्वस्थ हुए हैं, पनर्यौवन प्राप्त

पुनर्यौवन प्राप्त किया है। लेकिन स्वास्थ्य-लाभ और पुनर्यौवनकी घटनाएं आकस्मिक सुयोगका फल हैं और इनके साथ अनेक प्रकारकी परिस्थितियां जुड़ी हुई हैं।

पर जीवनशक्तिके इस प्रकारके प्रयोगकी कोई प्रामाणिक रीति अभीतक ज्ञात नहीं हो सकी है। इस संबंधमें भी हमें प्रकृतिके इशारेपर चलना चाहिए। स्वास्थ्य और सुखके निर्झर तटपर वह स्वयं हमें ले जायगी।

प्रत्येक आदमीको कोई-न-कोई साथी, संगी, मित्र, सेवक या कोई आदमी ऐसा मिल जायगा जिसमें ऊपर बताये हुए गुण होंगे और वह स्नानके बाद आपके शरीरको रगड़कर सुखा देगा या इस क्रियामें आपकी सहायता करेगा। ऐसी सेवाके लिए हमें सदा कृतज्ञ होना चाहिए। इस सेवाका मूल्य पैसोंमें नहीं चुकाया जा सकता, हार्दिक कृतज्ञता-प्रकाश ही इसका समुचित पुरस्कार है। इसके विपरीत यदि आप किसी दूसरे रूपमें इसका बदला देंगे तो लाभ सदा कम होता जायगा।

हुक्मके बलपर किसी नौकरसे शरीरको रगड़वाकर न सुखवाएं। उसीसे यह कार्य लिया जाय जो मन लगाकर खुशी-खुशी यह काम करे। हमें अपनेपर निर्भर व्यक्तियोंके साथ इस प्रकारका व्यवहार करना चाहिए कि हमेशा हमारे प्रेमके कारण हमारी सहायता प्रेमपूर्वक करनेको तैयार रहें।

किया है और उनका कायाकल्पतक हो गया है। इस लेखककी धारणा है कि इस रीतिसे किसीकी भी उम्र इच्छानुसार बढ़ायी जा सकती है, स्वास्थ्य हर समय सुधारा जा सकता है और नवजीवन प्रदान किया जा सकता है। वटेन्स्टेडकी ये बातें यद्यपि कल्पना-सी प्रतीत होती हैं फिर भी उसकी बातोंसे मालिशके विषयपर काफी प्रकाश पड़ता है।

स्नानके बाद रगड़नेकी क्रियाके संबंधमें विशेष नियम बनानेकी कोई आवश्यकता मैं नहीं समझता। खुले हाथों और जहांतक बन सके शांतिपूर्वक शरीर रगड़ा जाना चाहिए।

जीवनशक्तिका स्थानांतरीकरण स्त्रीसे पुरुषमें और पुरुषसे स्त्रीमें आसानीसे हो सकता है।

पर इस कार्यमें कामुकताको किसी प्रकारका भी कोई स्थान नहीं मिलना चाहिए। रगड़नेके कार्यमें संलग्न लोगोंको सर्वथा पवित्र रहना चाहिए अन्यथा लाभके बदले हानि ही अधिक होगी।

विवाहित स्त्री-पुरुष जो एक दूसरेको रगड़कर सुखानेमें सहायता करना चाहते हैं उन्हें भी इस नियमका अवश्य पालन करना चाहिए। इस रीतिके अलावा किसी दूसरी रीतिसे भी भिन्न लिंगके लोग जीवनशक्तिके स्थानांतरीकरणमें एक दूसरेकी सहायता करना चाहें तो भी उन्हें इस नियमको सदा याद रखना चाहिए।

बिजली गिरने या किसी ऐसी ही दुर्घटनामें जिनकी आकस्मिक मृत्यु हो गई है वे अक्सर स्वस्थ एवं सुपुष्ट व्यक्तियों-द्वारा देरतक लगातार रगड़े जानेपर जी उठे हैं। यदि इस प्रकार शरीर रगड़नेसे मरा आदमी जी उठ सकता है तो यह आसानीसे समझा जा सकता है कि हमें सशक्त बनाने और हमारे रोगके निवारणमें रगड़ना और थपथपाना कितने लाभकर हो सकते हैं। निश्चय ही अनेक रोगोंमें इससे आश्चर्यजनक लाभ मिल सकता है। अतः चलिए हम प्रकृतिकी ओर लौटें! इस द्वारसे हम स्वास्थ्यप्रदेशमें प्रवेश करेंगे, आनंद और प्रसन्नता-के राज्यके हम अधिकारी होंगे। हमारी अशक्त धमनियोंमें

रक्तका शक्तिपूर्ण संचार होगा, हमारा हृदय आशाकी किरणों-से स्पंदित हो उठेगा।

वायु और प्रकाश-स्नान

प्रकृति तो मनुष्यको नंगा ही पैदा करती है और सृष्टिके आरंभकालमें वहुत समयतक वह नंगा रहता भी था। बाइ-बिल कहती है—"वे दोनों ही नंगे रहते थे—पति भी और पत्नी भी।" प्रकृति चाहती है कि अन्य प्राणियोंकी भांति मनुष्य भी सदा नंगा रहे। प्रकृतिकी इस इच्छाको कौन बदल सकता है?

नंगा–निर्वस्त्र रहना प्रकृतिके अनुकूल है, अतः सही है।

यह सभी जानते हैं कि वायु और प्रकाशके आदी पशु और पौधे, दोनों ही अंधेरी जगहमें रख दिये जानेपर मुरझाये-से, जीवन-विहीन-से हो जाते हैं। पर प्रकाशमें लानेपर उनमें फिर जीवन-ज्योति जगमगा जाती है वे प्राण पूर्ण प्रतीत होने लगते हैं। प्रकाशका प्रभाव छोटे-से-छोटे पौधेपर भी स्पष्ट दिखाई देता है। प्रकाश पाते ही उसका रंग खिल उठता है। प्रकाशकी बदौलत पशुओंमें प्राण दौड़ता-सा प्रतीत होता है। प्रकाशके आते ही वे कुलांचे मारने और दौड़ने लगते हैं।

आजका सभ्य कहलानेवाला मनुष्य हरदम कपड़ोंसे ढका रहता है। उसके शरीरका अधिक भाग मानों अंधेरेमें रहता है। उसे चाहिए कि जरा अपने कपड़ोंको दूर करें, जंगलमें जाय, शरीरपर हवाका झोंका और प्रकाशकी किरणें लगने दे और तब देखे कि कैसी सजीवता और तेजस्विताका वह अनुभव

करता है। शरीरके, वायु और प्रकाशके संसर्गमें आते ही, अंग-प्रत्यंग तेजीसे काम करने लगते हैं, जीवन-शक्ति बढ़ती है और निर्जीव, रोगपूर्ण शरीरमें स्वास्थ्यमय, हर्षोन्मादक भावनाका संचार होता है।

अंधेरी जगहोंमें बंद रहनेपर भी पशुओंके रोमकूपोंके द्वारा रोगकी गर्मी निकलती रहती है, पर कपड़ोंके कारण मनुष्य-शरीरके इस स्वाभाविक कार्यमें भी बाधा पड़ती है। अच्छा हो कि वनमें, मैदानमें या कमरेमें ही, जहांतक संभव हो अधिक-से-अधिक खिड़कियां खुली रखकर थोड़े समयके लिए ही सही, नंगे रहा जाय। यह क्रिया बड़ी प्रभावशाली और अद्‌भुत रूपसे लाभदायक सिद्ध हुई है और इसके समान शक्ति देनेवाली तो कोई दूसरी तरकीब है ही नहीं।

प्रकाश जीवन-शक्तिको सतेज करता है, और वह त्वचा, जिसे अंदरसे निकाली गंदी वायुको कपड़ोंसे ढकी रहनेके कारण, अंशतः फिर-फिर सोखना पड़ता था, इस दूषणसे मुक्त हो जाती है और खुलकर शुद्ध वायु ग्रहण कर पाती है।

इससे वायु और प्रकाशके आश्चर्यजनक एवं जीवनदायक प्रभावका कारण सरलतासे समझा जा सकता है। स्वास्थ्य-रक्षामें, नये-पुराने रोगसे मुक्ति देनेमें, और घावोंके भरनेमें, वायु और प्रकाश कितने सहायक हो सकते हैं, यह साधारण बुद्धिवालेके भी समझमें आनेवाली चीज़ है। पर डाक्टरोंकी कौन कहे, प्राकृतिक चिकित्सक भी इसका समुचित उपयोग नहीं करते यद्यपि इससे सरल, सस्ती और सदा मिलती रहनेवाली दवा दुनियामें दूसरी नहीं है।

तीव्र रोगोंमें जानका अधिक-से-अधिक खतरा बहुत तेज

बुखारमें ही रहता है, अतः उसका कम करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिए जल-चिकित्सक जलका प्रयोग करते हैं। ज्वरको कम करनेवाले अनेक प्रकारके नहान एवं गीली पट्टी आदिके बारेमें सभी जानते हैं और यह भी सबने देखा होगा कि ज्वर जलके प्रयोगसे उतर-उतरकर फिर-फिर आता रहता है। डिप्थीरिया रोगमें तो यह भय होने लगता है कि रोगीका दम न घुट जाय।

रोगीकी यह हालत देखकर जल-चिकित्सक भी चिंतित होने लगता और कभी-कभी घबरा जाता है। उस समय भी कमरेके बाहर बहती हुई वायु कहती रहती है कि मुझे भी समझो, रोग-मुक्तिमें प्रकृतिकी मैं भी सहायिका हो सकती हूं। पर वायुके बोल, जलचिकित्सककी समझमें नहीं आते। वह कमरेकी गरमीसे घबराकर खिड़कीके पास जाता है। वायु अपने शीतल करोंसे उसका जलता मस्तक पोंछ देती है। वायुके हाथोंका यह स्पर्श उसे सुखद मालूम होता है पर रोगीकी कष्टकर दशा देखकर वायुके हृदयसे उठते उच्छ्वासोंका अर्थ उसकी समझमें नही आता।

तेज बुखारसे पीड़ित रोगी अपनेपर लादे गए वस्त्रोंकी अवहेलना करता है और सदा सही मार्गपर ही ल जानेवाली नैसर्गिक वृत्तिका अनुसरण करता है। डिप्थीरियासे पीड़ित बच्चा अपने बिछावनपर लेटा-लेटा हाथ-पैर फेंकता है, यदि उसका वश चले तो वह अपने ओढ़नेको जरूर फेंक दे।

मियादी बुखारसे पीड़ित विभ्रांतचित्त रोगी अपनी संपूर्ण शक्तिसे, और यह शक्ति तीव्र ज्वरमें स्वभावतः बढ़ जाती है, बाहर निकल भागनेकी कोशिश करता है। वह कमरेकी

खिड़कीके रास्ते वाहर वहती ठंडी-ठंडी हवामें उड़कर पहुंच जाना चाहता है। घरवाले रोगीकी यह दशा देखकर भयभीत हो उठते हैं। प्रकृति पूरे जोरके साथ अपनी इच्छा जाहिर करती है, तव भी डाक्टर मानों दोनों हाथोंसे कान मूंदे रहता है। हां, जव वह विद्यार्थी था, तव उसने अपने उस प्रोफेसरका फेफड़ेकी वीमारियां और उनकी चिकित्सापर उसकी वेसुरी आवाजमें, वैज्ञानिक भापण अवश्य सुना था, जो उस भापणके कुछ वर्षों वाद ही यक्ष्मासे मर गया था। पर वह प्रकृतिके आवाजपर ध्यान नहीं देता, जैसे यह आवाज उसकी समझमें ही न आती हो।

हृदयमें प्यारका भार लिये आशा और निराशाके वीच झूलती हुई माता डिप्थीरियासे पीड़ित अपने वच्चेकी खाटके निकट वैठी रहती है। देखती है कि वच्चा अपने वदनपरकी चादर फेंक-फेंक देता है। वह वलपूर्वक अपने लालको ढंकती रहती है। यह भोली माता नहीं समझती कि प्रकृति माता उसे चादर फेंक देनेको प्रेरित कर रही है।

रातको मियादी वुखारसे पीड़ित रोगीकी तीन-तीन चार-चार मजवूत आदमी चौकसी करते हैं कि कहीं वह प्रकृतिकी आवाजपर चल न पड़े।

प्रकृतिकी सहायताको मनुष्य जान-वूझकर ठुकराता रहता है, पर दयालु प्रकृति उसपर अपने आशीर्वादकी वर्षा, चाहे जैसे, हर तरहसे करनेको उत्सुक रहती है।

इधर एक कहानी प्रचलित है कि किसी रोगीके दुर्वुद्धिके चाकर चौकीदारोंको प्रकृतिने एक वार सुला दिया था कि रोगी नंग-धड़ंग खिड़कीके रास्ते वाहर वहती जाड़ेकी वर्फ-सी ठंडी हवामें जा सके।

पड़ोसके घरमें ज्वरके कुछ रोगियोंकी रक्षा करनेके लिए प्रकृतिको अधिक कठोरतासे काम लेना पड़ा था। जाड़ेकी स्वच्छरात्रि एकाएक बादलोंकी गड़गड़ाहटसे कांप उठी। बिजली चमकने लगी। प्रकृतिने रौद्र रूप धारण कर लिया। कुछ ही क्षणों बाद कड़कड़ाती बिजली, जिस घरमें रोगी रहते थे, उसीपर गिरी और घर एक किनारेसे धधाकर जलने लगा। लोग जाग पड़े और बेखबरीमें घरसे भागे। रोगी भी अपने बिछावनसे निकलकर, जैसे नंगे वे सोये थे, वैसे ही भागे। लोग बदहवास आग बुझाने और घरकी चीजें बचानेमें लगे थे। थोड़ी देर बाद होश-हवास कुछ दुरुस्त होनेपर उन्हें रोगियोंकी याद आई तो वे उन्हें, अथवा अपनी समझके अनुसार, उनकी लाशें खोजने निकले।

रोगी उन्हें मिले। उनकी हालत बहुत ठीक थी। ज्वर बिल्कुल चला गया था। तबसे उनकी हालत सुधरती ही गई। यह देखकर सबको आश्चर्य होता था।[1]

प्राकृतिक बिजली गंदगी और सड़नपर ही गिरती है, केवल रोगपर ही गिरती है। प्रकृति, उसके कानूनके खिलाफ चलनेवालोंको सजा देती है। जंगलमें रहनेवाले स्वस्थ पशु

---

[1] जस्टकी दी हुई यह घटना हमारे अनेक पाठकोंको कपोलकल्पित जान पड़ सकती है। पर हम अपने पाठकोंको इसीसे मिलती-जुलती राजपूतानेकी एक घटना सुनाना चाहते हैं, जिससे पाठकोंको जस्टकी उक्त बातपर अपना विश्वास जमानेमें मदद मिलेगी।

झूंझनूंमें एक देवड़ा-परिवारका श्रीभोकरमल नामका एक व्यक्ति था। वह पागल हो गया। उसका अनेक प्रकारका इलाज हुआ पर लाभ कुछ न हुआ। घरके लोगोंको वह बहुत परेशान करता था। अंतमें

उस विजलीके कहां शिकार होते हैं, उसके गिरनेसे तो घरमें रहनेवाले अस्वस्थ पशु और उनस बढ़कर रोगकी खान मनुष्य ही मरते हैं।

कटि-स्नानसे भी सभी तीव्र रोगोंमें बहुत लाभ होता है। इसके प्रयोगसे भयंकर ज्वर भी शीघ्र कम हो जाता है, पर यह स्नान न उतनी देरतक लिया ही जा सकता है, न उतनी वार ही, जितनी वार कि प्रकाश और वायु-स्नान, जिसके लेनेके लिए केवल नंगे होकर थोड़ा टहलना बस होता है।

पालतू पशुओंको मनुष्य प्राय: विल्कुल अप्राकृतिक दशामें रखता है। अक्सर उनको तंग, घिरी, अंधेरी जगहोंमें वंद

विवश होकर और देवीकी कृपा पानेके खयालसे लोगोंने उसे झूंझनूंमें राणी सतीके स्थानपर रखा। पर उसकी हालत ऐसी नहीं थी कि खुला रखा जा सके, इसलिए एक नीमके पेड़के नीचे पोकरमलको जंजीरसे बांधकर रखा गया था। एक दिन रातको बहुत जोरोंका, जैसा कि राजपूतानेमे प्राय: नहीं होता, पानी वरसा। उस नीमके पेड़के नीचे पानी भर गया। रोगी रातभर उस पानीमें पड़ा रहा और ऊपरसे वौछारोंसे भीगता रहा। वहां कोई उसकी रखवालीके लिए न था, अपने पागलपनके लिए उपेक्षित था वह। सवेरे लोग क्या देखते हैं कि रातकी जोरदार ठंडी हवाके झोंकों और पानीकी वौछारने रोगीका दिमाग ठंडा कर दिया। उसका पागलपन कतई जाता रहा। शायद लोगोंने समझा होगा कि राणी सतीकी कृपासे ऐसा हुआ पर वास्तवमें तो 'विश्वकी रानी प्रकृति' ने जो सदा सतपर स्थिर रहती हैं, कभी व्यभिचारिणी नहीं होतीं, पोकरमलके मलको उस रात अपने हाथों मल-मलकर धोया होगा। हां, यह माना जा सकता है कि झूंझनूंकी राणी सतीने प्रकृतिसे ऐसा करनेकी प्रार्थना की होगी।

—अनुवादक

रखता है, जहां स्वयं पशुके मल-मूत्रकी दुर्गंध उड़ती रहती है। उन्हें सड़ा-गला घास, भूसा इत्यादि खानेको दिया जाता है। फल यह होता है कि पशुको भयंकर बीमारियां हो जाती हैं। तथापि पशुको न कभी तेज खतरनाक ज्वरका ही सामना करना पड़ता है न वह मियादी बुखारके रोगीकी तरह विक्षिप्त ही होता है। ऐसे पशुको चाहे कैसा ही मौसम क्यों न हो, अगर बीमार पड़ते ही वायु और प्रकाशविहीन तंग गंदी कोठरीमें बंद करनेके बजाय खुले मैदानमें छोड़ दिया जाय तो वह शीघ्र स्वस्थ हो जायगा।

आदमीको ज्वर हो जानेपर वह इसलिए तेजीसे बढ़ता एवं खतरनाक हो जाता है कि भीतरकी गरमीको न निकलने दिया जाता है न पशुके नंगे शरीरकी तरह कपड़ोंसे ढके मनुष्य-शरीरको वायु शीतल ही कर पाती है।

गरम तरल पदार्थसे भरे बर्तनको ठंडे पानीमें रख देनेसे जिस प्रकार वह ठंडा हो जाता है उसी प्रकार ठंडी वायुके संपर्कमें आनेपर शरीरकी गरमी कम हो जाती है।

अतः प्राकृतिक चिकित्सक जब कभी किसी रोगीको देखने जाय तो उसे पहला काम यह करना चाहिए कि यदि वह रोगीके कपड़े न उतरवा सके तो ओढ़ना जरूर हटवा दे, और यदि उसकी हिम्मत रोगीको बाहर खुलेमें ले जानेकी न पड़ती हो तो, जाड़ेकी ऋतु होनेपर भी कमरेकी अधिक-से-अधिक खिड़कियां खुलवाकर ठंडे गरम मौसमके अनुसार पंद्रहसे बीस मिनटतक रोगीको नंगा टहलने या लेटने दे। गरमीके दिनोंमें वायु और प्रकाश-स्नान एकसे तीन घंटेतक दिया जा सकता है।

गरमीके दिनोंमें सबेरेकी ठंडी-ठंडी हवाका प्रयोग किया

जा सकता है। हवा जितनी ठंडी होगी, लाभ उतना ही निश्चित होगा।

ठंडक, सर्दी, जुकामसे सभी पुराने खयालके वड़े-वूढ़े डरते रहते हैं और प्राकृतिक चिकित्सक भी इस डरसे अपनेको मुक्त नहीं कर पाता, यद्यपि वह जानता है कि अन्य तीव्र रोगोंकी भांति जुकाम भी शरीरकी शुद्धिका प्रकृतिकी ओरसे एक प्रयत्न है और हर दशामें शुभ लक्षणके समान है। जुकामका उचित उपचार होनेपर वह कभी अनिष्टकर नहीं सिद्ध होगा वल्कि हर हालतमें स्वास्थ्यके लिए लाभकर ही होगा।

डाक्टरोंके दिमागमें तो जो घास युनिवर्सिटीमें लगाई जाती है, वह शीघ्र इतनी अधिक गहरी जड़ जमा लेती है और घनी हो जाती है कि उसका विल्कुल साफ हो सकना सर्वथा असंभव हो जाता है।

कहिए कितना अच्छा होता, यदि ईश्वर किसी महापुरुप-को इस संसारमें भेजता, जो वुद्धिका भंडार होता और जिसकी वाणीमें देवोंका-सा वल होता, जो मनुष्य-जातिके वड़े-से-वड़े सहायक ठंडक, वायु और प्रकाशका भय लोगोंके हृदयोंसे निकाल देता, जिससे स्वास्थ्य और प्रसन्नता मिलती तथा कितने ही मनुष्योंके अमूल्य प्राण असमय प्रयाण करनेसे वच जाते।

मनुष्य प्रकाश और वायुका सवसे वड़ा पुत्र है। वायु और प्रकाश उसके जीवनके विशेप अंग हैं, जैसी कि प्रकृतिकी इच्छा है, उसे प्रकाश और वायुमें रात हो या दिन, गरमी हो या जाड़ा, निर्वस्त्र ही रहना चाहिए।

मनुष्य अपनेको प्रकाश और वायुसे दूर रखनेका पाप वहुत अधिक दिनोंसे करता आ रहा है, अतः उसके प्रकृतिकी

ओर लौटनेकी, शीघ्र-से-शीघ्र लौटनेकी विशेष आवश्यकता है। बड़े दुःखकी बात है कि प्रकाश और वायुसे पूर्ण लाभ उठानेके लिए मनुष्य अपनेको काफी देरतक निर्वस्त्र नहीं रख पाता। इस बारेमें ज्यादती तो कभी हो ही नहीं सकती। रात-दिन सरदी-गरमी और बरसातके दिनोंसे अधिक समयतक वह क्या नंगा रह सकता है?

यह सोचना गलत होगा कि मनुष्य आदिमें बालोंसे ढका हुआ था और अब जब कि उसका यह चोगा उतर गया है, उसके लिए बिना कपड़ोंके रहना कठिन है। कुछ थोड़े-से लोगोंके शरीरपर बाल अवश्य होते हैं, पर उन्हें अपवाद ही मानना चाहिए। शेष लोगोंके शरीरपर तो, जिनमें ऐसे लोग भी शामिल हैं, जो सृष्टिके आदिसे ही नंगे रहते हैं या अपने बदनको कम-से-कम ढकते हैं, बाल कतई नहीं होते। हाथ, मुंह, गरदनपर भी, जो आजतक कपड़ोंसे बचे रहे हैं, बाल नहीं हैं। प्रकृतिने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्यको, समझकर ही बाल नहीं दिये हैं, जिसमें वह स्वास्थ्यके सहायक वायु और प्रकाशके सीधे संपर्कमें आ सके। कपड़े पहननेसे इसीलिए उसे रोग भी अधिक होते हैं और यदि वह नंगा रहने लगे तो लाभ भी अधिक होगा।

वायु और प्रकाशसे सर्दी-जुकाम होता है, यह बात ही साबित करती है कि जीवनशक्तिको जगानेकी उनमें बहुत अधिक शक्ति है। और जहां ठंडी हवा और हवाके झोंके लगनेसे बहुत जल्द जुकाम होता है, वहां उनका उपयोग, रोगनाशका प्रभावकारक और उत्तम साधन है।

प्रकृतिने जाड़े और ठंडककी इसीलिए व्यवस्था की है कि पशु-पौधे और पृथ्वीपर होनेवाली सड़न रुक जाय, संक्रामक

कृमि, सड़नेसे पैदा हुए कीड़े-मकोड़े और गंदगी फैलानेवाले छोटे जीव मर जायं। रोगी शरीरके लिए तो इस प्रकारकी सफाईकी आवश्यकता वहुत ही अधिक रहती है।

जिसे खुजली हुई हो, यदि वह जाड़ेके दिनोंमें, नंगा ही, खुले वदन निकले तो उसके खुजली पैदा करनेवाले कृमि जरूर मर जायंगे। वायु और प्रकाशकी शरण जानेपर इसी प्रकार यक्ष्मासे पीड़ित अनेक रोगियोंके फेफड़ोंमें पैदा हुए कृमि भी मर जायंगे, जो वहां पड़े विजातीय द्रव्यकी सड़नके कारण पैदा हो जाते हैं।

जो स्वस्थ हैं और जिनका शरीर सुदृढ़ है, उनको तो कम, पर रोगी और कमजोर व्यक्तियोंको अपने अंदरकी गरमी कम करने एवं जीवनशक्तिको वढ़ानेकी वड़ी आवश्यकता होती है।

एक वार मैंने एक डाक्टरसे पूछा कि प्रकाश और वायु-स्नानका उपयोग हर रोगमें और खासकर ज्वरमें क्यों इतना कम किया जाता है? तो उन्होंने जवाव दिया कि "अभीतक इस स्नानपर वहुत कम प्रयोग किए गए हैं।"

लड़कोंको कई वर्षतक स्कूलमें पढ़ना पड़ता है, फिर कालेजमें, और इसके वाद पांच वर्षतक डाक्टरी सिखाई जाती है। कई लड़के तो परीक्षा पास करनेके वाद भी अधिक जानकारीके लिए कई वर्षतक और पढ़ते रहते हैं, पर इतनेपर भी उनमें प्रकाश और वायु, सर्दी और गरमीके प्राकृतिक प्रभावके अनुभव करनेकी शक्ति पैदा नहीं होती, और न वे विना प्रयोग किये, यही समझ पाते हैं कि वायु और प्रकाश-स्नान नितांत निर्दोष, प्रभावकर, स्वास्थ्यरक्षक जीर्ण एवं तीव्र रोगनिवारक हैं।

मैं ऐसे भीरु प्राणियोंको बता देना चाहता हूं कि मैंने इस स्नानका प्रयोग अनेक प्रकारके रोगों एवं उनकी अनेक दशाओंमें किया है और मेरी आशाके अनुसार ही बड़े प्रशंसनीय परिणाम प्राप्त हुए हैं।

बहुधा ऐसा हुआ है कि मेरे समझा देनेपर रोगी आरंभसे ही खुशी-खुशी यह नहान लेनेको राजी हो गए।

जवान और बूढ़े दोनों ही प्रकारके ऐसे रोगी, जिन्होंने मोटे-मोटे ऊनी कपड़े पहनकर तथा और भी अनेक प्रकारसे अपने-को वायु और प्रकाशसे दूर रखकर अपने शरीरको अत्यंत सुकु-मार बना लिया था, धीरे-धीरे आदत डाले बिना ही, एकाएक नंगे होकर, बहती हवामें, बरसते बरफ और पानीमें, कड़कड़ाते जाड़ेमें, खुली जगहमें वायु और प्रकाश-स्नान लेनेको तैयार हो गए।

कुछ तो ऐसे भी आये जो वायु और प्रकाश-स्नान लेनेके स्थानतक चलकर जानेमें अशक्त थे। ज्यों ही उन्होंने अपने कपड़े उतारे; वे अपनेमें शक्तिका अनुभव करने लगे, और जिस प्रकार वे घरसे आये थे उससे बहुत कम कठिनाईसे और अधिक तेजीसे घर गये। वायु और प्रकाशके स्नानार्थियोंमें बहुत कम-जोर और रोगी, जवान ही नहीं, सत्तर-सत्तर अस्सी-अस्सी वर्षके बूढ़े-बूढ़ी और नामी-नामी व्यक्ति थे।

तीव्र रोगोंमें, खास तौरपर तेज बुखारमें, रोगीको इस स्नानसे ऐसी ताजगी और ताकत मालूम होती है कि अपने भयभीत घरवालोंके बार-बार कहनेपर भी वे कमरेके खिड़कीके निकटसे टलते नहीं।

नये रोगमें तो अनेक बार लाभ इतना आनन-फानन

हुआ कि रोगीके आस-पासके लोग आश्चर्यमें डूब गये।

न्यूयार्कके निकट स्थित मेरे यंगवार्न नामक प्राकृतिक चिकित्सालयमें हर मौसममें, और खासकर जाड़ेके दिनोंमें, वायु और प्रकाशस्नान लोग बड़ी मौजसे लेते है ।

जिस प्रकार गरम कमरेमें बैठकर आंधीकी बात करनेपर वह बड़ी रहस्यमयी-सी प्रतीत होती है, पर खुलेमें जब उसका अनुभव कर लिया जाता है, तो उसकी सारी भयंकरता दिमागसे निकल जाती है, उसी प्रकार ठंडके दिनोंमें वायु एवं प्रकाश-स्नान लेनेकी बात जितनी विचित्र मालूम होती है, उतना स्नान स्वयं नहीं।

वायु और प्रकाश-स्नानसे शरीर गरम रहता है, ठंडक नहीं मालूम होती, ताकत बढ़ती है। इसे जारी रखनेपर इसका लेना आसान हो जाता है और इसके साथ जो रहस्य-सा जुड़ा प्रतीत होता है वह चला जाता है।

गरमीके दिनोंमें सवेरे ही वायु और प्रकाश-स्नान लेना बड़ा आनंद देता है। सवेरेकी ठंडी-ठंडी मजेदार हवाके सुखद स्पर्शसे चित्त प्रसन्न हो जाता है। फिर सूर्यकी कोमल रश्मियां शरीरपर लगती हैं। उनकी गरमी अधिक होनेपर किसी ठंडी छांहदार जगहमें जा सकते हैं। यह स्नान, जाड़ा हो या गरमी, बराबर लेते रहना चाहिए। जाड़ेका एक अपना लाभ यह है कि त्वचा शीघ्र शीतल हो जाती है। अतः यह स्नान गरमीके दिनोंकी तरह जाड़ेमें अधिक देरतक लेनेकी जरूरत नहीं पड़ती।

इतना कह लेनेके बाद मेरी समझमें अब किसी भी समझदारको विश्वास दिलानेकी जरूरत नहीं रह जाती कि वायु और प्रकाश-स्नानसे किसी भी हालतमें कोई नुकसान होनेकी संभावना

नहीं है। कितने ही जीर्ण रोगियोंके लिए तो मैंने कई बार चाहा है कि उन्हें तेज जुकाम या कोई तीव्र रोग हो जाय। यदि ऐसा हो जाता तो मैं अवश्य ही रोगीके लाभके लिए उसका उपयोग करता। पर मेरी ऐसी चाहना पूरी होनेका सौभाग्य मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ। यदि जुकाम हो जाय तो भी वायु और प्रकाश-स्नान छोड़नेकी जरूरत नहीं, बुद्धिमत्तापूर्वक उसे लेते रहना चाहिए। इसे लेते रहनेपर जीवनशक्ति अधिकाधिक बढ़ती है, शरीर गंदगी निकाल फेंकनेमें अधिक सफल होता है। जुकाम-से जो अंदरूनी गरमी पैदा हो जाती है वह इस स्नानसे शांत हो जाती है जिससे रोगीका कष्ट कम हो जाता है और वह आराम अनुभव करता है।

प्राकृतिक चिकित्सकके लिए यह आवश्यक है कि वह वायु और प्रकाश-स्नानके संबंधमें अपने विचार स्पष्ट कर ले और जब उसका उपयोग करे तो उसके लाभके संबंधमें किसी प्रकारकी शंका न करे। यदि इस स्नानके प्रयोगसे रोगीको जुकाम होनेपर, प्राकृतिक चिकित्सक घबराकर उसे वायु और प्रकाशसे दूर गरम कमरेमें बंद कर देगा, और कहीं किसी दवाका प्रयोग करा बैठेगा तो रोगी कमजोर हो जायगा। निकलता हुआ विजातीय द्रव्य शरीरके अंदर ही रुक जायगा और परिणाम बुरा तो होगा ही, कभी-कभी खतरनाकतक हो सकता है।

पर सुस्थिरता और दृढ़ताकी हमेशा विजय होती है। इस चीजका विश्वास मैं हर नये आदमीको आरंभमें ही करा दिया करता हूं, अतः पैसा लेकर स्वास्थ्य ठीक रखनेकी राय देनेवाले डाक्टरसे अधिक बुद्धिमती प्रकृति और उसके स्वास्थ्यप्रद

साधनोंमें विश्वास रखकर पहले हर एकको स्वयं वायु और प्रकाशस्नान करना चाहिए, और फिर अपने कुटुंबियोंको कराना चाहिए।

वायु और प्रकाश-स्नानसे मिले लाभके अनुभवसे प्रभावित हुए कितने ही पुरुषों और स्त्रियोंको भी गरमीमें ही नहीं, जाड़ेमें भी अपने कमरेकी खिड़कियोंके सामने खड़े होकर यह स्नान उत्साहपूर्वक लेते देखकर मेरी तबियत खुश होती है।

यदि वायु और प्रकाश-स्नानका लोग आम तौरसे उपयोग नहीं करते तो मैं यह उनकी नहीं, प्राकृतिक चिकित्सकोंकी ही गलती कहूंगा; क्योंकि सर्वसाधारणको तो अपने स्वास्थ्यके बारेमें सोचनेकी शिक्षा ही नहीं मिलती, उनमें तो बिना समझे-बूझे, बिना तर्क किये जो कहा जाय, उसे करनेकी आदत डाली जाती है।

रात और दिनको, जाड़ेमें और गरमीमें, नंगे रहकर अबाध रूपसे वायु और प्रकाश-स्नान करते रहना सर्वथा प्राकृतिक एवं एक श्रेष्ठ स्वास्थ्यकर स्वभाव है। पर और किसी तरहकी रुकावट न भी हो तो आजकी कापुरुष और निर्बल पीढ़ीके लोगोंमेंसे कौन हमेशा नंगा रहेगा? अतः इस विषयमें प्रत्येकको अपनी सुविधा और समयके अनुसार यह स्वयं निश्चित करना चाहिए कि सर्दी-गर्मीको देखते हुए कितनी देरतक और कितने समय बाद वह प्रकाश-स्नान करे। सिद्धांत यह है कि जितनी देरतक और जितनी जल्दी-जल्दी यह स्नान किया जाय, अच्छा है।

यदि वायु और प्रकाश-स्नान, खुलेमें तथा वनमें जाकर लिया जा सके तो वह कमरेमें लेनेकी अपेक्षा अधिक लाभकर

होगा। प्रत्येक जंगलमें ऐसी खुली जगहें होती हैं, जहां यह स्नान मजेमें सबेरे ही लिया जा सकता है। गरमीके दिनोंमें प्रातः-कालका समय यह स्नान करनेके लिए बहुत उपयोगी है। यदि इच्छा होगी तो यह स्नान करनेका मौका भी मिल जायगा और समय भी निकल आवेगा।

नदी, समुद्र, तालाव और झीलके किनारे जहां लोगोंके स्नानके लिए घाट बने होते हैं, वायु और प्रकाश-स्नानके लिए भी, बहुत उपयोगी हो सकते हैं। वहां जब कोई चाहे, जितनी देरतक चाहे, बहुत हल्के कपड़े पहनकर वायु और प्रकाश-स्नान बड़े मजेमें ले सकता है। धीरे-धीरे वहां बिल्कुल नंगे रहकर यह स्नान करनेके स्थान बनवाए जा सकते हैं।

लेकिन ऐसे लोग खासकर औरतें, जिन्हें खुलेमें वायु और प्रकाश-स्नान लेनेकी सुविधा प्राप्त नहीं है, जाड़ा, गरमी, बरसात, सभी ऋतुओंमें, अपने कमरेकी खिड़कीके निकट रहकर नित्य ऐसे स्नान कर सकती हैं। जो लोग यह स्नान आरंभ कर रहे हों, वे इस रीतिसे यह स्नान जाड़ेमें भी शुरू कर सकते हैं। बच्चोंको, यह स्नान खास तौरसे, और जन्मके दिनसे ही करना चाहिए। कमरेमें कराना हो तो सबेरे सोकर उठते ही प्रातःकालका समय ठीक रहेगा। उन्हें इसमें शीघ्र ही आनंद मिलने लगेगा। जब उन्हें वह दिया जायगा तो वे आनंदसे कूदने-फांदने लगेंगे। यदि इस रीतिका अनुसरण सर्वसाधारण करने लगें तो आगेकी पीढ़ीके खूब स्वस्थ और सुदृढ़ होनेकी आशा की जा सकती है। वायु और प्रकाश-स्नान लेते समय बदनपर कोई कपड़ा न रहे, न जूता हो, न मोजा।

वायु और प्रकाश-स्नान करते समय, खास तौरसे जाड़ेके

दिन हों, तो खूब कसरत करनी चाहिए। यह कसरत टहलने और दौड़नेके रूपमें हो सकती है।

वायु और प्रकाश-स्नानके बाद शरीरमें गरमी लाना अत्यंत आवश्यक है। तेजीसे टहलनेसे, कोई श्रम-साध्य काम करनेसे, एवं घर-गृहस्थीका काम करनेसे या केवल ओढ़कर लेटनेसे यह काम बहुत अच्छी तरह पूरा होता है।

यह समझना भूल है कि वायु और प्रकाश-स्नान बदनकी गरमीको कम करनेके लिए किया जाता है। जिस प्रकार हर समय अंगीठीके पास बैठे रहनेवालेको जाड़ा कभी नहीं छोड़ता, उसी प्रकार ठंढमें वायु और प्रकाश-स्नान लेनेवालेका शरीर यह स्नान लेनेके समयके सिवा हर समय अधिक गरम रहता है।

कमरेमें नंगे रहनेका लाभ भी कम नहीं है।

यदि प्राकृतिक स्नान लेनेके बाद नहाकर और सारे शरीरको रगड़कर गरम कर लेनेके बाद, वायु और प्रकाश-स्नान किया जाय तो रक्त हाथ-पैरोंकी अंगुलियोंतकमें, तथा त्वचाकी ऊपरी सतहतक तेजीसे दौड़ने लगता है। उस समय यह स्नान करनेमें आसानी होती है और मामूलीसे अधिक देरतक लिया जा सकता है। एक बार परीक्षा कर देखिए तो आपको मेरे कथनकी सचाईमें विश्वास हो जायगा।

वायु और प्रकाश-स्नान करनेके अलावा बरसते पानीमें नंगे सिर चलना भी बहुत लाभदायक है।

जब समय मिले, और मौका मिले, तब वायु और प्रकाश-स्नान करनेवाले भी नंगे पैर जरूर चलें।

विशेष स्नान, साधारण स्नान अथवा सिर धोनेके बाद

या नंगे पैर टहलनेके बाद भी शरीरको तौलियेसे सुखाना अप्राकृतिक है। यह आदत ठीक नहीं है। खुलेमें खूब कसरत कीजिए, बदन अपने आप सूख जायगा।

जाड़ा, गरमी, बरसात सभी दिनोंमें सोनेके कमरेकी खिड़कियां रातमें भी खुली रखनी चाहिए।

धूप-नहान भी एक प्रकारका वायु और प्रकाशस्नान है। इसके लिए किसी वनमें जाकर निर्वस्त्र होकर जमीनपर लेटना चाहिए। यदि धूप बहुत तेज हो और आपने कभी पहले धूप-नहान न लिया हो तो बदनको जलनेसे बचानेके लिए बदनपर कोई पतला-सा कपड़ा या बड़ा अच्छा हो कि ताजी हरी पत्तियां डाल ली जाएं।

ठंडी गीली मिट्टी भी सारे बदनपर लगाकर उसे जलनेसे बचाया जा सकता है।

धूपसे जलना न हानिकारक है न खतरनाक, पर जले हुए स्थानोंमें अक्सर बहुत पीड़ा होती है। अतः जहांतक बन सके इस प्रकार जलनेसे अपनेको बचाना चाहिए। यदि कहीं जल ही जाय तो उसकी दवा है ठंडे पानी एवं ठंडे पानीसे भीगी पट्टियोंका प्रयोग। (गीली मिट्टी लगाना भी उतना ही लाभकर होगा)। आम तौरसे काममें लाये जानेवाले मरहम और तेलोंका प्रयोग कभी न करना चाहिए।

जब धूप बहुत तेज हो, तब धूप-नहान बहुत अधिक देरतक कभी नहीं लेना चाहिए। वायु और प्रकाश-स्नान लेते समय कभी धूपमें और कभी सायामें रहा जा सकता है।

यह आवश्यक है कि धूप-नहान जमीनपर लेटकर ही लिया जाय। घरकी छतपर या बिछौनेपर लेटकर लेना,

जैसा कि लोग अक्सर किया करते हैं, ठीक नहीं है। मनुष्य धरतीका बेटा है।

पृथ्वीके सीधे संपर्कमें आनेपर मनुष्यपर जो जीवनदायक प्रभाव पड़ता है, उसपर मैं सुविस्तृत प्रकाश फिर डालूंगा।

यदि नंगे होकर वायु और प्रकाश-स्नान लेनेका मौका न मिले तो हलके कपड़े पहनकर खुली जगहमें, और उसका भी मौका न मिले तो अपने कमरेमें ही लेना ठीक होगा। जब धूपमें लिया जाय तो मुंहको धूपसे बचाना चाहिए।

धूप-नहानके बाद कटि-स्नान लेकर शरीरकी गरमी शांत करनी चाहिए।

झंझरीदार झोंपड़ी

मैदानमें बनी झोंपड़ीमें जिसमें वायु और प्रकाश निर्बाध रूपसे आते हों, सोनेसे बड़ा लाभ होता है।

यह बिलकुल मामूली झोंपड़ी होती है। वर्षाके पानीसे बचावके लिए ऊपर छाजन डाल देते हैं। इसमें दीवारें नहीं होतीं, बिलकुल खुली या झंझरीदार होती है। आंधी और तेज हवासे बचनेके लिए परदे होते हैं और जाड़ेके दिनोंमें घोर ठंडसे बचनेके लिए सरकंडे आदिकी टट्टी या कम ऊंचाई-का काठका परदा लगा दिया जाता है जिसमें वायुका प्रवेश अच्छी तरह होता रहे। अगर खिड़कियां और रोशनदान काफी हों तो दीवारें भी रखी जा सकती हैं और तब यह रहनेके काममें भी लायी जा सकती हैं। छतमें भी, रोशनदान रखना

अच्छा होता है जिसमें खिड़कियां बंद होनेपर वे खुले रखे जा सकें।

शरीरके लिए, विशेषकर रात्रिकालमें जब वह पाचन-कार्यमें संलग्न रहता है, शुद्ध ताजी हवा परमावश्यक है। इस दृष्टिसे इस तरहकी झोंपड़ीमें सोना स्वास्थ्यके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिनके बाग-बगीचे आदि हैं वे रहनेके लिए ऐसी झोंपड़ियां मजेमें बनवा ले सकते हैं।

जंगलमें बने हुए मकानोंमें भी रसोईघर, रद्दी चीजों आदिकी गंध रहनेके कमरोंमें पहुंच सकती है। वायुके दूषित होनेका एक कारण यह भी होता है कि एक ही मकानमें नीचे-ऊपर बहुतसे मनुष्य रहा करते हैं और पत्थरकी दीवारोंमें घुसी हुई दुर्गंध बहुत दिनोंतक रुकी रहती है; इसलिए ऐसे मकानोंकी हवा बिलकुल शुद्ध कभी नहीं रहती। झंझरीदार झोंपड़ेमें यह खराबी नहीं पायी जा सकती। सर्दी, आंत्रिक सन्निपात ज्वर, विसूचिका, गठिया, घातक अर्बुद, चर्मरोग, फोड़ा या और कोई भी रोग हो, शुद्ध हवा उसे दूर करनेमें सबसे अधिक सहायक होती है।

सारे सुखोंका मूल आधार स्वास्थ्य ही है। मनुष्य भौतिक सुखोंका उपभोग अपने स्वास्थ्यके अनुरूप ही कर सकता है। इस तथ्यका ज्ञान हो जानेपर लोग झंझरीदार झोंपड़ीमें रहनेका लाभ समझने और उसका निर्माण करने लगेंगे और तब प्रकृतिकी गोदमें बनी हुई इन सुंदर झोंपड़ियोंमें सोना या रहना लोगोंके लिए आश्चर्यका विषय नहीं रह जायगा और इन्हें नगरके कमरोंपर बहुत तरजीह दी जाने लगेगी जो गंदे, दुर्गंधसे विषाक्त और ऐसे रोगोंके उत्पत्ति-स्थान होते हैं

जो शरीरको ही विकृत और विषाक्त नहीं करते बल्कि सभी प्रकारके मानसिक और आध्यात्मिक विकारों, जड़ता और उन्माद, तृष्णा और विनाश, पाप और अपराध, घृणा और द्वेष, कलह और संघर्ष—संक्षेपमें संसारकी सभी बुराइयोंके कारण होते हैं।

यह भय नहीं करना चाहिए कि इस तरहकी झोंपड़ीमें रहनेपर जाड़ेके दिनोंमें ठिठुरकर मर जायेंगे। अगर साधारण तोशक और रजाई या कंबल हों तो मैदान या जंगलमें बनी ऐसी झोंपड़ीमें आरामसे रहा जा सकता है; क्योंकि शुद्ध और ताजी हवामें सांस लेनेपर भरे और गंदे कमरेमें सांस लेनेकी अपेक्षा शरीरमें अधिक गरमी पैदा होती है।

इन झोंपड़ियोंमें सोनेवालों और उनके कपड़ोंका वर्षासे मजेमें बचाव हो जाता है। मौसम अच्छा होनेपर खुले मैदानमें सोना झंझरीदार झोंपड़ीमें सोनेकी अपेक्षा अधिक लाभ-दायक होता है; क्योंकि हम प्रकृतिकी ओर जितना ही बढ़ते जायंगे वह हमें उसका उचित पुरस्कार देती जायगी। मैदानमें सोनेपर हम अविराम गतिसे विचरण करनेवाले तारोंतक पहुं-चते हैं और मंद समीरण हमारा आलिंगन करता रहता है। सुंदर रात्रि मनको तो मुग्ध करती ही है, शरीर तथा आत्माकी सारी कमजोरियोंको भी दूर कर देती है।

अगर कोई मनुष्य मकानसे बाहर खुले मैदानमें सोता है तो इसमें दिखावे या उपहासकी कोई बात नहीं है जब कि खरहे, हिरन, बारहसिंगे, सूअर तथा अन्य बहुतसे जीव मैदानमें ही रहते हुए अपनी साफ चमकीली आंखों, शरीरकी स्फूर्ति और शक्ति, स्वास्थ्य तथा प्रकृतिसे प्राप्त अन्य अच्छे गुणोंको

उत्तम ढंगसे बनाये रख सकते हैं। ये पशु मनुष्योंकी तरह आचरण नहीं करते जो अपने स्वास्थ्यकी उपेक्षा ही नहीं करते, उसे अपने ही पैरोंसे रौंदा करते हैं जिससे उनका जीवन कटु और दुःखमय हो जाता है।

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भारी-भरकम मकानोंसे छोटे हलके मकान अच्छे होते हैं। बागोंमें या वृक्षोंसे परिवेष्टित छोटे-छोटे मकान अधिक बनने चाहिए। गलियोंमें कतारमें बने हुए मोटी दीवारोंवाले मकान स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अच्छे नहीं होते। नगरकी सीमापर बने हुए मकान भीतरके मकानोंसे कुछ अच्छे होते हैं। मकानोंकी बनावट ऐसी होनी चाहिए जिसमें हवा और रोशनी बिना किसी रुकावटके हमेशा आती रहें।

वेष-भूषा

प्रकृतिकी इच्छा है कि मनुष्य नंगा रहे; और इसी तरहके जीवनके उपयुक्त उसने मनुष्यके शरीरको बनाया है। यदि ऐसी बात न होती तो मनुष्य चरखे-करघेका आविष्कार करनेके बहुत पहले ही मर-खप गया होता। इसलिए यथार्थ बात यही है कि मनुष्यको किसी तरहके भी कपड़े नहीं पहनने चाहिए।

हम अपने शरीरको चाहे कुछ क्षणोंके लिए ही क्यों न ढकें, किंतु ऐसा करना हमारे स्वास्थ्यके लिए बुरा है। मनुष्यको प्रकृतिने कैसा स्वास्थ्य दिया था, उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति कितनी तीव्र थी, उसे कितनी उम्र मिली थी और वह कितने आनंद और सुखका अधिकारी था ?—इसका

ज्ञान हमें नहीं है, अतः हम यह नही समझ पाते कि कपड़े पहनकर और फलतः अपने शरीरको प्रकाश और वायुसे वंचित रखकर मनुष्य-जातिने अपने शरीरको कैसी कल्पनातीत हानि पहुंचाई है। शीतोष्ण कटिवंधमें अभी कई ऐसी जातियां हैं (उदाहरणके लिए फायर आईलैंडके रहनेवाले तथा दूसरे लोग) जो जाड़ा हो अथवा गरमी, कभी कपड़े नहीं पहनतीं। कुछ ही वर्ष हुए समाचार-पत्रोंने योरोपनिवासी किसी कैप्टन स्मिथकी सारे कटिवंधोंमें की गई उस यात्राका वर्णन किया था जो उन्होंने विना कपड़े विलकुल नंगे वदन की थी।

आज हम एकाएक फिरसे सवके नंगा रहना शुरू करनेकी आशा क्यों नहीं कर सकते, यहां यह वतानेकी मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

पर इस वातकी सख्त जरूरत है कि हम ऐसे कपड़े ही पसंद करें और वनावें जो वायु और प्रकाशको शरीरतक आसानीसे और भरपूर पहुंचने दें और जिनसे होकर शरीरकी दूपित वायु विना किसी कठिनाईके निकलती रह सके।

इधर वहुत दिनोंसे स्त्री और पुरुष दोनोंके लायक अनेक प्रकारके हवादार कपड़े वाजारमें विकने लगे हैं, पर जो कपड़े सिलवाए जायं उनका सछिद्र और हवादार होना ही काफी नहीं है, वल्कि वे चुस्त न होकर खूव ढीले-ढाले भी होने चाहिए।

कपड़े अजीव किस्मके और वहुत काट-छांटकर सिले हुए नहीं होने चाहिए, अन्यथा वे व्यर्थमें लोगोंका ध्यान आकर्षित करेंगे। पर न तो कुरुचिपूर्ण फैशनका गुलाम होनेकी जरूरत है और न भड़कीले कपड़ोंको मान्यता देनेकी ही आवश्यकता।

इस संवंधमें "वढ़िया कपड़े पहनकर आदमी वड़ा दिखाई

देता है", लोगोंकी यह आम धारणा बड़ी निराशाजनक है। पर हमें यह आशा करनी चाहिए कि ऐसा वक्त शीघ्र आवेगा जब लोग वस्तुतः ऊंची चीजोंकी सुंदरताको समझने लगेंगे।

बाजारमें कई तरहकी स्वास्थ्यप्रद कही जानेवाली बनियानें मिलती हैं, किंतु वे तो और भी निकम्मी होती हैं। ऊनी कमीज या बनियान तो पहनना ही न चाहिए। ऊनके सीधे संपर्कमें आनेपर त्वचा सुकुमार हो जाती है। फोड़े-फुंसी या घावपर कोई ऊनी पट्टी नहीं बांधता, जो चीज चुटीली या घावभरी त्वचाके लिए बुरी है वह स्वस्थ त्वचाके लिए बहुत अच्छी कैसे हो सकती है ?

अनेक सूती बनियानें बड़ी गहरी बुनी होती हैं। धोनेपर वे सिकुड़कर नमदेकी तरहकी हो जाती हैं। सनके बने कपड़े बहुत भारी तो होते ही हैं, वे अक्सर हवादार भी नहीं होते। कुछ कपड़े बड़े महीन और पतले होते हैं, अतः वे बदनमें बिलकुल चिपक जाते हैं। कई कपड़े इतने कमजोर होते हैं कि बहुत जल्दी फट जाते हैं। कमीज और बनियानके लिए कपड़ा खरीदते वक्त इन बातोंका पूरा ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि इनका हमारे स्वास्थ्यसे विशेष संबंध है।

मेरे चिकित्सालयमें लोग जो कमीजें पहनते हैं वे बहुत हवादार होती हैं और इतनी पतली नहीं होतीं कि बदनमें चिपक जायं। इनका रंग मलाईका-सा होता है, ये बिलकुल सफेद कपड़ेकी भी बन सकती हैं।

सबसे अधिक अत्याचार तो हम अपने पैरोंपर करते हैं। शरीरके किसी भी अंगकी बनिस्बत पैरोंसे अधिक गंदगी निकलती है, यह उनसे निकलनेवाले पसीनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है।

इसलिए पैरोंको समय-समयपर खुला रखना चाहिए। पर दुर्भाग्यसे चाल इससे विलकुल उल्टी है। लोग अपने पैरोंको चमड़ेके तंग जूतोंमें कसे रखते हैं, जिससे उन्हें कष्ट होता है और स्वास्थ्यको नुकसान पहुंचता है।

चमड़ेके जो जूते पहने जायं वे कड़े फिट न हों। कपड़े अर्थात् कैनवसके वने जूते चमड़ेके जूतोंसे अधिक स्वास्थ्यप्रद होते हैं। अव कैनवसके जूते हर जगह विकने लगे हैं। रवड़ और चमड़ा स्वास्थ्यके लिए खास तौरसे हानिकारक है। इसलिए चमड़ेके जूतों, दस्तानों एवं जुर्राबके इस्तेमालसे वचना चाहिए। सूतके पतले मोजे ऊनी मोजोंसे अच्छे हैं।

दस्तानोंका प्रयोग विलकुल न करना चाहिए। यदि व्यवहार किया ही जाय तो वे सूत या वटे सूतके वने होने चाहिए। जुर्राव भी मजवूत लचीले सूती कपड़ेके वने होने चाहिए।

सवसे अच्छा तो यही है कि मनुष्य फिरसे नंगे पांव चलना आरंभ करे। नंगे पांव चलनेको लोग तमाशेकी चीज न समझें; इसके लिए इस संवंधकी अनेक प्रचलित रूढ़ियोंको मिटाना होगा। पर ऐसी रूढ़ियोंसे हमें वहुत डरनेकी जरूरत नहीं है, हमें हिम्मत करके आगे वढ़ना चाहिए और लोगोंके सामने आदर्श उपस्थित करना चाहिए। ऐसा कर हम लोगोंको 'प्रकृतिकी ओर लौटो' के पथपर लगावेंगे। इसके लिए आवश्यकता हो तो हमें कष्ट भी सहना चाहिए। फिर शीघ्र ही हमारे साथ चलनेवाले लोग मिल जायंगे।

यदि शहरकी सड़कोंपर नंगे पांव चलनेकी हमारी हिम्मत न हो तो जव हम गांवोंमें जायं या यात्रा आदिपर निकलें, उस वक्त तो हमें नंगे पांव ही चलना चाहिए।

अपने घरमें या अपने कमरेमें हम चप्पल पहनकर मजेमें रह सकते हैं और अपने पैरोंको आराम दे सकते हैं। मुझे तो चप्पलें बड़ी सुंदर लगती हैं। प्राचीन ग्रीक-निवासी और पुराने राजा चित्रोंमें चप्पल पहने दिखाए जाते हैं और वे चप्पल पहने बड़े भव्य प्रतीत होते हैं। आजकी चप्पलों और सेंडिलोंमें कई दुर्गुण होते हैं। कई ऐसी होती हैं जो पैरोंको दबाती और काटती हैं। मेरे चिकित्सालयमें जो सेंडिलें पहनी जाती हैं वे मेरे बताए अनुसार बनी हैं और इन दुर्गुणोंसे मुक्त हैं। उनमें पैर बहुत अधिक स्वतंत्र रहते हैं और उन्हें आराम मिलता है।

प्राचीन कालमें पाजामा घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता था। जो पाजामा पहनता था लोग उसे जंगली समझते थे, साधारण लोग ढीला-ढाला मोड़दार 'टोंगा' (प्राचीन रोमका चोगा-विशेष) पहनते थे।

आजके लोग पाजामा छोड़कर टोंगा या चोगा पहनना जल्दीसे पसंद न करेंगे। लोगोंकी इस रुचिके विपरीत कोई दूसरी चीज चलानी कठिन प्रतीत होती है। पर इतना तो हो ही सकता है कि लोग कसे हुए जांघिए वगैरहका उपयोग न करें।

स्त्रियां, लड़कियां और छोटी-छोटी बच्चियां तक जांघिया क्यों पहनती हैं? यह बात बिलकुल समझमें नहीं आती। मैं यहां इस रिवाजकी निंदा करनेमें समय नहीं लगाऊंगा; पर मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि स्त्रियां जांघिया पहनना बंद कर दें और उनके पेड़के चारों तरफ हवा आ-जा सके तो वे गर्भाशयके रोग, बच्चे जननेमें पीड़ा, मूर्छा आदि अनेक रोग, जिनसे वह प्रायः पीड़ित रहती हैं, बची रहेंगी।

करिए और देखिए।

हमारी मां-वहनोंके वस्त्रोंमें एक भयंकर राक्षसी घुस आई है—वह राक्षसी है चोली। पुराने जमानेकी निशानीके तौर-पर रखे गये यंत्रणा देनेके अस्त्र, जिनसे मनुष्यके अत्याचार करनेकी सीमा प्रदर्शित होती है, मुझे इतने भयानक नहीं प्रतीत होते जितनी आजकी ये चोलियां। अत्याचारके उन साधनोंका प्रयोग तो वड़े-वड़े अपराधियोंको सजा देनेके लिए किया जाता था और अपराधी इसे जवरन सहता था; पर हमारी मां-वहनें तो खुशी-खुशी अपनी इच्छासे अपने ऊपर भयानक अत्याचार कर रही हैं और इन चोलियोंसे इस हदतक अपनेको कसती हैं कि उनके लिए सांसतक लेना कठिन हो जाता है। यह वड़ी विचित्र पहेली है।

स्त्रियां अपने इस कष्टकी इतनी आदी हो गई हैं कि वे इसका अव अनुभव ही नहीं कर पातीं। पर वास्तवमें यंत्रणाके उन प्राचीन अस्त्रोंसे चोलीकी यंत्रणा कम नहीं होती।

चोलीके विरुद्ध अवतक लोगोंने वहुत कुछ कहा और लिखा है, पर उससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। मैं इस विषयपर अव व्यर्थके लिए अधिक लिखना उचित नहीं समझता। जवतक वेहोशीके दौरे, मूर्छा, तरह-तरहकी कमजोरियों और पीड़ाओंको आनंदकी वस्तु समझा जाता है और पीले करुणोत्पादक चेहरेको सौंदर्यका आदर्श, तवतक चोलीका चलन चलता रहेगा। इस संवंधकी अपनी गलतीके लिए जव पुरुष सजा पा लेंगे तव ईश्वर उन्हें अवश्य अक्ल देगा।

यदि स्त्रियां ढीले कपड़े पहनना पसंद करें तो वे कई तरह-की ऐसी ढीली अंगिया भी वना सकती हैं, जिनका शरीरपर दवाव न पड़े और रक्तके संचालनमें वाधा न हो।

कितना अच्छा होता यदि जन्मते ही बच्चोंको गरमानेके लिए कपड़ेमें लपेटनेकी प्रथाका अंत हो जाता। इस प्रथाके कारण बच्चोंकी बढ़ान शुरूमें ही रुक जाती है। बच्चोंमें बड़ोंकी अपेक्षा जीवनशक्ति और उष्णता अधिक होती है। वे नंगा रहना बड़ोंसे ज्यादा अच्छी तरह बर्दाश्त कर सकते हैं। उनकी नैसर्गिक वृत्ति उन्हें अपने कपड़े उतार फेंकनेके लिए बार-बार प्रेरित करती है। जब कभीं उनके कपड़े उतार दिए जाते हैं, वे कितने खुश होते हैं। अतः हमें प्रकृतिकी भावनापर ध्यान देना चाहिए और बच्चोंको समय-समयपर नंगे सुलाने और नंगे रखनेका खयाल रखना चाहिए।

प्यारी माताओ! यदि आप अपने बच्चोंके कपड़ोंकी कम चिंता करेंगी तो निश्चय जानिए कि वे एक दिन आपको इसके लिए अवश्य धन्यवाद देंगे। वे आपके इतने अधिक कृतज्ञ होंगे कि जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकती। नंगे पांव रहनेमें बच्चोंको बड़ा आनंद मिलता है। हमें उन्हें यह आनंद मनाने देना चाहिए और उन्हें इस आजकी सभ्यताके रोग, शोक और अकाल मृत्युसे बचनेके पथपर चलनेसे न रोकना चाहिए। यदि हम इस संबंधमें औचित्यसे काम लेंगे तो हमें अपने बच्चोंके लिए व्यर्थकी चिंता, दुःख और कष्ट उठानेकी आवश्यकता न रहेगी। पर बात क्या है कि माताएं अपने अन-जानेमें अपने सुकोमल प्यारको कठोर निर्दयतामें बदल देती हैं और बच्चोंको उस सच्चे आनंद, खुशीके खजानेका उपभोग नहीं करने देतीं जो प्रकृति उनके लिए सहर्ष खुला रखती है और इस प्रकार बच्चोंके जीवनभरके रोग-शोकका कारण होती हैं। इस गुत्थीको कौन सुलझा सकता है?

फटे हवादार कपड़े पहने, नंगे पांव गांवकी धूलमें खेलने-वाले प्रसन्न-वदन नटखट लड़कों और खानावदोशोंके लड़कोंपर नजर डालिए। फिर बच्चोंको स्वस्थ रखनेके नियम जानने-की आवश्यकता न रह जायगी। नंगे पांव रहनेकी आदत डालना बच्चों और बड़ों, दोनोंके लिए लाभदायक है।

हम किसीको प्रणाम करते वक्त, गिरजेमें और कब्रिस्तानमें एवं प्रार्थनाके समयकी गंभीर और महत्त्वपूर्ण अवस्थाओंमें अपनी टोपी क्यों उतार देते हैं? अब भी एक धीमी-धीमी आवाज हमें बताती है कि बुद्धिके उद्गमस्थान सिरको ढंकना प्रकृतिकी इच्छा एवं ईश्वरकी आज्ञाके विरुद्ध है, अतः पाप है। धार्मिक अनुष्ठानोंके समय यह पाप करनेसे हम अनजानमें ही बच जाते हैं।

प्रकृतिने मनुष्यके सिरको आरंभमें लंबे, घुंघराले, लहर-दार बालोंसे सुसज्जित किया था। स्त्रियोंके बाल तो इतने बड़े होने चाहिए कि उनकी सुनहली अलकोंसे उनका सुंदर शरीर ढक जाय। पर मनुष्य जब अपने सिरको ढकता है, तब वह प्रकृतिकी इस देनका निरादर करता है। वह जो इसे नष्ट कर देता है, पापपूर्ण भी है और मूर्खतापूर्ण भी। ईसाके सिरको कभी किसी टोपीने नहीं ढका। उसे तो केवल कांटोंके ताजसे सुसज्जित किया गया था।

जितना ही अच्छी तरह सिरको ढका जाता है, उतना ही अधिक बालोंको नुकसान होता है, अंतमें वे बिलकुल उड़ जाते हैं। बाल उड़ जानेपर हम सुंदरसे अधिक असुंदर ही प्रतीत होते हैं। खल्वाट मस्तक साक्षात् कुरूपता है।[1]

---

[1]जो फिरसे या अच्छे घने बाल उगाना चाहते हैं, उन्हें प्रकृतिके नियमोंके अनुसार (जल, प्रकाश, वायु, भोजन) जीवन व्यतीत करना

अतः सभी टोपियां और हैट हवादार और हल्के होने चाहिए और उनके अंदर अस्तरमें चमड़ा नहीं लगाना चाहिए। भीतरकी तरफ चारों ओर कपड़ेकी (ऊनी) पट्टी लगाई जा सकती है। पर नंगे सिर रहनेके लिए हमेशा मौका निकालना चाहिए। जब हम अपने घरमें रहें, या कमरेमें बैठकर काम करें, उस वक्त हमें अपना सिर खुला रखना चाहिए। शहरकी सीमा पार कर लेनेपर हमेशा टोपी उतार लेनी चाहिए।

यदि लोगोंमें एक बार फिरसे नंगे सिर, नंगे पांव और बन सके तो माझियोंकी भांति सीना भी खोलकर रखनेकी आदत डाली जा सकती तो उन्हें अपार लाभ पहुंचाया जा सकता। लोगोंका यह प्रकृतिकी ओर एक बड़ा कदम होता और जीर्ण रोगोंकी लंबी शृंखला जगह-जगहसे टूट जाती। पर कभी भी इतने कम कपड़े पहननेकी जरूरत नहीं है कि आदमी जाड़ेसे ठिठुरता रहे और कष्ट भोगता रहे।

यदि हम हर तरहसे प्राकृतिक जीवन बिताना आरंभ कर देंगे तो हमारे शरीरमें स्वयं धीरे-धीरे इतनी उष्णता उत्पन्न हो जायगी कि हम जो अपनेको जाड़ोंमें ऊनी कपड़ेसे लादे रहते हैं, उनमेंसे एकके बाद दूसरा कपड़ा स्वयं अपनी इच्छासे और खुशी-खुशी उतार फेंकेंगे। यह नहीं कि उस वक्त उनके बिना हमारा काम चल जायगा, वरन् उनके फिरसे उपयोग करनेपर उनसे हमें तकलीफ होने लगेगी।

चाहिए। और जहां जब बने सिरको नंगा रखना चाहिए। सिरपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे सिरकी त्वचासे विजातीय द्रव्य खिंच आवेगा और बालके उगनेमें सुविधा होगी। प्राकृतिक चिकित्साद्वारा बालोंके बढ़ने और घने होनेमें और भी सुविधा मिलेगी।

कुछ लोग प्राकृतिक जीवनसे यह अर्थ लगाते हैं कि ऐसा जीवन व्यतीत करनेवालेको टेवुल, कुर्सी, मेज, कपड़े आदि वस्तुओंसे, जो उसे अभीतक आराम और आनंद प्रदान करती रही हैं, वंचित रहना पड़ेगा। पर यह डर निराधार है। आरंभमें जो इन वस्तुओंसे जितना चाहे आनंद उठावे। पर प्रकृति-पथपर अग्रसर होनेपर सभ्यताके ये अधिकांश चिह्न धीरे-धीरे न केवल व्यर्थ प्रतीत होंगे, वरन् वे भारवत् एवं कष्ट-कर हो जायंगे। उनसे तव खुशी-खुशी छुट्टी ली जा सकेगी और इस प्रकार प्राप्त सादगी और स्वतंत्रता, अवश्य ही अधिक आनंद और सुखका सृजन करेगी।

इसलिए चलो प्रकृतिकी ओर लौटें। इस पथपर चलकर हम आनंद और प्रसन्नता प्राप्त करेंगे; शांतिप्रदायिनी सादगीके अधिकारी होंगे और असंतोपकी मूर्ति आवश्यकतासे मुक्ति मिलेगी।

आज हम इतने सुकुमार हो गये हैं कि कपड़े विना हमारा काम नहीं चलता। दूसरे, कपड़ोंकी इसलिए भी जरूरत है कि समाजमें बिना कपड़ेके रहना लोगोंमें अपने प्रति क्रोध और घृणा उत्पन्न करता है। कपड़ोंसे वस इतना-सा काम सधता है, अन्यथा वे विलकुल व्यर्थ हैं।

कपड़ोंद्वारा न तो चमकनेकी ओर न लोगोंको मोहित करने-की इच्छा करनी चाहिए और न उनसे अपनी नकली कीमत बढ़ानेकी ही कोशिश करनी चाहिए। यदि ऐसा हो तो फिर हम अपने कपड़ोंके लिए पहलेकी तरह चिंतित न रहेंगे, उनका हमारे लिए विशेष मूल्य न रह जायगा, न हमें उनके लिए उतनी चिंता होगी और न वे हमारा उतना समय और ध्यान आकर्षित करेंगे।

निस्संदेह यह बड़े संतोषकी बात होगी। तब हमें अपने शरीरपर अंगूठी, हार, बाजूबंद, कंठी-से कृत्रिम अलंकार लटकाने और चिपकानेकी जरूरत न रह जायगी।

संसारको मुक्ति दिलानेवाले ईसाने अपने अनुयायियोंसे अनुरोध किया था कि वे दो कोट न पहनें; और उन्होंने कहा था—"जिसके पास दो कोट हैं उनमेंसे एक वह उसे दे दे जिसके पास एक भी नहीं है।"

यदि ईसा लोगोंको प्रकृति-पथपर लौटाये बगैर उन्हें जिंदगीमें खुशी दिलाने और ईश्वरके निकट भला बनानेकी कोशिश करते तो वे भी अपने पहले और बादमें हुए क्षीण-ख्याति सुधारकोंकी भांति असफल रहते। उस दशामें प्रकृतिकी अवहेलना करनेके कारण विस्मृत हुए अनेक दार्शनिकों एवं उपदेशकोंकी भांति ईसा और उनके उपदेश भी विस्मृतिके गर्तमें कबके विलीन हो गये होते।

ईसाके समयमें एसेंस नामका एक छोटा-सा संप्रदाय था। इस संप्रदायका वर्णन रोमके इतिहासकार जोसेफस और फिलोने किया है। ये एसेंस बिलकुल प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते थे। अपने जीवनके कुछ भागमें तो ये संन्यासीकी तरह रहते थे। उस वक्त ये रेगिस्तानमें या पहाड़पर रहते थे। रोग और आवश्यकतासे विहीन इस तरहके जीवनद्वारा वे इस पृथ्वीपर सुख और आनंद प्राप्त करते थे और अपनेको स्वर्गके लिए तैयार करते थे।

एसेंसके उपदेश, जो हमें इतिहासकारोंद्वारा प्राप्त हैं और ईसाके उपदेश जो इंजीलमें लिखे मिलते हैं, दोनोंमें इतना अधिक साम्य है कि खुले दिल और दिमागसे सोचनेवाला इस परिणामपर

पहुंचता है कि ईसा निश्चय ही एसेन थे। देवविद्याके विशारदोंका भी मत इसके विपरीत नहीं है।

इस विषयपर मैं फिर लिखूंगा। हां, इतिहासकारोंका कहना है कि एसेंस हर प्रकारके आडंबरसे दूर रहते थे और केवल एक सफेद-सा लवादा अपने शरीरपर धारण करते थे जो अधोवस्त्र और ऊर्ध्ववस्त्र दोनोंका काम देता था और इससे शरीर ढकनेका काम पूरा-पूरा चल जाता था। एसेंस जातिकी अपनेको सुंदर दिखानेकी इच्छा नहीं थी और न वे कपड़ोंद्वारा भव्य बनना और लोगोंपर रोब जमाना चाहते थे। जब उनका चोगा फट-फटकर शरीरको किसी तरह ढकने लायक नहीं रह जाता था-तभी वे उसे बदलते थे। इसके पहले वे नये चोगेका व्यवहार नहीं करते थे।

प्राकृतिक जीवनसंबंधी ईसाके उपदेश धीरे-धीरे करीब-करीब विस्मृत हो गये या लोगोंने उनपर विशेष ध्यान नहीं दिया अथवा उनका लोग अब केवल लाक्षणिक अर्थ लगाते हैं।

"जिसके पास दो कोट हैं वह एक कोट उसे दे दे जिसके पास एक भी नहीं है" अपनी इस आज्ञाका ईसा चाहते थे कि लोग लाक्षणिक नहीं शब्दशः अर्थ करें और वही अर्थ करें जो एसेंस करते थे। अतः प्रत्येक सच्चे ईसाई और हर ईमानदार आदमी-को चाहिए कि वह अपने लिए केवल एक लिबास रखकर बाकी सारे कपड़े गरीबोंको दे दे।

आजके वातावरणमें लोगोंके बंधे विचारोंके अंतर्गत रहकर अधिक-से-अधिक प्रकृतिके निकट रहनेके लिए एवं ईसाकी आज्ञानुसार चलनेके लिए स्वास्थ्यको कम-से-कम हानि पहुं-चाते हुए किसे कितने कपड़ेकी जरूरत होगी, वह कपड़ेके माम-

लेमें कितनी सादगी अपना सकता है एवं उसकी आवश्यकतासे किस हदतक स्वतंत्र हो सकता है, इसका निर्णय प्रत्येकको अपने लिए स्वयं करना चाहिए।

कम-से-कम नये कपड़े वनवाते समय तो हमें सादगी और स्वास्थ्यका ध्यान रखना शुरू कर ही देना चाहिए। स्त्रियोंको इधर खास तौरसे ध्यान रखनेकी जरूरत है। सादे कपड़े पहनना शुरू कीजिए, वे आपको आजके मूर्खतापूर्ण फैशनेवुल कपड़ोंसे अधिक सुंदर जंचने लगेंगे। जो स्त्री फैशनकी गुलाम न वनकर वल्कि फैशनकी अवहेलना कर सीधे-सादे कपड़े पहनती है, वह कभी नुकसान नहीं उठावेगी। उसे इसके लिए हर जगह सहानुभूति और सम्मान मिलेगा।

मूर्खतापूर्ण फैशनकी प्रशंसा करना अव हमें वंद कर देना चाहिए। जो लोग वहुमूल्य वस्त्र पहनकर अपनेको आकर्षक बनाना चाहते हैं, उन्हें ईसाके इन शव्दोंपर ध्यान देना चाहिए: "खेतमें खिली हुई लिलीकी ओर देखो, कितनी सुंदर है। और मैं तुम्हें बताता हूं कि यद्यपि सोलोमन इसकी तरह सजाए नहीं गए थे, पर वे इससे कम गौरवशाली न थे।" खेतोंमें खिले फूल, एक पेड़से दूसरे पेड़पर प्रमुदित-मन दौड़ती गिलहरी, पत्थरों और झाड़ियोंपरसे शानसे छलांग मारता हुआ हिरन, सुंदर पांखोंवाली गाती हुई चिड़िया, ये सभी सुंदर हैं।

अपने सुंदर केशोंसे सुसज्जित, उत्कृष्ट रूपसे सुडौल अंगोंवाली, एक ढीला-सा वस्त्र पहने ग्रीसकी स्त्री भी सुंदर होती थी। सैमन स्त्रियां अपने सौंदर्यके लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रकृतिकी ये वालिकाएं बहुत थोड़े कपड़े पहनती हैं और अपने द्वीपमें निष्कपट भावसे विचरण करती रहती हैं। इनका भोजन

होता है करीब-करीब केवल फल, जिसे प्रकृति अब भी बहुतायतसे उपजाती है।

जवानीमें ही वृद्धत्वको प्राप्त हुए, मक्खन-सी चिकनी चांद लिए, नुकीले टोवाले जूतों, एक आंखके चश्मे तथा अन्य सिंगार-सामानसे बने-ठने जवान कुरूपताकी प्रतिमूर्ति हैं, उन्हें देखकर घृणा होती है।

खेतमें गड़े डरावेकी तरह प्रेत-सी लगती हुई पीली-पीली लड़कियां और स्त्रियां जो गोटे पट्टेसे लैस चमकीले भड़कदार कपड़े पहने, सिरके बालोंको आड़ा तिरछा किये, रुनझुन-रुनझुन बजते गहने पहनकर शेहरकी सड़कोंपर घूमती नजर आती हैं उन्हें कुरूप न कहा जाय तो क्या कहा जाय ? उनकी ओर लोग आकर्षित नहीं होते, वरन् उन्हें देखकर प्रत्येक सौंदर्यके पारखीके मनमें घृणा उत्पन्न होती है।

ईसाने अपनी आज्ञामें छोटी-छोटी बातपर भी ध्यान रखा है। उन्होंने अपने शिष्योंको छड़ी लेकर चलनेसे भी मना किया है—"तुम लोग अपने साथ दो कोट न रखो, न जूते ही पहनो और न छड़ी लेकर ही चलो।" इसलिए बिना छड़ीके टहलना अधिक प्राकृतिक एवं स्वास्थ्यप्रद है। अनुभवकी बात है कि बिना छड़ी लिए चलना अधिक सुखप्रद और स्वास्थ्यप्रद है।

कपड़ोंकी बात तो अलग रही, घरको सजानेमें भी हम जिस तड़क-भड़कसे काम लेते हैं वह अधिकतर अप्राकृतिक और हानिप्रद है। इस दशामें भी हम अपनी उस प्राकृतिक दशासे बहुत दूर जा पड़े हैं जब मनुष्य ईश्वरके बनाए प्रासादमें, तारोंसे ग्रथित आकाशके नीचे, पेड़ोंके सायेदार गुंबजके तले रहता था और खुली धरतीपर बैठता और लेटता था। उस समय प्रकृति स्वयं

अपने हाथों उसके घरको फूल-पौदों और वृक्षोंसे सजाती थी।

पहले हमें तकिया और झालर लगे मेज-कुर्सीसे बचना चाहिए और उनका त्याग करना चाहिए। मुलायम गद्दी-तकिया लगे सोफेपर बैठने या लेटनेपर शरीरके कुछ अंग बहुत अधिक गरम हो जाते हैं। फल यह होता है कि इन अंगोंमें रक्त इकट्ठा हो जाता है जिससे शरीरके रक्त-संचालनमें बाधा पड़ती है, थकान और सुस्ती आती है, कापुरुपता और हर तरहकी कमजोरीका आगमन होता है। मैं समझ नहीं पाता कि लोग गद्दे और झालरदार टेबुल कुर्सी, जिनमें गर्दा बुरी तरह फँसा रहता है, से भरे कमरेमें आरामका अनुभव कैसे करते हैं? इसके बजाय बेंतकी बनी और बेंतसे बुनी कुर्सी आदिका उपयोग हो सकता है। सीधी-सादी लकड़ीसे बनी मेज, कुर्सियां और बेंच जैसी कि पहले लोग काममें लाते थे, आजके तकिए और झालरदार सोफे और कुर्सीसे अच्छे समझे जाने चाहिए।

खिड़कियोंको सजानेमें भी कम बेवकूफीसे काम नहीं लिया जाता। पहले लोग खिड़कीपर पर्दा नहीं लगाते थे। वायु और प्रकाश अबाध रूपसे कमरेमें आता रहता था और यह बहुत अच्छी बात थी। आज सुसंस्कृत! कुटुंबोंमें यदि घरमें कोई ऐसी खिड़की हो जिससे रोशनी घरमें घुस सकती हो, तो वह बड़े शर्मकी बात समझी जाती है और इसलिए वे उसपर पर्दा डाल देना आवश्यक समझते हैं। अतः वे केवल ऐसे पर्दे खिड़कीपर नहीं लगाते जिससे सड़कपर चलनेवालोंको घरके अंदरकी चीजें न दिखाई दें, वरन् वे उसपर इतने मोटे कपड़े लगाते हैं कि कमरेमें अंधेरा हो जाता है। जिससे कमरे

अस्वास्थ्यकर तो हो ही जाते हैं, उनमें आराम भी नहीं मिलता। यदि खिड़कियोंको सजाना ही हो तो क्यों नहीं किसी सुंदर, पतले पारदर्शी कपड़ेसे उन्हें सजाया जाय जिससे सूर्यकी किरणों और प्रकाशको कमरेमें पहुंचनेमें कम-से-कम रुकावट हो।

यहां मैं थोड़ा-सा बिछावनके बारेमें भी कहना चाहता हूं। मनुष्यकी जिंदगीका आधा भाग बिछावनमें ही कटता है। बिछावनमें वह अपनी थकान दूर करना और अपना स्वास्थ्य बढ़ाना चाहता है। इसलिए बिछावनपर बहुत ध्यान देनेकी जरूरत है ताकि उन्हें प्रकृतिके अनुकूल बनाया जा सके। पहली जरूरत बिछावनके बारेमें यह है कि उसमें हवा आसानीसे आ-जा सके। चादरके अंदरकी हवा, शरीरसे निकले भाप और पसीनेके संसर्गमें आकर गंदी हो जाती है। उसकी गंदगी दूर करनेके लिए चादरके अंदरकी हवासे बाहरकी हवाको मिलनेका पूरा मौका मिलना चाहिए। इसलिए रूई या पर से भरे रजाई-गद्देका पूर्ण बहिष्कार करना चाहिए। ओढ़नेके लिए केवल ऊनी कंबल सर्वश्रेष्ठ है। शरीरसे लगी रहनेवाली चादर जरा पतली रहनी चाहिए ताकि वह शरीरसे अच्छी तरह चिपक सके। कंबलके ऊपर जो चादर डाली जाय वह भी हल्की, सूक्ष्म रंध्र-युक्त होनी चाहिए। ऐसे ओढ़नेके नीचे शरीरमें उपयुक्त और आवश्यक गर्मी पैदा होती है।

बिछानेके लिए खर-पयालकी बनी चटाई, जैसी कि पहले चला करती थी, बहुत अच्छी रहेगी। पयाल या खरमें हवा अच्छी तरह आ-जा सकती है और वह शरीरको बिना अप्रा-कृतिक रूपसे गरम किये, काफी गरम भी रहती है। पर आज लोग अपने शयनकक्षकी फर्शपर बिछे गलीचेपर गिरा हुआ खर

देखना कैसे पसंद करेंगे। इसलिए चटाईका चलन चलेगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता।

पर गद्दा समुद्री घास, जई भूसे आदिसे भरकर भी वन सकता है। कंवलसे भी गद्देका काम लिया जा सकता है। घोड़ेके वाल और ऊनसे भी गद्दा वन सकता है। ऊनके साथ यदि घोड़ेके वाल मिलाकर गद्दा वनाया जायगा तो ऊन दव-दवकर इतना नहीं चिपटा हो जायगा कि हवा उसके आर-पार न जा सके।

ऊंचे-ऊंचे तकिए लगाकर सोते वक्त सिरको वहुत न उठा-इए। तकिए हों ही तो वहुत पतले। ओढ़नेके नीचे विलकुल नंगे (बिना कमीज या जांघिया पहने) सोनेपर जितना जोर दिया जाय, कम है। बिना कपड़े पहने सोनेपर कपड़े पहनकर सोनेसे शरीर ज्यादा गरम रहता है। हवादार गद्दे वड़ी आसानीसे वन सकते हैं। धीरे-धीरे लोगोंको पुराने चालके गद्दे छोड़कर स्वास्थ्यकर गद्दे बनवाने चाहिए।

धरतीमाता

मछली जलका जीव है, वह जलमें ही रह और जी सकती है। पक्षीका निर्दिष्ट स्थान वायु है। वह आकाशका राजा है। जब वह आराम करता है तब वह पेड़पर बैठता है, इसके लिए जमींनपर तो शायद ही कभी उतरता है। (जव मैं यह कह रहा हूं तब मेरा लक्ष्य मुर्गी-से परदार जानवरकी ओर नहीं है) लेकिन आदमी धरतीपर चलता है।

जबतक आदमीने जूते-कपड़े नहीं पहने थे तबतक वह बैठा होता था या चलता. दोनों ही हालतोंमें पृथ्वीके सीधे संपर्कमें रहता था।

पृथ्वी और मनुष्यके संबंधमें उस वक्त किसी प्रकार भी अड़चन नहीं पड़ती थी।

प्रकृति यह चाहती है कि उसका और मनुष्यका यह निकट संबंध अब भी बना रहे। प्रकृतिकी इस इच्छाको एक पवित्र एवं अलंघ्य नियमकी तरह समझना चाहिए जिसे तोड़नेपर हमेशा दंड मिलता है।

यह जानकारी मुझे अधिक-से-अधिक प्रकृतिकी ओर लौटने तथा अपने और अपने साथियोंके लाभके लिए उसके नियमोंको गहराईसे समझनेकी अटूट एवं अथक कोशिशके सिलसिलेमें हुई और मुझे आशा है कि लोगोंके लिए यह जानकारी कामकी होगी। मुझे इसका अनुभव साफ-साफ हुआ है कि कमरे अथवा तख्तोंपर नंगे पैर टहलना उतना पुरअसर, शक्ति एवं उत्साहवर्द्धक नहीं है जितना खुली धरतीपर टहलना; चाहे उसपरकी धूल और घास बिल्कुल सूखी ही क्यों न हो। वनवासियों एवं वनमें काम करनेवाले मजदूरोंसे बात होनेपर उन्होंने मुझे विश्वासके साथ कहा है कि बेंच अथवा और किसी चीजपर सोनेसे पृथ्वीपर सोना उनके अधिक अनुकूल पड़ता है एवं इससे उन्हें अधिक शक्ति भी मिलती है।

पशु और मनुष्य दोनों ही पौधोंकी तरह पृथ्वीके प्राणी हैं। उनके विकासमें उनका पृथ्वीसे संबंध छूट गया और यह स्नायु-वृक्ष चलने-फिरने लगे। पर पौधोंकी तरह पशुओं और मनुष्य-पर प्रकृतिके नियम समान-रूपसे लागू हैं। उन्हें शारीरिक

शक्ति एवं प्राणशक्ति अब भी पृथ्वीसे ही मिलती है।

इस जानकारीके वाद मैंने नंगे पांव पृथ्वीपर चलनेको अधिक महत्त्व दिया और मुझे नंगे पांव चलनेका चिकित्सक गुण ज्यादा-से-ज्यादा समझमें आने लगा। फिर मैं यह सोचने लगा कि मनुष्य धरतीसे और अधिक लाभ किस प्रकार ले सकता है। मैंने पहला काम यह किया कि रोगियोंका चारपाईपर सोना बंद करा दिया और उन्हें खुले आसमानके नीचे अथवा वायु एवं प्रकाशपूर्ण झोपड़ोंमें जमीनपर पुवाल या गद्दा विछाकर सुलाने लगा। इस प्रकारके सोनेके समय वे धरतीके कुछ अधिक नजदीक आए। इससे प्रत्यक्ष लाभ मालूम हुआ, नींद ज्यादा ताजगी और आनंद देनेवाली हुई।

पर जल्दी ही कुछ रोगी बिल्कुल नंगे ही मुलायम घासपर पुवाल ओढ़कर सोने लगे। वे सभी सोनेमें पृथ्वीसे मिले लाभका वर्णन उत्साहपूर्ण शब्दोंमें करते। वे लोग जो कुछ कहते, उससे ज्ञात होता कि यदि रोगी पृथ्वीपर सोना शुरू कर दे तो उन्हें सभी रोग, खास तौरसे आजके प्रचलित कोढ़ियों स्नायु-संबंधी रोगोंमेंसे किसीका कोई डर न रहे। रातको सोतेमें मनुष्यपर जो पृथ्वीकी शक्तियोंका प्रभाव पड़ता है वह निस्संदेह आश्चर्यकारी है। जिसने इसका कभी अनुभव नहीं किया है उसकी समझमें यह बात आनी कठिन है कि मनुष्य-शरीरपर इसका सोतेमें कितना तरोताजा करनेवाला और शक्ति एवं जीवनदायक असर होता है।

रोगीकी पाचन-क्रियाको सुधारना एवं उसे शक्तिशाली बनाना प्रत्येक चिकित्सा-पद्धतिका पहला काम है। प्राकृतिक-नहान एवं वायु और प्रकाश-स्नानसे शौच समयपर और साफ

लोमड़ी और बिज्जू अपनी मांदमें बहुत-सी चीज घसीट ले जाते हैं पर अपने सोनेकी जगह बिल्कुल साफ रखते हैं। वे हमेशा साफ-सुथरी जमीनपर सोते हैं। जंगली सूअर मिले तो पेड़की पत्तियोंके ढेरमें घुसकर या झाड़ियोंमें छिपकर सोना पसंद करते हैं पर जहां सोते हैं उसपर कोई चीज नहीं होती। कभी-कभी तो अपने शरीरका कुछ भाग वे जमीनमें गड़ा तक देते हैं।

एक बार मुझे एक बीमार पालतू बाजकी गतिविधिका अध्ययन करनेका मौका मिला था। उसे उसके गंदे पिंजड़ेके बाहर निकाल दिया गया था और मेरे कहनेपर लोगोंने उसे बिल्कुल अकेला छोड़ दिया था कि वह जहां चाहे जा सके। वह तरकारीके खेतमें गया और करमकल्लेकी क्यारीमें जहां जमीन मुलायम थी कुछ जमीन खुरची और अपनेको उसमें थोड़ा धंसाकर चुपचाप लेटा रहा। कुछ दिनों बाद वह बागसे लौट आया और हम लोगोंने देखा कि वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया है। जबतक वह बीमार रहा उसने कुछ भी नहीं खाया। इस प्रकार 'पशु गोकि अपने साधारण जीवनमें चलते दौड़ते वक्त पृथ्वीके संपर्कमें रहता है फिर भी आराम करते वक्त और बीमारीमें पृथ्वीके अधिक नजदीक और सीधे संपर्कमें आनेकी कोशिश करता है।

जबतक बिछावन रहेंगे उनके सुधारकी बात चलती रहेगी और जबतक मनुष्य प्रकृतिद्वारा निर्मित बिछावनपर नहीं सोवेगा बिछावनकी अपूर्णता भी मनुष्यके सामने आती रहेगी। प्रकृतिने अपने इस बिछावनमें वह जादूभरी शक्ति भर दी है कि उसके संपर्कमें आनेपर मनुष्यको अपने जीवनमें अधिकाधिक आनंदका अनुभव होता है।

पहले मनुष्य प्रकृतिके नेतृत्वमें, पापरहित, पवित्रतम एवं आनंदसे परिपूर्ण जीवन व्यतीत करता था। वह अवाध रूपसे उस स्वर्गीय सुखका उपभोग करता रहता था जिसकी कल्पना प्रत्येक सुसभ्य जातिकी स्वर्गसंबंधी कल्पनाके अंतर्गत की गई है। पर स्वर्गके सर्पकी तरह तर्कने पृथ्वीपर हमला किया और लोगोंको वहकाया कि वे खुदाके हुक्मों—प्रकृतिके नियमों—जिनकी अनुभूति हमें ज्ञानेंद्रियों-स्पर्शेंद्रियों आदि नैसर्गिक वृत्ति एवं विवेकद्वारा होती है—की अवहेलना कर अपनी इच्छानुसार मौज और खुशीमें रत रहेंगे तभी उनके शरीर, मन और आत्मा, तीनोंको पूर्ण आनंद मिलेगा।

जैसा कि मैंने 'प्रकृतिके वोल' पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि तर्कके दुरुपयोग एवं अपमानके फल-स्वरूप सर्पके वच्चे विज्ञानका जन्म हुआ। उसने औपध-विज्ञानको ही नहीं अध्यापनविद्या धर्म-शास्त्र, दर्शन एवं न्याय-शास्त्रको भी पैदा किया। मनुष्यको सुखी एवं समृद्ध वनानेवाले प्रकृतिके नियमोंके पालनकी राय विज्ञान कभी नहीं देता। औषध-विज्ञान तो यह घोषणा करता है कि यदि मनुष्य प्रकृतिके अनुकूल जीवन व्यतीत करेगा तो उसका अहित हुए विना न रहेगा। वह कहता है कि प्राकृतिक भोजन फल आदि-से मनुष्यको पूरी शक्ति तो मिलती ही नहीं उसका स्वास्थ्य नष्ट होता है और मनुष्यका प्रकाश और वायुके संपर्कमें अपनेको लाना खतरेसे खाली नहीं है। (इससे सर्दी वगैरह हो जाती है)। उसकी यह भी अवमानना है कि प्राकृतिक भोजन, जीवन व्यतीतकर हम जिंदगीके मजे कम कर देंगे। इसके वाद विज्ञान, शरीर-विज्ञान एवं और भी प्रयोगशालामें किए गये

अनेक प्रकारके अन्वेषणोंके आधारपर अप्राकृतिक भोजनका एक नुस्खा तैयार करता है, जिसके लिए वह कहता है कि इसे खाते ही शक्ति मिलती है और वह स्वादिष्ट लगता है। इस प्रकार विज्ञान नैसर्गिक वृत्ति, स्वाद (सही मानोंमें) एवं सदसद्-विवेकका कोई खयाल न करनेवाले स्वास्थ्य-नियमोंका निर्माण करता है। विज्ञानकी दूसरी शाखाएं अध्यापन, धर्म, दर्शन, न्यायशास्त्र भी अब ऐसे नियम बनावेंगे जिनमें मनुष्यको प्रकृतिके संपर्कमें आनेसे फूंक-फूंककर बचाया जायगा और कहा जायगा कि इनपर चलकर मनुष्य अच्छा और भला बनेगा तथा उसे सुख और संतोष प्राप्त होगा।

इस प्रकार विज्ञानके फेरमें पड़कर मनुष्यने जूते पहने और पृथ्वीकी सुखद शय्याको छोड़कर पलंगपर लेटा। उसने कल्पना की कि इनके द्वारा उसे वह हिफाजत, आराम और आनंद मिल रहा है जो प्रकृति उसे नहीं देती थी। पर तर्कके इस झूठे लुभावने और विज्ञानकी चमकीली सिखावनके फेरमें पड़कर मनुष्यको न आराम मिला न आनंद, न स्वास्थ्य, न खुशी, न साधुता, न सौजन्य; पर उसकी आशाके विपरीत मिले उसे रोग और पीड़ा, ऊब और घबराहट, पाप और अपराध, दुःख और निराशा। प्रकृतिके विरुद्ध चलनेवालेसे प्रकृति इसी तरहका बदला लेती है। कविवर गेटेने ठीक ही कहा है:

"इस प्रकारके जीवनमें मनुष्यको शायद कुछ अधिक संतोष मिल जाय, पर जब उसने स्वर्गीय प्रकाशसे पथ-प्रदर्शन लेना छोड़कर तर्कका पल्ला पकड़ा तो उसने अपनेको अधिक शक्तिशाली अनुभव किया—पशुसे भी अधिक शक्तिशाली और फिर उसमें पशु-जितना भी विवेक नहीं रहा।"

तर्क एक उच्च प्रतिभा है और मनुष्यके लिए ईश्वरकी विशेष देन है। पर मनुष्य इसका सदुपयोग नहीं कर सका और यह शक्ति उसके लिए आसुरी फंदा और दुःखोंका कारण बन गई।

आत्मा और शरीरका सच्चा और पूर्ण स्वास्थ्य जिसमें शारीरिक शक्ति, मानसिक स्वच्छता, आत्मानंद सम्मिलित हैं बिना एक बार फिर अपनेको पृथ्वीके सीधे संपर्कमें—चलते-फिरते वक्त और खास तौरसे आराम करते वक्त—लाए बगैर मनुष्यको और किसी तरह मिलनेको नहीं है।

यह उम्मीद तो नहीं की जा सकती कि मनुष्य एकदम कपड़ा पहनना ही छोड़ देगा और दिनभर नंगा घूमेगा। अभी इस रास्तेकी अनेक कठिनाइयोंको उसे सुलझाना है, और न यही उम्मीद की जा सकती है कि वह एकाएक सर्वथा प्राकृतिक भोजनको अपना लेगा और केवल फल-मेवेका ही आहार ग्रहण करेगा। पर इतना तो वह कर ही सकता है कि हरदम नंगे पांव रहे। इस चलनसे जाड़ेमें भी कोई तकलीफ नहीं होगी। वरन् लोग खुशी और आनंदका अनुभव करेंगे। नंगे पांव चलना तपस्या नहीं है, इससे जीवनका आनंद घटता नहीं बढ़ता है। मनुष्य जब नंगे पांव चलना शुरू करता है, धरतीको अपना बेटा वापस मिल जाता है। मनुष्यपर नूतन स्वास्थ्य और सच्ची खुशीकी वर्षा होने लगती है। आजके रोगी, दुःखी, पापी, अन्यायी मनुष्यका पुनर्निर्माण भी होगा; वह जो है उससे दूसरा तभी बनेगा जब वह नंगे पांव चलना रोज कुछ मिनट या चंद घंटोंके लिए ही नहीं पर हमेशाके लिए सीख लेगा।

वृक्षमें जो काम जड़ें करती हैं हमारे शरीरमें वही काम

कुछ अंशोंमें पैर करते हैं। उनके द्वारा पृथ्वी हममें शक्ति और प्राणोंका संचार करती है।

ईसा नंगे पांव चलनेको वहुत महत्त्व देते थे। वे स्वयं नंगे पांव चलते थे और उन्होंने अपने शिष्योंको आज्ञा दी थी :

"तू जूतोंका बोझ मत घसीट !"

वे भिक्षु जो नंगे पांव चला करते थे, ठीक ही समझते थे कि ईसाका प्रतिपादित आनंद और मुक्ति तवतक मनुष्यको नहीं मिलेगी जवतक वह जीवनमें उस प्राकृतिक पद्धतिको नहीं अपनाएगा जिसे ईश्वरने अपने भक्तोंके जीवनद्वारा सारे ईसाई-संसारके सामने उपस्थित की है और जिनकी आज सर्वथा अवहेलना की जाती है।

प्रत्येक आरोग्य-मंदिरका यह पहला नियम होना चाहिए कि उसके अधिवासी हमेशा नंगे पैर रहें, चप्पल भी न पहनें।

तव कुछ दिन नंगे रहनेपर प्रकृतिके दिये हमारे पैरोंमें जब खून दौड़ने लगेगा और इससे जब उनकी आकृति स्वाभाविक हो जायगी, लोग घिसे, भौंड़े, पेवंद लगे जूतोंसे खुले पैरोंको अधिक सुंदर और सौंदर्यसंवर्धक मानने लगेंगे और तव नंगे पांव चलनेका, जिसका प्रतिपादन ईसाने अपने उपदेश और उदाहरणद्वारा किया है, न मजाक उड़ाया जायगा, न इसे ओछी दृष्टिसे देखा जायगा। घृणास्पद जूतोंको, जो अक्सर पैरोंको दबाते-काटते हैं और जिसका कष्ट मनुष्यके मुखपर प्रतिबिंबित होता रहता है, प्रकृतिकी कलाकृति मनुष्यके पैरोंसे सुंदर समझना प्रकृतिका अपमान करना है।

यदि धरतीपर सोनेका महत्त्व एक वार पूरी तरह समझ लिया जाय और इसका चलन चला दिया जाय तो मनुष्य-जाति

रोगी शरीर और विकृत मनके भंवर-जालसे निकल जाय। इस स्थितिसे मुक्ति दिलानेमें प्राकृतिक स्नान, वायु और प्रकाश-स्नान, प्राकृतिक भोजन आदि भी बड़े सहायक होंगे।

नये-पुराने सभी प्रकारके रोगोंमें धरतीपर सोनेका चमत्कारिक गुण शीघ्र देखनेको मिलता है।

हजरत ईसा गंदी हवा, विलास, कापुरुपता और नैतिक पतनके अधिपति शहरोंसे हमेशा दूर रहते थे। वे अधिकतर रेगिस्तानमें या पहाड़ोंपर रहते थे। वे अपने उपदेश अधिकतर इन्हीं स्थानोंके वासियोंको दिया करते थे और यदि किसी दिन वे यरूसलमके मंदिरमें उपदेश करते थे तो अपनी रात वे आलिबस पहाड़पर ही विताते थे जहां निश्चय ही वे खुली धरतीपर सोते थे। प्रकृतिकी गोदमें विश्राम करते वक्त उनके शरीरपर ओढ़नेके नामपर केवल एक ढीला-ढाला लवादा ही रहता था।

धरतीपर सोना प्रारंभ करनेवालोंको दूवसे ढकी बढ़िया जगह चुननी चाहिए, यदि ऐसी जगह न मिले तो जमीनपर चटाई विछाकर सोना चाहिए। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि चटाई पृथ्वीकी शक्तिको वहुत कुछ रोक लेगी। पुवाल, ऊन या रूईसे भरे गद्दे या कंवल-दरीपर सोनेकी तो बात ही नहीं सोचनी चाहिए। इनका उपयोग पृथ्वीसे संवंध होनेमें वहुत वाधा पहुंचाता है। तकियेकी भी जरूरत नहीं है। ठंडी ताजगी प्रदान करनेवाली धरतीपर सिर रखकर सोना विशेप लाभदायक है।

यदि धरतीपर सोनेकी पहली रात कुछ तकलीफदेह सावित हो तो निराश होनेकी जरूरत नहीं है।

मैंने वरावर यह देखा है कि दो-चार दिनके वाद ही रोगीको

उसकी धरतीकी शय्या अति सुखद प्रतीत होने लगती है। तब वह पृथ्वीपर कोई चीज भी बिछाकर सोना कभी स्वीकार नहीं करता। बरसातकी रातमें ओढ़नेकी चीजोंको भीगने-से बचानेके लिए मैं चाहता था कि रोगी अपनी झोंपड़ियोंमें सोवें पर वे अपनी पृथ्वी-शय्या छोड़नेके लिए बड़ी कठिनाईसे तैयार होते थे। कुछ ही दिन धरतीपर सो लेनेके बाद उसकी कठोरताका भी कोई अनुभव नहीं होता। इससे भी डरने-की जरूरत नहीं है कि जाड़ेकी रातोंमें जब ओढ़कर धरती-पर नंगे बदन सोवेंगे तो धरती बड़ी ठंडी लगेगी। बहुतसे लोगोंको बिछावनमें सोनेकी अपेक्षा जमीनपर सोनेसे पसीना जल्द आता है। पर धरतीपर सोना आरंभ करनेवालोंको, और ऐसे लोगोंको भी जिन्होंने प्राकृतिक जीवन व्यतीत कर अपने शरीरकी गर्मीको नहीं बढ़ा लिया है, ग्रीष्म एवं वसंतकी-सी ही ऋतुओंमें खुली धरतीपर खुले बदन सोना चाहिए और जरूरत हो तो कुछ ओढ़कर सोना चाहिए।

जब आदमी धरतीपर सोना शुरू करता है तब शुरूमें पहली रातको उसे अक्सर वैसी अच्छी नींद नहीं आती जैसी नींद उसे अपने बिछावनमें आती थी। इसके बाद सबको और कभी-कभी निद्राभावके पुराने और बुरे रोगियोंको भी खूब नींद आती है और इससे उन्हें अपूर्व ताजगी और शक्ति मिलती है। पर यह गहरी नींद आनेकी अवस्था बहुत दिनोंतक नहीं चलती। अक्सर कुछ दिन बाद लोगोंको बहुत थोड़ी नींद आती है। यहांतक कि उन्हें एक-दो घंटे ही सोनेकी जरूरत पड़ती है और ऐसे लोगोंको जितनी ही कम नींद आती है दूसरे दिन वे उतनी ही चैतन्यता, ताजगी एवं शक्तिका अनुभव करते हैं।

पहले जब मैं स्नायुदौर्बल्यका बुरी तरहसे शिकार था, यदि मुझे किसी रात नींद नहीं आती थी तो दूसरे दिन मेरी बुरी गति हो जाती थी। 'पर पृथ्वीपर सोना आरंभ करनेपर आगे चलकर मुझे हफ्तों नींद नहीं आई, मैंने एक झपकी भी नहीं ली, पर मुझे किसी तरहके कष्ट या परेशानीका अनुभव नहीं हुआ। इसके विपरीत वे रातें अधिक आनंदमय एवं क्लांतिविहीन प्रतीत होती थीं और मैं उन दिनों एक अपूर्व ताजगीका अनुभव करता था। किसी प्रकारकी थकान या आलस्यका तो कोई अनुभव होता ही नहीं था।'[1] स्वतंत्र प्रकृतिमें विचरण करनेवाला हमें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं दिखाई देता जो मनुष्यकी तरह निद्राके वशीभूत होता है और जो रोज-रोज रातको मनुष्यकी तरह छः से आठ घंटेतक या अधिक भी मृत्युकी-सी अवस्थामें व्यतीत करता है[2]। जितने घंटे मनुष्य सोता है उतने घंटे उसकी जिंदगी-

---

[1]ज्यों-ज्यों मनुष्य प्रकृतिके निकट पहुंचता जायगा रोगावस्थाकी समकक्षिका क्लांति उससे दूर होती जायगी। मनुष्यका प्रत्येक क्षण पशुके मुकाबलेमें प्रकृत्या अधिक आनंद और प्रसन्नतामें बीतना चाहिए; क्योंकि उसे तर्क और कल्पना मिली है, पशु इससे विहीन है। इस प्रतिभाके बलपर कविता-जगतमें विचरण कर सकता है। उसे जगतमें क्लांतिके लिए स्थान कहां? क्लांति जड़ताकी प्रतीक है, रोगावस्थाकी बहन है।

[2]कुछ पशु जाड़ेभर सोते रहते हैं। उनसे मनुष्यकी तुलना नहीं की जा सकती। उनकी बनावट कुछ ऐसी होती है कि ठंडककी वजहसे उनके शरीरमें रक्त-परिचालन बहुत धीमा होता है और पाचनक्रियाका काम बिल्कुल रुक जाता है अतः ऐसे वक्त पशुओंको भोजनकी बहुत थोड़ी या बिल्कुल जरूरत नहीं होती।

से मिट ही जाते हैं। पशु प्रायः रातभर घूमते रहते हैं। वे कभी-कभी आराम जरूर करते हैं, खास तौरसे दिनमें। जब वे आराम करते हैं तब कभी-कभी ऐसा मालूम होता है जैसे उनके सभी मानसिक एवं शारीरिक कार्य बंद हो गये हैं पर वे उस तरह नहीं सोते हैं जिस तरह आदमी सोता है। मनुष्यकी तरह तो घरेलू पशु भी नहीं सोता। घोड़ेको ही लीजिए, वह कठिन परिश्रमके बाद ही कुछ घंटे गहरी नींदमें सोता है। गोकि पशु सोते नहीं हैं पर उनकी ताजगी और चमक बनी रहती है। वे रातभर सोनेवाले मनुष्यकी तरह न कभी जम्हाई लेते हैं और न उनके मुंहपर कभी उनींदापन और थकान ही दिखाई देती है। शरीरकी चमक बनी रहे, सुस्ती कभी न घेरने पावे इसके लिए हमें प्रकृतिसे अधिक संपर्क स्थापित करना चाहिए, जिससे धीरे-धीरे हमें सोनेकी बहुत कम जरूरत रह जाय और संभवतः आगे चलकर इसकी जरूरत बिल्कुल खतम हो जाय। यहां आराम करने और सोनेके भेदको समझ लेना चाहिए। कार्यके बाद विराम यह प्रकृतिका नियम है। आजके मनुष्यके शरीर और मनको उसकी आंतरिक अशांति और उद्विग्नताके कारण कभी पूर्ण विश्राम नहीं मिलता। ज्यों-ज्यों उसका स्वास्थ्य सुधरता जायगा वह सुंदरतम आनंद, मधुरतम प्रसन्नता प्रदान करनेवाले विश्रामका अधिकारी होता जायगा।

इस प्रकारके विश्राममें जड़ता नहीं होती, न मस्तिष्ककी मरणावस्थाकी-सी दशा।

पशु पूर्ण विश्रामकी अवस्थामें सब कुछ सुनते और करते हैं। प्राकृतिक भोजन ग्रहण करनेवाले और प्राकृतिक स्नान करनेवालेको बहुत कम नींदकी जरूरत होती है।

जिस प्रकार खुली धरतीके बजाय कंबलपर सोकर भी धूप-नहान लेनेवालेको नींद नहीं आती उसी प्रकार प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवाला यदि नंगा होकर अधिक गरमीके दिनोंमें भी धरतीके बजाय बिछावनपर सोवे तो भी निद्रा उसपर अधिकार नहीं कर पाती। जितना ही अधिक हम अपनेको विशेषतः धरतीपर सोकर एवं अन्य प्राकृतिक नियमोंद्वारा प्रकृतिके संपर्कमें लावेंगे उतनी ही कम हमें नींदकी जरूरत रहेगी और बल तथा ताजगीके लिए नींदकी अपेक्षा।

यदि किसीको सुलाना हो तो किसी तरकीबसे उसके स्नायुओंमें ढीलापन लानेकी जरूरत होती है यह अवस्था ब्रोमाइड, मार्फिया, अफीमके विषोंद्वारा उत्पन्न की जाती है और इतने जोरके झटकेसे एवं इतनी गहराईसे की जाती है कि बादमें स्वास्थ्यपर उसका बुरा असर साफ-साफ प्रकट होता है। शराब पीनेसे, अप्राकृतिक भोजन करनेसे, गरम कमरेमें सोनेसे, गरम कपड़े ओढ़कर सोनेसे, मोटे गद्देदार बिछावनमें सोनेसे भी नींद आती है और इस नींदको लोग शक्तिदायक और लाभदायक समझते हैं। पर यह नींद भी इन बाहरी उपकरणोंद्वारा शरीरमें ढीलापन उत्पन्न हो जानेके कारण ही आती है और निश्चय ही शरीरको नुकसान पहुंचाती है पर वह हानि इतनी अधिक नहीं होती कि उसके लक्षण साफ-साफ दिखाई दे सकें।

फिर भी लोग सोकर उठनेपर एक प्रकारकी घबराहट और भयका अनुभव करते ही हैं। पर जब लोग धरतीपर सोने लगते हैं तब उन्हें नींद थोड़ी ही क्यों न आए या न भी आए तो भी सोकर उठनेपर उन्हें कोई अप्रिय एवं कष्टकर अनुभव नहीं होता।

ओपधि या किसी मरीज-दिमागमें पैदा हुए रसायनसे महरूम न रह जाएंगे, वरन् एक ऐसी प्राकृतिक महोपधिके अपनेको अनधिकारी ठहरावेंगे जिसे प्रकृति स्वयं अपने हाथों प्रदान करती है और जिसकी अनुभूति स्वास्थ्यकी सच्ची नियंत्रिणी एवं पथप्रदर्शिका नैसर्गिक वृत्तिद्वारा होती है।

जिन लोगोंने नंगे पैर टहलनेका इरादा पक्के तौरसे कर लिया है वे इसकी चिंता न करें कि वे कहां टहलेंगे। खेत और खलिहान, जंगल और वन काफी लंबी दूरीमें फैले हुए हैं जहां कोई भी टहल सकता है। आजके लोगोंके दिमागोंसे रूढ़िवादिता खतम हो रही है जिससे वे नई चीजें देखनेके आदी होते जा रहे हैं। अतः नंगे पांव टहलनेको लोग बहुत विचित्र चीज नहीं मानते और नंगे पांव टहलनेवालोंको न चिढ़ाते हैं न उनका मजाक ही उड़ाते हैं।

लोग यह भी पूछ सकते हैं कि रातको खुली धरतीपर खुले बदन सोनेके लिए अपना कंबल और ओढ़ना लेकर कहां जाएं? प्राकृतिक चिकित्सालयोंमें इसकी सुविधा रहती है। वहां पार्कोंमें ऊंचे-ऊंचे तख्ते खड़े करके, स्त्री और पुरुषोंके लिए अलग जगहें बना दी जाती हैं जिनमें वायु एवं प्रकाशपूर्ण झोंपड़े भी होते हैं ताकि रोगी इच्छानुसार खुली जमीनपर या जमीनपर (पुवाल या पंखसे भरा) गद्दा बिछाकर सो सके और वायु और प्रकाशस्नान कर सके।

ऐसी जगहोंमें प्राकृतिक स्नानकी भी सुविधा अवश्य होनी चाहिए। वहां इस स्नानके लिए छोटी-छोटी कोठरियां बनवा दी जा सकती हैं।

मेरी कदापि यह मंशा नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति मेरे विचारोंसे प्रेरित होकर समाजमें गहराईतक जड़ पाई हुई पुरानी रूढ़ियोंसे,

जो अकसर नुकसानदेह ही होती है, अपना नाता तोड़ ले और जिनके साथ अभीतक वह भुगतता और सहता रहा है, जिनके साथ अब भी उसका भाई-चारे और प्रेमका संबंध है, उनके विरोधका भाजन बने एवं उनसे खुली लड़ाई ठान बैठे।

जहांतक बन सके हमें ऐसे खुले विद्रोहसे बचना चाहिए पर ऐसा न हो कि हम जिस लक्ष्यकी सिद्धिके लिए कटिबद्ध हैं उसे ही हतोत्साह होकर छोड़ बैठें। ऐसा करना अपमानजनक एवं भीरुताका लक्षण होगा। स्वास्थ्य-प्राप्तिका हमें सदा ध्यान रहना चाहिए। स्वास्थ्यपर ही सारी दुनियाकी खुशी निर्भर है।

समाजके स्वास्थ्यकी देख-रेखके लिए नियत सरकारी अधिकारियोंसे भी हमें न भिड़ना चाहिए, और न ऐसे कानूनोंको ही तोड़ना चाहिए, गो वे गलत ही क्यों न ठहरते हों, जिन्हें साधारण जनताके मतके आधारपर चुने प्रतिनिधियोंने बनाया है।

पर प्रत्येक नागरिकको यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे कानून (टीका आदि लगानेके कानून)से लोगोंका कम-से-कम अहित हो और उन्हें इस बातकी कोशिश करनी चाहिए कि ऐसे कानून समय पाकर बदल दिए जायं या मिटा दिये जायं।

सर्वथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवालोंका मजाक उड़ाने और उनकी राहमें रोड़े डालनेकी लोगोंकी इच्छा होनेके कई कारण हैं। पहली बात तो यह है कि जो लोग ऐसा करते हैं उन्हें अपने अस्वाभाविक जीवनका एवं उससे आनेवाली विपत्तियोंका नैसर्गिक रूपसे ज्ञान रहता है और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवालोंके हुए लाभको देखकर उन्हें ईर्ष्या होती रहती है। दूसरे, प्राकृतिक भोजन एवं जीवनकी अस्वाभाविक रीतिसे, जिनका मनुष्य मादक द्रव्यों एवं पापाचारोंकी तरह गुलाम बना रहता है,

मुक्ति पा लेनेके लिए न उनमें काफी मानसिक बल होता है, न इसके लिए उसे प्रोत्साहन अथवा मौका ही मिलता है। और सबसे बड़ी बात यह है कि उन्हें इस सही रास्तेका समुचित ज्ञान भी नहीं होता कि वे इसका अनुसरण कर सकें।

पर जब लोग इस सत्यको अधिकाधिक साफ तौरसे पहचानने लगेंगे और शांति एवं बुद्धिमत्तापूर्वक उसे इस तरह अपनाएँगे कि लोग उससे कम-से-कम चिढ़ें या भड़कें, तो इसकी जड़ उतनी ही जमती जायगी और इसके मार्गमें काँटे बिछानेवालोंकी संख्या भी कम होती जायगी। और अब तो मालूम होता है कि रास्ता बहुत कुछ साफ हो भी गया है।

तब पृथ्वीके आनंद और आरामका दरवाजा जिस प्रकार आज वह मेंढक और चूहे, खरहे और साही, हिरन और बारहसिंघे, लोमड़ी और बिज्जू आदि सभी जीवोंके लिए खुला है उसी प्रकार ईश्वरके प्रियपात्र मनुष्यको भी धरतीमाताके जादूभरे संसर्गमें रहकर आराम करनेकी सुविधा मिल जायगी, जिससे उसे पृथ्वीका सच्चा आनंद मिलेगा एवं उसके स्वास्थ्यको अपरिमेय लाभ प्राप्त होगा।

कुछ ही दिन हुए जब कुछ स्थानोंमें स्वास्थ्योन्नति एवं रोग-निवारणके लिए कुछ लोगोंका बरफपर भी नंगे पाँव टहलना आरंभ करनेका समाचार सुना गया था। साधारणतः सुननेवालोंने तब इसका मजाक ही उड़ाया था।

लोग तो पहले पाँवोंको, जिनका हमेशासे खास खयाल रखा जाता रहा है एवं जिन्हें हर समय गरम रखनेका खास इंतजाम किया जाता रहा है, ठंडी हवा, खुरदरी धरती एवं शीतकाल हो तो बरफके संपर्कमें लानेके विचारमात्रसे झिझकते थे। क्यों न

झिझकते ? हमेशासे जो दादी कहती आई है "वेटा ! पांवोंको हमेशा गरम रखो।" और डाक्टर साहव पांवोंको ठंडे पानीसे वचानेकी सीख जो देते आए हैं। इस समाचारके वाद कुछ लोगोंने नंगे पांव टहलनेकी आजमाइश की और जाना कि नंगे पांव टहलना स्वास्थ्यके लिए तो सव तरहसे उपयोगी है ही, वढ़िया केसरत भी है। और तभीसे इस सर्वथा प्राकृतिक उपचारके संवंधमें लोगोंके विचारोंमें वड़ा परिवर्तन हुआ है।

इसी तरह धरतीपर सोनेका भी चलन चलेगा। कुछ दिन-तक यह चलन नंगे पांव चलनेसे वहुत अधिक कठोर एवं अमानुषीय समझा जायगा। पर जव लोग इसका प्रयोग कर देखेंगे तव इसके रोग-निवारणके विशेष गुणसे परिचित हो जायंगे और यह भी जान जायंगे कि यह चाल नंगे पांव चलनेकी तरह ही निरापद है।

सूर्यकिरणें रोग-निवारणमें वड़ी लाभकर सिद्ध हुई हैं। यदि रोगी धूपमें टहलनेके वजाय लेटकर धूप ले तो लाभ वहुत अधिक होता है। इसी तरह धरतीपर लेटनेपर धरतीका असर भी टहलने समयसे ज्यादा सीधा पड़ता है। धूपकी तरह धरती भी शरीरमें रोग-निवारणकी क्रिया प्रारंभ कर देती है, पर यदि टहलनेमें या और किसी कार्यमें शक्तिका व्यय हो रहा हो तो धूप और धरतीसे शक्ति मिलती रहनेपर भी शरीर अपने शोधनका कार्य पूरी तेजीसे नहीं कर पाता।

जो भी हो, प्रचलित विचारोंका खयाल करके प्रत्येक रोगीको और खास तौरसे चिकित्सालयके निवासियोंको खुली धरतीपर आराम करने या सोनेकी राय देते वक्त वहुत सोच-समझसे काम लेना चाहिए। इसके चुनावका सारा भार रोगीपर ही छोड़ना चाहिए। इक्के-दुक्के आदमी जो धरतीपर सोकर लाभ उठावेंगे

उन्हें देखकर और लोग भी उनका अनुसरण करेंगे। शुरूमें एक रात जमीनपर और दूसरी रात बिछौनेपर सोना काफी होगा।

जब मैंने अपने चिकित्सालयोंमें धरतीपर सोनेका चलन चलाया तो मुझे भी अनेक वहमोंका सामना करना पड़ा। किसीको जमीनपर सोनेका प्रयोग करनेकी इच्छा ही नहीं होती थी। तब कई लोगोंने एक साथ बड़े उत्साहसे धरतीपर सोना आरंभ किया और इससे प्राप्त लाभोंसे बड़े प्रसन्न हुए। फिर तो उन्होंने प्रायः सभीको खुली धरतीपर सोनेके लिए राजी कर लिया। इससे प्रत्येकको जो लाभ हुआ उसे देखकर सचमुच बड़ा आश्चर्य होता था।

जलके प्रयोग लोग प्रिसनीज, कनाइप, कूने आदिके समयसे करते आ रहे हैं। नहानेके साथ शरीरको रगड़नेकी क्रिया भी प्रचलित हो गई है; पर इनमेंसे कोई भी क्रिया पूर्णतया प्रकृतिकी बोधगम्यताके अनुसार प्रतिपादित नहीं है।

नंगे रहनेका प्रचार पहले-पहल रिक्लीने किया था। वह वायु और प्रकाशसंबंधी प्राकृतिक नियमोंको पूरी तरह नहीं समझता था और इनकी जानकारीके बगैर भी वह कुछ लोगोंको नंगे रहनेकी राय दे देता था पर इससे साधारण जनतामें इसका चलन नहीं हो सका।

पर धरतीकी शक्ति और उसके प्रयोगपर किसीका जरा भी ध्यान नहीं गया था। जब मैंने पहले-पहल इसकी चर्चा की तो लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ; पर शीघ्र ही धरतीकी शक्ति लोगोंके लिए कुतूहलका विषय बन गई और हर जगह इसकी बात बड़े ध्यानसे सुनी जाने लगी।

सचमुच धरतीके रोग-निवारक गुण और इससे मिलनेवाले अनेक प्रकारके लाभोंसे बढ़कर दूसरा दिलचस्प और आवश्यक

विषय है भी नहीं। इसलिए मैं इसकी चर्चा विशेष रूपसे करना चाहता हूं। पृथ्वीमें इसके आदिसे ही एक शक्तिशाली प्राणका प्रवाह हो रहा है जिसपर मनुष्यके बनाव-बिगाड़का कोई असर नहीं पड़ सका है। यदि मनुष्य पृथ्वीके सीधे संपर्कमें आ जाये तो पृथ्वी मनुष्यको भी अपनी इस सजीव शक्तिसे प्रवाहित करनेको तैयार रहती है।

हम पृथ्वीसे इच्छित शक्ति प्राप्त कर सकते हैं और जो जितना ही अधिक प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता है पृथ्वीसे उतनी ही अधिक शक्ति मिलती है। जब कभी मौका मिले आदमीको धरतीपर कपड़े पहनकर ही सही बैठना चाहिए। टहलते वक्त या लंबी यात्राओंमें खुली धरतीपर बैठकर या लेटकर आराम करना चाहिए। पृथ्वीकी शक्ति प्रकृत्या मनुष्यपर उसके कपड़ोंके द्वारा भी असर करती है। आप थोड़ी देरके लिए आरामसे खुली धरती-पर सो जाइए, आप मेरे कथनका अनुभव कर लेंगे।

उत्तेजित मनोदशा, निरुत्साह और शोकके क्षणोंमें, हिस्टी-रियाका दौरा होनेपर एवं शरीरमें ऐंठन चलने आदिकी दशाओं अथवा अनेक प्रकारकी रोगावस्थाओंमें मैंने धरतीपर बैठने या लेटनेसे लोगोंको अकसर शीघ्रतासे शांत होते, उनका कष्ट कटते और उन्हें रोगमुक्त होते देखा है।

पृथ्वी यदि गीली हो तो हमें इसकी चिंता करनेकी जरूरत नहीं है। ऐसी हालतमें पृथ्वीकी रोगनिवारक शक्ति अधिक सतेज होती है जिसकी पुष्टि इस बातसे होती है कि कई लोगोंको इससे सर्दी-जुकाम हो जाता है। यह शरीरकी शुद्धि प्रारंभ होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण है, जैसा कि अकसर लोग समझते हैं यह किसी तरह भी डरकी चीज नहीं है।

सारी प्रकृतिमें ही रातके वक्त एक निराली शक्ति प्रवाहित होती रहती है। यदि आप रात्रिके समय जंगलमें जायं तो प्रतीत होता है कि वहां संसारके मुक्त प्राण पर्यटन कर रहे हैं। लोग कहते हैं कि दूर्वा दिनमें नहीं, रात्रिको ही बढ़ती है। इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि धरतीकी शक्ति रातको खास तौरसे शक्तिशाली होती है।

मैंने अपने चिकित्सालयमें बराबर ऐसी कोशिश की है जिससे लोगोंको धरतीपर सोना अधिकाधिक सुखद प्रतीत हो। अंतमें मेरे मनमें बालूके गद्दे बनवा देनेका विचार उत्पन्न हुआ। साधारण धरतीपर सोनेके बजाय इनपर सोना ज्यादा आरामदेह होता है। ये धरतीसे मुलायम होते हैं।

चारसे आठ इंच मोटी बालूकी तह सोनेके लिए काफी होती है। इसपर कोई भी पतला टाट या कपड़ा बिछाया जा सकता है। इससे पृथ्वीकी शक्ति प्राप्त करनेमें कोई विशेष बाधा नहीं पड़ती और ओढ़ना भी साफ रहता है। इसमें और भी कई लाभ हो सकते हैं। सिरहानेकी ओर घासकी ऊंची पटिया-सी बनाकर तकियेका काम लिया जा सकता है।

यदि बालूका यह बिछावन खुली जगहमें लगाया जाय तो लाभ और विशेष हो, क्योंकि मनुष्यके रोग-निवारणमें आकाशका भी स्थायी प्रभाव पड़ता है। और यह प्रभाव रात्रिको अधिक शक्तिपूर्ण रहता है। तारोंभरी रातमें आकाशके महान गुंबजके नीचे जब मनुष्य सोता रहता है, यह शक्ति उसके शरीरमें जीवन और बल भरती रहती है। आकाश और धरतीकी शक्ति मिलकर एक महान शोधक शक्ति बन जाती है।

मौसम ठीक न होनेपर यह विस्तर खुले कमरेमें या खेमेमें वनाना चाहिए।

काठका कोई भी लंवा और बड़ा-सा वक्स किसी कमरेमें रख दिया जा सकता है और मिट्टी वालू भरकर सोनेके काममें लाया जा सकता है।

सर्दीका भय

खुलेमें, हवामें और प्रकाशमय झोपड़ीमें, जमीनपर सोने और जाड़ेके दिनोंमें तथा खास तौरसे रोगकी हालतमें भी इस तरह रहनेकी मेरी सिफारिशने कुछ लोगोंके सामने कितने ही भयंकर रोगोंकी तस्वीर खड़ी कर दी होगी। उनके रोंगटे खड़े कर दिए होंगे। वे सोचते होंगे इस तरह रहा जाय तो सर्दी, जुकाम, गठिया, मियादी वुखार, इन्फ्लुएंजा, निमोनिया आदि भले चंगेको धर दवाएंगे और रोगी इस रहन-सहनकी वदौलत दुनियासे ही कूच कर जायगा।

लोगोंके दिलोंसे ठंडके भयका भूत भगानेकी कोशिश मैं कई वार कर चुका हूं। यह जानते हुए भी कि राक्षसकी भांति इसके पांव चारों तरफ फैले हुए हैं, मैं एक वार फिर इसपर एक सांघातिक आघात करना चाहता हूं।

मनुष्यकी पाचन-प्रणालीका काम देखनेसे मालूम होता है कि वह ऐसे ही खाद्यको अच्छी तरह पचा सकता है कि जिन्हें प्रकृतिने उसके लिए उपजाया है अर्थात् धरती, जिन्हें विना खेती या वागवानीकी मददके, अपने आप उपजाती है और जिन्हें आदमी उनकी

प्राकृतिक—बिना बिगड़ी हुई अवस्थामें (मेवे, झरबेर, फल एवं अन्य कई चीजें) स्वाद लेकर खा सकता है। अब यदि आदमी इन प्राकृतिक खाद्योंकी बदली हुई दशामें आगकी मददसे खाता है या ऐसे अप्राकृतिक खाद्य खाता है कि जो प्राकृतिक खाद्योंसे देखनेमें तो थोड़े बहुत मिलते हैं पर जिन्हें प्रकृतिने उसके लिए नहीं बनाया है तो उसकी पाचन-प्रणाली उन्हें अंशतः, और सो भी कठिनाईसे ही पचा पाती है या वे बिलकुल नहीं पचते। शरीर इन अप्राकृतिक खाद्योंका उपयोग (रक्त, पेशी, अस्थि आदि बनानेमें) पूरी तरह नहीं कर सकता। उससे हमारे शरीर और मस्तिष्कको समुचित रूपसे बढ़नेके लिए उपयुक्त सामान नहीं मिलता, न पूरी शक्ति और जीवन। उस खाद्यका अवशेष आमाशयमें पड़ा रहकर, वहांसे ठोस, तरल और वायव्य रूपोंमें शरीरके प्रत्येक अंग और उनके सिरोंतक पहुंच जाता है और कभी-कभी शरीरका रूप ही बिगाड़ देता है। यह शरीर-द्रव्य नहीं विजातीय द्रव्य है। और यह द्रव्य दूसरे तरीकों, सांस और त्वचाद्वारा टीके और इंजेक्शनके रूपमें भी शरीरमें पहुंच सकता है।

विजातीय द्रव्य धीरे-धीरे अंगोंके बीचमें स्थान बना लेता है। यह अंगोंको अपनी प्रकृतिके अनुसार जल्दी या देरसे नुकसान पहुंचाता और उन्हें नष्ट कर देता है। विजातीय द्रव्य भीतर सड़ने भी लगता है, उससे एक प्रकारकी गरमी निकलती है जो शरीरको नुकसान पहुंचाने और नष्ट करनेका असर रखती है। इस तरह शरीरके कभी इस अंगमें तो कभी उस अंगमें दर्द उत्पन्न होता रहता है और उनके सारे साधारण कार्योंमें व्याघात पहुंचता रहता है जिससे आगे चलकर मनुष्यकी अकालमें मृत्यु हो जाती है। इस जमानेके लोगोंमें विजातीय द्रव्यके बनने और इकट्ठा होनेकी यह

क्रिया अधिक तेजीसे होती है। क्योंकि हम लोग भारी-भारी जूते और मोटे-मोटे कपड़े पहनते हैं, शरीरपर ठंडा पानी लगनेसे अपनेको बचाते हैं, पृथ्वीसे हमारा कोई संबंध नहीं रह गया है, वायु और प्रकाश हमारे तनतक नहीं पहुंच पाते, हम गंदी हवामें सांस लेते हैं। इन कारणों एवं प्रकृतिके विरुद्ध किए गए अन्य पापोंके कारण हमारी पाचनशक्ति और जीवनशक्तिके कार्यमें बाधा पड़ती रहती है जिससे आगे चलकर वे निकम्मी हो जाती हैं।

पर ज्यों ही मनुष्य अपने भारी जूतों और भारी कपड़ोंको अलग कर देगा और ऐसे कपड़े इस्तेमाल करेगा कि उनसे होकर पानी, प्रकाश, हवा और खास तौरसे तेज ठंडी हवा शरीरतक आसानीसे पहुंच सके त्यों ही प्रकृति हमारी जीवन-शक्तिको, विजातीय द्रव्यको ढीला करने और बरजोरी शरीरसे बाहर निकालनेका लाभकर कार्य करनेके लिए तुरंत प्रेरित करेगी। जीवन-शक्तिकी इस क्रियाको स्वास्थ्यकर उभार कहते हैं।

यह उभार कमजोर, दुबले और बिगड़े शरीरवालोंमें स्वभावतः बहुत जल्द और तेजीसे होता है। उन्हें प्रकृतिकी इस सहायताकी आवश्यकता भी बहुत अधिक रहती है। क्योंकि ठंडे पानी, प्रकाश, वायु और ठंडी जमीनके डरसे और इनसे मिलनेवाले लाभसे अपनेको बचाये रखनेकी वजहसे उनकी जीवनशक्ति बहुत मंद पड़ जाती है और उनके शरीरमें विजातीय द्रव्य बहुत अधिक मात्रामें इकट्ठा हुआ रहता है।

इससे सर्दी और जुकाम डेरे डाल देते हैं अथवा अंगों (फेफड़े, स्नायु आदि)की अपना विजातीय द्रव्य निकाल डालनेकी आतुरताके अनुरूप लाल बुखार, चेचक (बच्चोंके रोग) हांफाडाफा, मियादी बुखार, निमोनिया, इन्फ्लुएंजा आदि तीव्र रोग होते हैं।

नमी, हवा और ठंडक लगनेके अलावा अन्य कारणोंसे, उदाहरणार्थ वायुमंडलके तापमानमें यकायक परिवर्तन, अत्यधिक मानसिक उत्तेजना आदिसे भी तीव्र रोग (मियादी बुखार, हैजा आदि) हो जाते हैं। कभी-कभी ये रोग शरीरमें स्वयं बिना किसी बाहरी कारणके उत्पन्न हो जाते हैं।

इन तीव्र रोगोंके साथ हमेशा तीव्र ज्वर भी होता है। पहले प्रायः कुछ ठंडक-सी लगती है; विजातीय द्रव्यमें उत्तेजना होनेसे, अणुओंके आपसमें रगड़ खानेसे शरीरके अंदर गरमी बढ़ जाती है; इसलिए रक्त शरीरके अंदरकी तरफ खिंच जाता है, शरीरका बाहरी भाग ठंडा हो जाता है और रोगीको ठंडक मालूम होती है। पर जल्द ही गरमीके शरीरकी त्वचातक पहुंच जानेसे, शरीर गरम हो जाता है। क्योंकि इस समय परिचालित विजातीय द्रव्यको शरीर त्वचाद्वारा तीव्रतासे बाहर निकालनेकी कोशिश करता है। हाफेडाफेमें गला खास तौरसे आक्रांत हो जाता है। बढ़ती हुई गरमीसे विजातीय द्रव्यका आकार बढ़ जाता है और वह पेटसे सिरकी ओर जाते समय गलेमें फंस जाता है जिससे दम घुटकर मृत्यु हो जानेका भय उत्पन्न हो जाता है।

अब यदि हम रोगीके कमरेकी खिड़कियां बंद करके, प्रकृतिके चिकित्सा-साधन, शुद्ध वायु और प्रकाशको रोगीतक पहुंचनेसे रोकते हैं एवं ज्वरनिरोधक जहरीली दवाएं आदि देते हैं तो बेचारे रोगीकी जीवन-शक्ति और भी कमजोर हो जाती है और गरीब रोगी प्रकृतिके विरुद्ध ठानी हुई इस लड़ाईमें सदैव परास्त होता एवं गिरता है। रोगीको भयानक कष्ट और पीड़ाएं सहनी पड़ती हैं। तब भी होता यही है कि प्रायः उसकी मृत्यु ही हो जाती है; कभी-कभी यह भी होता है कि इस लड़ाईमें रोगके लक्षण चले जाते

हैं, रोगी अच्छा हुआ-सा दिखाई देता है अर्थात् शरीर अपनेको शुद्ध करनेका प्रयास बंद कर देता है पर कुछ ही दिन बाद शरीर अपनेको विजातीय द्रव्यसे मुक्त करनेकी और भी अधिक कठिन रीति ग्रहण करता है और एक भयानक उभार प्रस्फुटित होता है। हो सकता है कि इन्फ्लुएंजा किसी शोथनाशक दवासे प्रकट रूपसे चला जाय पर शीघ्र ही फेफड़ोंमें प्रदाह आरंभ हो जाता है। इस प्रकार ओपधियोंके उपयोगके कारण कभी-कभी जीवनशक्ति सदाके लिए ऐसी क्षीण हो जाती है कि शरीर तीव्र रोग अथवा अन्य किसी रीतिसे अपने विजातीय द्रव्यको निकाल फेंकनेमें सदाके लिए असमर्थ हो जाता है।

शरीरमें इकट्ठा विजातीय द्रव्य जब सड़ने लगता है तब जीर्ण रोग होते हैं—यह सड़ान गरमी उत्पन्न करती है जो शरीरके[1]

[1]भीतर गरमी मालूम होना जीर्ण ज्वरका लक्षण है। इस रोगमें रोगीका शरीर बाहरसे ठंडा रहता है पर ज्यों-ज्यों रोगकी दशा बिगड़ती जाती है रोगीका शरीर ऊपरसे भी गरम रहने लगता है। इसीलिए पुराने जीर्ण रोगियोंको अंतमें तेज ज्वर रहने लगता है। ऐसी दशामें समझना चाहिए कि रोगीकी जीवनशक्ति बिलकुल क्षीण हो गई है। इस दशामें ज्वर तीव्र रोगके ज्वरके समान विजातीय द्रव्यको शरीरसे बाहर निकालनेके लिए नहीं बढ़ता है वरन् इसका यह अर्थ है कि जो जीवनशक्ति शरीरके अंदरसे ज्वरको दूर करनेमें लगी हुई थी और ज्वरको बाहर जानेसे रोक रही थी उसने थककर काम छोड़ दिया है, जिसकी वजहसे ज्वर शरीरके बाहर-भीतर सभी जगह बढ़ गया है। जीर्ण ज्वरकी अंतिम अवस्थाके इस ज्वरसे लड़नेके लिए भी प्राकृतिक चिकित्साके साधन प्रकाश, वायु, जल, मिट्टी, प्राकृतिक भोजन आदिका उपयोग सफलताके साथ किया जा सकता है।

लिए हानिकर है। जीर्ण रोग अब खतरनाक होता जाता है, धीरे-धीरे स्नायुदौर्बल्य, यक्ष्मा (इन्फ्लुएंजा और फेफड़ोंमें प्रदाह उत्पन्न हो जानेके कारण), कैंसर, गठिया, मधुमेह, वड़े घाव-सरीखे कठिन रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस समय यदि प्राकृतिक चिकित्साद्वारा रोगीकी जीवनशक्ति धीरजसे लगे रहकर एक बार फिर न जगा दी जाय तो ये रोग रोगीको वर्षो खाटमें सड़ाकर धीरे-धीरे उसे कब्रतक पहुंचा देते हैं।

तीव्र रोगोंमें शरीरको बहुत हानि पहुंचाते हुए भी औषधोपचार रोगोंको दबानेमें सफल हो जाता है। पर जीर्ण रोगोंको तो वह दबा भी नहीं पाता। वहां उसकी कुछ नहीं चलती। हां, चीर-फाड़ और संखिया आदि-सरीखे भयंकर विषोंके द्वारा जीर्ण रोगकी दशा भी कभी-कभी कुछ बदल जाती है, रोगके एक-दो लक्षण दूर

उदाहरणके लिए सदा बहनेवाले खुले घावको लीजिए। कभी-कभी यह कोई तेज मरहम लगानेसे बंद हो जाता है। पर ऐसा करके केवल एक ऐसे रास्तेको, जिससे शरीरका विजातीय द्रव्य धीरे-धीरे निकल रहा था, बंद कर दिया जाता है। अब विजातीय द्रव्य शरीरकी अंदरकी ओर चलता है और यदि इसे निकलनेका कोई दूसरा रास्ता शीघ्र न मिला तो यह शरीरको इतनी बड़ी हानि पहुंचा सकता है कि जिससे मृत्युतक हो सकती है। पर यदि विजातीय द्रव्यका बनना ही प्राकृतिक भोजनद्वारा रोक दिया जाय एवं प्रकाश, वायु, जल और धरतीकी शक्तिके उपयोगद्वारा शरीरकी जीवन-शक्ति और पाचनको बढ़ाकर विजातीय द्रव्यको मल, मूत्र एवं स्वेदमार्गसे निकालनेमें सहायता की जाय तो घावका बहना अपने आप बंद हो जायगा और शरीरकी रोगनिवारिणी शक्ति बढ़नेसे वह सूख जायगा। इस विधिसे किसी प्रकारकी हानिकी संभावना नहीं है, न शरीरका ही कोई नुकसान हो सकता है।

हो जाते हैं और शरीरके किसी विशेष अंगके रोगके लक्षण प्रकट रूपसे चले भी जाते हैं। लेकिन रोगीका प्रधान रोग तो बढ़ता ही जाता है। यहांतक कि जिन चीजोंके मोहके कारण वह प्रकृति-पथसे हटा था वे उसकी कोई सहायता नहीं कर पातीं और अंतमें वह मृत्युके कराल गालमें जा पड़ता है।

टीकेके जहरद्वारा शरीरकी जीवनशक्ति आरंभमें निकम्मी कर दी जा सकती है। फलस्वरूप जिन जीवन-शक्तिसे भरे-पूरे लड़कोंके शरीरका विजातीय द्रव्य चेचक आदि बच्चोंके रोग कहे जानेवाले उपायोंसे निकल जाता था वे बंद हो जाते हैं। अब इन सीधे-सादे तीव्र रोगोंके बजाय डिप्थीरिया, फेफड़ोंका प्रदाह-सरीखे भयानक रोग होते हैं और स्नायुदौर्बल्य, यक्ष्मा, कैंसर आदि सरीखे जीर्ण रोगोंकी एक लंबी कतार उनके पीछे लग जाती है। कितने ही लोग यक्ष्मा, कैंसर, स्नायुदौर्बल्य, कंठमाला, बहरेपनको साथ लिए अपनी बैसाखीके सहारे कब्रकी ओर लड़खड़ाते हुए बढ़ते दिखाई दे रहे हैं। इनमेंसे कितने ही अंधे भी हो चुके हैं और अनेकोंके शरीरका आकार विकृत हो गया है। इनमेंसे अनेककी यह दशा स्वास्थ्यके रक्षक कानून और ओषधोपचारद्वारा विहित टीके ने की है। पर यह बात बहुत कम लोगोंको मालूम है। इस संबंधमें भी यही देखना है कि अंधेरेमें रखे गए इस सत्यपर प्रकाश कब पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जुकाम एवं अन्य साधारण तीव्र रोगोंके लिए दी गई दवाएं ही मनुष्यके लिए बड़ा-से-बड़ा खतरा उत्पन्न करती हैं, उसे कष्ट और संकटमें डालती हैं। यहां भी औषधोपचार प्रकृतिके आवाजपर कान नहीं देता और प्रकृति-के सद्उद्देश्योंका ग़लत अर्थ लगाता है।

हम जितना ही आगे बढ़कर प्रकृतिका स्वागत करेंगे, तीव्र रोगोंके उद्देश्योंको समझकर उनके सहायक होंगे, जितना ही हम रोगोंके सही कारण अप्राकृतिक भोजन, शहरों और कमरोंकी गंदी हवासे बचेंगे—और जितना ही हम अपने शरीरपर प्रकाश, वायु, शीतल जल एवं धरतीकी शक्तिका असर होने देंगे उतनी ही पूर्णता और शीघ्रतासे हम अपने शरीरके अंदर उत्पन्न गरमीके खतरेसे दूर होंगे। और तब मल भी (नाक और फेफड़ेके रास्ते) अधिक शीघ्रतासे और समुचित रीतिसे निकलने लगेगा। गुर्दे और बड़ी आंतें अपना काम ठीक-ठीक करने लगेंगी। गरमी होनेपर पसीना आने लगेगा, खसरा, लाल बुखार चेचकके रूपमें मल त्वचाके ऊपर आ जायगा तथा अनेक अन्य रूपोंमें विजातीय द्रव्य शरीरसे बाहर होने लगेगा। शरीरमें गरमी कम होनेपर रोगीको कष्ट और पीड़ा कम होगी और उसे शीघ्र ही आरामका अनुभव होने लगेगा। तीव्र रोग जानेपर उसे अपनेमें नवीन शक्ति आई प्रतीत होगी एवं इससे उसका काया-कल्प उस ग्रीक पौराणिक पक्षीकी भांति हो जायगा जो अपनेको भस्म करके अपनी राखसे फिर पैदा हो जाता था।

तीव्र रोगोंके उपचारमें औषधोपचारकी असफलता एवं ओषधिके प्रयोगसे होनेवाली हानियां उन सबपर, जो डाक्टरोंकी तड़क-भड़कसे चौंधिया नहीं गए हैं, एवं जो दवाओंद्वारा रोगी-पर लाए गए असरको निष्पक्ष भावसे देख सकते हैं, प्रकट हो जायगी। इसी प्रकार तीव्र रोगोंमें प्राकृतिक चिकित्सा करनेपर जो लाभ होता है एवं रोगोंके जानेपर स्वास्थ्यमें जो सुधार होता है वह कोई भी किसी प्राकृतिक चिकित्सालयमें जाकर या

स्वयं अनुभव करके साफ-साफ देख सकता है। तब उसे मेरे इस कथनपर भी विश्वास हो जायगा कि तीव्र रोग जरा भी खतरनाक नहीं हैं वरन् वे उपचारात्मक उभार हैं जिनके द्वारा शरीर अपनेको विजातीय द्रव्यसे मुक्त कर लेता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि मियादी बुखार, डिफ्थीरिया, हैजा आदि सभी तीव्र रोग अधिकतर सर्दीके कारण होते हैं और जिनसे लोग आजकल बुरी तरह डरते हैं, बिल्कुल खतरनाक नहीं है। यदि इनका समुचित उपचार किया जाय तो वे अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होते हैं। वे मनुष्यके लिए वरदानस्वरूप हैं, आनंद और हर्षके साथ उनका स्वागत करना चाहिए।

अनगिनत रोगियों एवं स्वयं अपनेपर किए गए अनेक अनुभवोंने मेरे इस विश्वासको कि सर्दी, जुकाम आदि रोग प्रकृति हमारे लाभके लिए लाती है, अधिक दृढ़ कर दिया है। जो मेरी बताई उपचार-पद्धतिको काममें लायेगा, उसे मेरे कथनकी सत्यताकी प्रतीति करानेवाले ठोस प्रमाण भी मिल जायंगे।

तीव्र रोग शरीरको चलाते रहनेका प्रकृतिका एक साधारण उपाय है। पर वह सर्वथा आवश्यक नहीं है। यदि प्रकृतिकी ओर लौट चला जाय तो उससे पूरी तौरपर बचा जा सकता है। जुकाम या अन्य कोई तीव्र रोग होनेपर यदि जल्द ही उसकी प्राकृतिक चिकित्सा आरंभ कर दी जाती है अर्थात् यदि रोगी प्राकृतिक स्नान करता है, कमरेकी सारी खिड़कियां खुली रखकर कमरेमें या बाहर खुलेमें सर्दी-गर्मीके अनुसार थोड़ी या अधिक देरतक बार-बार नंगे रहकर वायुको शरीरपर लगने देता है, नंगे पांव टहलकर, खुले बदन सोकर या आरामकर धरतीसे अपना संबंध जोड़ता है तो चेचक, डिफ्थीरिया, मियादी

बुखार, तीव्र ज्वर, हैजा-सरीखे डरावने रोग भी कोई कष्ट नहीं देते और रोगीकी परिचर्यामें लगे लोगोंको भी रोगके उतार-चढ़ावके समय कोई चिंता नहीं होती। पर यदि स्वस्थ दिखाई देनेवाले लोग या जीर्ण रोगके रोगी, अभीसे, तीव्र रोग होनेके पहले ही, प्रकृतिकी ओर लौट चलें अर्थात् जल, प्रकाश, वायु और धरतीका समुचित उपयोग जिसका वर्णन मैं कर चुका हूं, करने लगें और प्राकृतिक भोजन करें, जिसके संबंधमें मैं आगे लिखूंगा, तो उन्हें जुकाम या कोई भी अन्य तीव्र रोग न होगा।

अपने प्राकृतिक चिकित्सालयमें और इसे स्थापित करनेके पहले मुझसे जिन अनगिनत रोगियोंने पूरे विश्वासके साथ चिकित्सा कराई उन्हें चिकित्साकालमें न तो जुकाम हुआ और न कोई अन्य तीव्र रोग। इस प्रकारके स्वास्थ्यकर उभार भी किसी-न-किसी रूपमें अप्रीतिकर होते हैं। वे कम-से-कम हमारे साधारण जीवन-क्रममें बाधक तो होते ही हैं। पर जिन अनेक बूढ़े और जवानोंने, जिन्होंने विना किसी विशेष सावधानी या क्रमागत परिवर्तनके सीधे नंगे पांव टहलना शुरू कर दिया, खुलेमें प्राकृतिक नहान लेने लगे, वायु और प्रकाशपूर्ण झोंपड़ीमें सोने लगे अथवा बिल्कुल खुली जगहमें खुली धरतीपर लेटने लगे और नंगे रहने लगे, उनमेंसे किसीको भी, यद्यपि उन्होंने अच्छे और बुरे मौसममें, बरसात और धूपमें और कभी-कभी कड़ाकेकी सर्दीमें भी सारी चिकित्सा जारी रखी, कोई उभार नहीं हुआ।

इस प्रकार पूर्णतया प्रकृतिकी ओर लौटनेसे हमारी जीवन-शक्ति प्रचंडरूपसे उद्दीप्त हो उठती है और वह अपनी पूरी शक्तिके साथ शरीरसे विजातीय द्रव्य निकालनेमें लग जाती है जिसकी प्रक्रियास्वरूप सारे शरीरमें ऐंठन-सी होती है, कभी-कभी

हल्का या तेज दर्द भी होने लगता है (फोड़े भी हो जा सकते हैं), पर साथ-साथ शरीरके अंदरकी बढ़ती हुई गरमी, जो सभी कष्ट-कर, उत्तेजक और थकानेवाले तीव्र रोगोंका कारण होती हैं, तुरंत कम हो जाती है और धीरे-धीरे चली जाती है। इसकी वजहसे तीव्र ज्वर और साधारणतया जुकाम या कोई भी तीव्र रोग नहीं होने पाता। साधारण जीवनमें भी मनुष्य जितना ही अधिक ठंडे जल, ठंडी हवाके संपर्कमें अपने शरीरको रखता एवं उसपर मोटे कपड़े और भारी जूते नहीं लादता तथा जितनी ही दृढ़तापूर्वक वह प्रकृतिमें अपने विश्वासको बनाये रखता है उसे उतना ही मामूली और निरापद स्वास्थ्यकारक उभार होता है और यदि हल्का जुकाम-सा कोई उभार हुआ ही तो वह आसानीसे चला भी जाता है; पर जब प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते कुछ दिन हो जाते हैं तब तो इस प्रकारके उभार आनेकी संभावना नहीं रह जाती।

यह सभी जानते हैं कि जो सर्दीसे नहीं डरते या जिनके पास सर्दीसे बचनेके लिए काफी कपड़ा और जूता वगैरह खरीदनेको पैसा नहीं है उन्हें या तो तीव्र रोग होते ही नहीं या बहुत कम होते हैं।

क्या ठंडकके बारेमें मेरे विस्तारपूर्वक लिखे हुए विचारोंको पढ़कर आपके मस्तिष्कसे सर्दीका भय निकल जानेकी आशा की जा सकती है? नहीं, मैं इतना मूर्ख नहीं हूं कि यह सोचूं भी कि सर्दीके भयानक किलेको मेरे विचारोंसे जरा भी ठेस लगी होगी। चाहे जितने प्रमाण उपस्थित किए जानेपर भी, कुछ लोगोंको भयरहित होकर मौजसे हवा और ठंडकके झोंके नंगे बदनपर सहते एवं गीली धरतीपर नंगे पांव चलते दिखाई

देनेपर भी लोग तरह-तरहकी आपत्तियां पेश करेंगे, कहेंगे, अरे वह तो अभी जवान है, उसका शरीर सहनशील बन गया है, उसकी काठी मजबूत है इसलिए वह यह सब कर सकता है पर मेरे लिए यह कैसे संभव है ? इन बहानोंकी फौजके बलपर ही सर्दी अपने भयके गढ़की रक्षा करती है।

यदि डाक्टर अनेक रोगोंसे पीड़ित भी हो तो भी लोग उसके पास जाते हैं और इस विश्वासके साथ जाते हैं कि वह हमें रोगमुक्त कर देगा। जो दवा दवा-फरोशके यहांसे आती है यदि वह जहर भी हो अतः स्वास्थ्यको नुकसान पहुंचानेवाली एवं नष्ट करनेवाली हो और दवा बनानेवालोंकी जरा-सी गलतीसे जान लेनेवाली साबित हो तो भी हम आंख मूंदकर उसका विश्वास करते हैं। जब डाक्टर इन खतरनाक दवाओंके नाम सादे कागजपर लैटिन भाषामें, जिसे हम समझ नहीं पाते, लिखकर देता है तो उनपर हमारा विश्वास और भी बढ़ जाता है।

पर प्रकृतिसे लोग डरते हैं। और उस प्रकृतिपर विश्वास नहीं करते कि जिसकी चिकित्साके साधन जल, प्रकाश, वायु, गरमी, सर्दी हैं, जिनसे संसार बना है एवं चलता है और जो प्रकृति सारे प्राणियोंका भला चाहती है। जबतक मनुष्य प्रकृति-पथसे नहीं हटा, वह प्रकृतिकी गोदमें खुशी-खुशी खेलता रहा और प्रकृति अपनी इच्छा उसे साफ-साफ बताती रही। डाक्टर यही कोशिश करते हैं कि लोग प्रकृतिके प्रति अपना यह अविश्वास बनाए रहें।

विश्वकी उत्पत्ति शाश्वत प्रेमके भंडारसे हुई है, इस भंडारसे शुभके अतिरिक्त क्या कभी कोई अशुभ या बुरी चीज प्रकट

हो सकती थी ? इसलिए प्रकृतिमें जलकी एक बूंद भी ऐसी नहीं है, कोमलतम वायुका मंदतम झोंका भी ऐसा नहीं है और न सर्दीका एक लघुतम अंश ही ऐसा है जिसका निर्माण देह-धारियोंके कल्याण और सुखकी दृष्टिसे न किया गया हो।

जब मनुष्य प्रकृतिसे विमुख हो गया तब अपने कष्टोंका कारण अपनेमें न खोजकर अपनेसे वाहर प्रकृतिमें खोजने लगा। यह उसके नए आचरणके अनुरूप ही कहा जायगा। अब उसने प्रकृतिको खतरोंसे भरी हुई, निर्दय और कठोर माना जिसके परिणामस्वरूप वह प्रकृतिका अविश्वास करने लगा। जिसका आगे चलकर यह फल हुआ कि प्रकृति और उसके कार्योंका वह गलत अर्थ लगाने लगा और फलस्वरूप वह प्रकृतिके साधनोंका दुरुपयोग करके अपने लिए कष्ट और दुःख मोल लेने लगा। अनेक खतरनाक काम प्रकृतिको गलत समझनेके कारण ही किए जाते हैं।

प्रायः एक सदीसे ज्यादा हो गया कि डाक्टरोंने जलका उपयोग उसकी स्वाभाविक अवस्थामें, अथवा उस अवस्थामें जिसमें कि अपनी नैसर्गिक बुद्धिकी सुननेवाले पशु काममें लाते हैं, रोगियोंकी चिकित्सामें इस्तेमाल करनेसे इनकार कर दिया है। चाहे फोड़ा सड़ जाय और रोगी मर जाय फिर भी वे फोड़ेको धोनेके लिए गरम पानीका ही उपयोग करेंगे।

वहुत दिन नहीं हुए कि किसी भी ऐसे रोगीको जिसे जोरोंका ज्वर चढ़ा हो, चाहे वह अत्यधिक प्यासकी पीड़ासे परेशान हो एवं भीतरकी गरमीसे जला जा रहा हो चिकित्सक पीनेको ठंडा पानी नहीं देते थे। किसीको भी यदि उसका शरीर किसी कारणसे गरम हो गया है तो किसी रूपमें भी ठंडा पानी

पीनेकी इजाजत उसे नहीं थी। सिपाहियोंको मार्च करते समय ठंडा पानी पी लेनेपर सख्त सजा दी जाती थी। यदि सिपाही प्यासके मारे थककर गिर जाय तो भी इसकी परवा नहीं की जाती थी। वदनके गरम हो जाने या रहनेपर ठंडे पानीसे नहाना वहुत खतरनाक समझा जाता था।

पर आज अवस्था वदल गई है। आज यदि किसीके घाव हो जाता है या कोई अंग कट जाता है तो पहले ठंडे पानीका ही उपयोग होता है; ज्वरके रोगीका कष्ट कम करनेके लिए उसे खुशी-खुशी ठंडा पानी पिलाया जाता है; मार्च करते समय सिपाहीको केवल ऐसी जगहोंको छोड़कर जहांके लोग कीटाणुओंसे नहीं डर गए हैं—यही तो लोगोंके लिए आज हौवा वना हुआ है—ताजगी लानेके लिए ठंडा पानी पिलाया जाता है।

यह सप्रमाण सिद्ध हो चुका है कि स्नान करते समय शरीरको जव पहले पानी छूता है उस समय शरीर जितना ही अधिक गरम होता है स्नानसे लाभ उतना ही अधिक मिलता है। अव लोग वाष्पस्नानके वाद वदनसे जव पसीना जोरोंसे चूता रहता है तुरंत ठंडे पानीसे नहाते हैं।

आज इसके स्पष्ट चिह्न दिखाई दे रहे हैं कि लोग प्रकृतिकी ओर लौटना चाहते हैं पर ठंडी हवाके वजाय लोग पहले ठंडे पानीकी ओर आकर्षित हो रहे हैं। आज जगह-जगह ठंडे पानीसे चिकित्सा करनेवाले जल-चिकित्सालय खुल गए हैं और रोगी वहुतायतसे वहां चिकित्साके लिए पहुंचने लगे हैं।

प्रकृति निस्संदेह वहुत दयालु है, यदि कोई उसकी तरफ एक कदम भी वढ़ता है तो वह उसे अपने हृदयसे लगानेको हाथ फैलाकर दौड़ती है और हमारी भलाईके लिए अपना

वरदहस्त सदा आगे बढ़ाए रहती है। यद्यपि ठंडे पानीका उपयोग आज उस पूर्ण विधिसे नहीं होता जैसा कि प्रकृति चाहती है फिर भी लोग यह जान गए हैं कि ठंडे जलमें रोग-निवारणका गुण अत्यधिक मात्रामें मौजूद है। यदि इस ठंडे पानीके द्वारा प्राप्त सफलताकी तुलना औषधोपचारद्वारा प्राप्त सफलताओं या यों कहिए कि असफलताओंसे की जाय तो निश्चय ही वह मानव-जातिको विस्मित कर देनेवाली होगी। किंतु ठंडे पानीका उपयोग एक बारमें केवल कुछ ही देरतक और सीमित रूपमें ही किया जा सकता है।

पर शुद्ध ताजी हवा मनुष्यका प्राण है। त्वचा एवं फेफड़ों-द्वारा जिस अनुपातमें शुद्ध वायु मनुष्यको मिलती है ठीक उसी अनुपातमें उसका शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य घटता-बढ़ता है।

यदि हम केवल एक क्षणके लिए भी मनुष्यको वायुसे वंचित कर दें तो उसके जीवनका तत्काल अंत हो जायगा। यदि हम उसका नाक और मुंह खुला रखकर उसके शरीरपर किसी ऐसे पदार्थका लेप कर दें कि वह त्वचाद्वारा सांस न ले सके तो कुछ ही घंटोंमें उसकी मृत्यु हो जायगी।

जलके विपरीत वायुमें रोगी हमेशा रह और घूम सकता है और इच्छा होनेपर समय-समयपर वह अपने कपड़े भी उतार दे सकता है। भोजनको, जिससे मनुष्यका सारा शरीर और स्नायु बने हैं, प्राकृतिक कर देनेसे शरीरमें विजातीय द्रव्य एवं रोगका बढ़ना तुरंत रुक जाता है। यदि स्वास्थ्यको बनाये रखने एवं रोगोंको दूर करनेके लिए वायु, ठंडक, धरतीकी शक्ति एवं प्राकृतिक भोजनका—इस भोजनकी आजके शाकाहारी

भोजनसे कोई तुलना नहीं है—उपयोग किया जाय तो उससे प्राप्त सफलताके सामने शीतल जलद्वारा प्राप्त सारी शानदार सफलता मात हो जायगी। पर वह प्रयोग अनिवार्यतः मेरी बताई विधिके अनुसार, जिसका वर्णन मैं कर चुका हूं और आगे चलकर और करूंगा, होना चाहिए।

जलका प्रयोग यदि गलत तरीकेसे और देरतक किया जाय तो हानि हो सकती है पर वायुसे किसी हालतमें भी कोई नुकसान नहीं होता, उसका प्रयोग सदा लाभकर ही होता है। लेकिन तब भी लोग वायुको अविश्वासकी दृष्टिसे ही देखते हैं। आज जब हमारा शरीर विशेष रूपसे गरम रहता है या जब हमारे शरीरसे गरमीके मारे पसीना बहता रहता है उस समय भी हम ठंडे पानीसे स्नान करते नहीं हिचकते, ज्वरके रोगियोंको भी ठंडे पानीमें सुला दिया जाता है पर क्या कोई यात्री, जो तेज रफ्तारसे चलनेके कारण पसीने-पसीने हो गया है, किसी खुले स्थानमें या किसी शिलाखंडपर बैठकर अर्धनग्नावस्थामें (नंगी छाती, नंगे पांव और नंगे सिर) या बिलकुल नंगे होकर अपने शरीरपर तेजीसे आती हुई ठंडी हवा केवल कुछ समयके लिए लगने दे सकता है? डिप्थीरिया या चेचकसे पीड़ित किसी बालकको या निमोनिया या मियादी बुखारके तीव्र ज्वरसे पीड़ित किसी बड़ेको, जो गरमीके मारे छटपटा रहा हो, और मोटे भारी ओढ़नेको फेंक देना चाहता हो, जाड़ेके दिनोंमें खिड़की खुले ठंडे कमरेमें या खुले मैदानमें बिलकुल नंगा ले जानेका कोई साहस करेगा?

ऐसे रोगीको आज कौन दुर्गंधभरी भारी, जहरीली हवाभरे कमरेमें और ठंडकके दिनोंमें भी बाहर ले जाकर बाग

या वनमें बनी वायु और प्रकाशवाली झोंपड़ीमें सुलाएगा या यदि बहुत ठंडक नहीं हुई तो उसे नंगे ही साफ समतल भूमिपर लेटने या सोने देगा ?

केवल ऐसा करनेके खयालसे ही, औरोंकी कौन कहे हमारे आजके प्राकृतिक चिकित्सक और उनके अनुगामियोंका दिल दहल उठेगा और वे भयके मारे कांप उठेंगे। और जो खुल्लम-खुल्ला ऐसा करनेको कहेगा लोग उसे सीधे-सीधे पागल करार दे देंगे। सदियों पहले पुराने जमानेमें जैसा कानून था वैसा यदि आज होता तो मेरे-ऐसे लोग जेलखाने या पागलखानेकी हवा खाते होते। और जिस प्रकार गैलीलियोपर यह कहनेके लिए कि 'सूर्य पृथ्वीके चारों ओर नहीं पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है' मुकदमा चलाया गया था उसी प्रकार मुझपर आजके वैज्ञानिक मुकदमा चलाते।

जो भी हो, यह तो सही ही है कि ठंडी वायु भी ठंडे पानीकी भांति ही गरम शरीरपर लगनेपर उसे चैतन्यता एवं शक्ति प्रदान करती है। गरम दिनके बाद शीतल रात्रिका आगमन होता है, गरमीके मौसमके वाद जाड़ेका मौसम आता है— गरमी और ठंडकके इन परिवर्तनोंके पीछे प्रकृतिके महान उद्देश्य छिपे हुए हैं। किसी भी खुली जगहमें, बागमें या अच्छा हो कि किसी जंगलमें, रोगीको ले जानेपर उसे शुद्ध ताजी हवा मिलेगी, शीतल समीर उसके खुले वदनपर लगेगा, धरती उसके तापको एवं रोगको हरेगी, तीव्र रोगका रोगी शीघ्रतासे स्वस्थ होगा एवं जीर्ण रोगके रोगीकी जंगली प्रकृति स्वयं पकड़कर उसे फूलोंभरे रास्तेसे सुख और आनंदके अप्रत्याशित संसारमें ले जायगी।

यदि हम पानी, प्रकाश, वायु और धरतीकी शक्तिके उस तरहके उपयोगकी, जैसा कि मैं रोगियोंके रोगनिवारणार्थ करता हूं, केवल बात भी करें तो लोग मारे डरके उसे अनाड़ी चिकित्सक कह उठेंगे, जिसका तात्पर्य यह होता है कि प्राकृतिक चिकित्सा बड़ी कष्टसाध्य एवं खतरनाक चिकित्सा है जिसके द्वारा कुछ ही लोग इसके खतरेके बावजूद भी आकस्मिक रूपसे अच्छे हो सकते हैं वरना अधिकतर लोगोंको तो इसमें मरना ही होता है।

असलमें तो जल, प्रकाश, वायुसे बेचारे कमजोर रोगीको वंचित रखना और मीठी, कड़वी और जहरीली दवा देना ही लापरवाही, क्रूरता, कठोरता एवं मूर्खताकी चरम सीमा है।

प्रकृतिके हाथों सौंपनेसे अधिक मृदुताका व्यवहार रोगीके साथ और क्या किया जा सकता है? प्रकृतिकी चिकित्सासे अधिक शीघ्रतासे रोगीको कौन स्वास्थ्य प्रदान कर सकता है?

प्रकृतिकी शरणमें रहनेवाले रोगीके कष्ट शीघ्रतासे दूर होते हैं, उसकी चिंता चली जाती है और उसे नवजीवन एवं नवप्रसन्नता प्राप्त होती है। यदि रोगोंका उपचार जल, प्रकाश, वायु, ठंडक एवं धरतीकी शक्तिसे किया जाय तो निश्चय ही आजसे बहुत कम लड़के निराश माताके हृदयसे एवं भग्नहृदय पिताके हाथोंसे छिनकर ठंडी कब्रमें सोयेंगे, दुःख और अभावमें लिपटी विधवाएं और बच्चे भी कम दिखाई देंगे तथा लुटे हुए-से शोकमय जीवन बितानेवाले पुरुषोंकी भी संख्या कम हो जायगी।

मैं इसका पूरा अंदाज नहीं कर पा रहा हूं कि यदि हम अपनेको वायु और धरतीको पूरी तौरसे सौंप दें तथा प्राकृतिक

भोजन[1] ग्रहण करना आरंभ कर दें तो दुनियासे दुःख और अभाव, कष्ट और निराशा कितनी कम हो जायगी।

पर आज भी मां बड़े प्रेमसे अपने बच्चेको मोटे-मोटे कपड़े पहनाती है, पैरोंमें मोजे, सिरपर कंटोप और गलेमें गुलूबंद बांधती है तथा अपने पतिको हमेशा कोई-न-कोई कपड़ा बच्चेके लिए लानेको कहती रहती है। यदि बाहर ठंडी तीखी वायु लोगोंको अपनी ठंडकसे ताजगी एवं शक्ति प्रदान करनेका न्यौता देती हुई बहने लगती है तो मां बड़े यत्नसे बच्चोंको भारी वायुसे भरे कमरेके अंदर ही रखती है। उसे ठंडकका डर एक क्षणके लिए भी चैन नहीं लेने देता। इस प्रकार अपने बच्चेके स्वास्थ्य और कुशलताके बारेमें व्यर्थमें चिंतित होकर वह अनजानमें अपने हाथों उसकी कब्र खोदती है।

गलत भोजनके कारण शरीरमें रोगकारक द्रव्य अधिकाधिक इकट्ठा होता है और प्रकृतिको वायु और धरतीकी शक्तिद्वारा शरीरकी जीवनशक्तिको उत्तेजित करके इस विजातीय द्रव्यको निकालनेका मौका नहीं दिया जाता। यदि प्रकृति किसी प्रकार कोई मौका ढूंढ़ निकालती है तो डाक्टर अपनी जहरीली शीशियां लिए प्रकृतिके इस प्रयासको दवा देनेके लिए तैयार मिलता है। तब कफनसे लिपटा हुआ शरीर घरसे निकलता है। ओह! इस शरीरसे लोगोंको कितनी आशा

---

[1] यदि भोजनमें परिवर्तन किए बिना भी वायु, प्रकाश, धरतीकी शक्ति और प्राकृतिक स्नानका अथवा केवल वायु और प्रकाशका सहारा लिया जाय तो मनुष्यके स्वास्थ्य और सुखमें अभूतपूर्व उन्नति होती है। पर यदि साथ-साथ प्राकृतिक भोजनका, जिसके बारेमें आगे बताऊंगा उपयोग किया जाय तो यह उन्नति बहुत अधिक बढ़ जाती है।

थी, लोग इसे कितना प्यार करते थे; मृत्युने इन सबपर पानी फेर दिया ! मृत्यु प्राकृतिक है, इसमें कुछ भी बुराई या भद्दापन नहीं है पर लोग मृतकके पीछे बुरी तरह रोते चलते हैं। श्मशानमें ऐसा आर्तनाद होता है कि जिसे सुनकर आदमी भयभीत हो उठता है, उसपर मुर्दनी छाने लगती है और लगता है उससे कोई बड़ा पाप हो गया है। मनुष्यके अज्ञानने क्रूरता-पूर्वक फिर एक हत्या कर दी ! पर चिताके बुझनेके पहले ही चारों ओरसे यह आवाज सुनाई दे जाती है कि "जो ईश्वर करता है वह अच्छेके लिए ही करता है।"[1]

खैर, हम लोगोंने ठंडे पानीका उपयोग आरंभ कर दिया है और वह दिन शीघ्र ही आनेवाला है जब हम लोग वायु, धरती और सही प्राकृतिक भोजनपर अपनी आस्था जमाएंगे। जलसे अधिक ये हमारे विश्वासके अधिकारी हैं।

तब मनुष्यको नया स्वास्थ्य प्राप्त होगा, उसके जीवनमें सच्चे आनंदका प्रवेश होगा, जवानीकी ताजगी उसके बुढ़ापेतक बनी रहेगी और वह हर प्रकारसे सुखका अधिकारी होगा। तब रोग और शोक, दुःख और कष्ट, अभाव और निराशा उसके पथसे अलग रहेंगे और मृत्यु स्वच्छ आकाशसे बिजलीकी भांति अप्रत्याशितरूपसे गिरकर उसके बागकी नवकलियोंको नष्टकर उसके संसारसे आनंद और प्रसन्नताको अंतर्हित नहीं कर सकेगी।

---

[1]यह समझना कि ईश्वर जिसे प्यार करता है उसके लिए रोग और कष्ट भेजता है बहुत बड़ी और दुःखद भूल है। यह ईश्वरके प्यार और बुद्धिमत्ताका मजाक उड़ाना है। सारे दुःख और कष्ट प्रकृति-पथसे हटने और अपने जीवनको प्राकृतिक नियमोंके विरुद्ध चलानेके अपराधका आवश्यक फल और दंड हैं।

मिट्टी

बाइबिलमें लिखा है, "खुदाने धरतीकी धूलसे आदमीका पुतला बनाया, उसके नथनोंमें प्राण फूंके और वह सजीव प्राणी हो गया।"

तो आदमी मिट्टीका ही बना।

घाव और हर प्रकारके चर्मरोगके लिए गीली मिट्टी असली प्राकृतिक मरहम है। मिट्टीके बने शरीरकी क्षतिकी पूर्ति मिट्टीसे ही हो जाती है।

मैंने कई बार यात्रियोंसे सुना है कि वहशी घावों और त्वचाके रोगपर गीली मिट्टीका प्रयोग बराबर करते हैं और शीघ्र रोगसे मुक्ति पा लेते हैं।

पशु भी घावोंपर मिट्टीका ही प्रयोग करते हैं। हाथीके शरीरपर यदि डाली वगैरहकी रगड़से कभी घाव हो जाता है तो वह तुरत अपनी लारसे मिट्टी गीली करता है और उसे सानकर मुलायम हलुए-सी बनाकर घावपर थोप देता है।

पशुओंके रोगोंमें गीली मिट्टीका प्रयोग बराबर होता है। गाय-बैलके खुर पकनेपर उनपर लोग गीली मिट्टी बांधते या उन्हें कीचड़में खड़ा रखते हैं। हम अब फिरसे जब प्रकृतिके नियमोंके अनुसार रहने लगेंगे, प्रकृतिकी आवाजपर कान देने लगेंगे, तब हमें गीली मिट्टीको अपनाना ही होगा। यदि हमने इसे अपना लिया तो समझ लीजिए हमने एक बड़ी सिद्धि प्राप्त कर ली।

मिट्टीका प्रयोग करनेवालेको किसी प्रकारके घाव, उसके प्रदाह, सूजन तथा ज्वरसे कभी कोई खतरा नहीं हुआ, न उसके

डरसे वे आतंकित ही होते हैं। यदि मिट्टीका प्रयोग किया जाय तो चीरफाड़की जरूरत ही न रहे, न उनसे किसीको कष्ट ही उठाना पड़े। हर प्रकारके घाव और चर्मरोग मिट्टीके प्रयोगसे कम-से-कम समयमें बिना किसी कष्ट अथवा दर्दके अच्छे होते हैं। सर्वथा प्राकृतिक गीली मिट्टीकी पुलटिसके गुण अनंत हैं। घाव, फोड़े-फुंसी और चर्मरोग तो इसके प्रयोगसे यों ही अच्छे हो जाते हैं। युद्धमें भी मिट्टीकी पुलटिस विशेष उपयोगी हो सकती है।

शरीरपर किसी तरहकी चोट लग जाय, घाव हो जाय, कट जाय, वर्छी-भालेसे लग जाय, जल जाय, गोली वगैरा लग जाय, सारा शरीर फूल जाय, फोड़े-फुंसी, दाद, खाज, उकवत हो जाय, सूजन आ जाय, विच्छू-वर्रे या सांप डस ले, जानवर काट खाय, रक्तमें जहर फैल जाय, घाव दूषित हो जाय, नाक-मुंहपर फफोले पड़ जाएं, सेहुंआ हो जाय, सिरमें रूसी पड़ जाय, कोढ़ हो जाय, हड्डी टूट जाय, तो रोगके स्थानपर मिट्टीको गीली करके या नदी-नालेकी गीली चिकनी मिट्टी वांधनी चाहिए।

मिट्टी बांधते ही शीतलता आती है, आरामका अनुभव होता है और लाभ तत्काल होता है जिसे देखकर लोगोंको वड़ा आश्चर्य होता है। मिट्टीकी महिमा ऐसी ही है, पर कितने लोग हैं जो इस महिमासे परिचित हैं ?

मिट्टीकी पुलटिसके लिए जिसे मिट्टीकी पट्टी भी कह सकते हैं, गीली-से-गीली मिट्टी (नदी-नालेका कीचड़) लेनी चाहिए और उसे सीधे घावपर (गहरा हो तो घावके अंदर भी) रखना चाहिए, फिर ऊपरसे कपड़ा वांध देना चाहिए कि मिट्टी इधर-उधर न सरके। घावपर कपड़ा रखनेके वाद उसपर मिट्टी

रखकर घाव और मिट्टीका सीधा संबंध होनेसे बचानेकी कोशिश कभी न करनी चाहिए।

लोगोंको मिट्टीका यह प्रयोग आवश्यकतासे अधिक सीधा और सरल प्रतीत होता है। उनका चिंतित, अस्थिर मस्तिष्क बड़े-बड़े वैज्ञानिक अनुसंधानोंके बलपर जटिल मशीनोंकी सहायतासे शमनात्मक मरहम बनानेकी कोशिश करता है।

मिट्टीकी साधारण पुलटिस आदमीको बिना किसी खतरेमें डाले घावको भर देती है, बड़ी आसानीसे अच्छा कर देती है। मरहम अकसर बहुत हानि पहुंचाते हैं। मिट्टीके प्रयोगसे कई लोग इसलिए डरते हैं कि कहीं मिट्टी गंदी हुई तो खूनमें विष न पहुंच जाय। पर जहां कूड़ा-करकट फेंका जाता हो या गंदगी गाड़ी जाती हो वहांकी मिट्टी कोई लगावेगा ही क्यों?

शराब, मांस आदि अनेक अप्राकृतिक खाद्योंद्वारा शरीरमें पहुंचनेवाली गंदगीके बारेमें, जिसके कारण अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और जो घावोंको खतरनाक बना देती है, आज कोई नहीं सोचता। शरीरमें भरे विषसे कोई नहीं डरता, लोग डरते हैं उन विषोंसे जो बाहरसे शरीरमें अनजानसे पहुंच सकते हैं, गोकि इनसे डरनेकी जरा भी जरूरत नहीं है। मिट्टीद्वारा शरीरमें विष पहुंचनेकी तो जरा भी आशंका नहीं है।

घावपरसे मिट्टीकी पट्टी जब हटाई जाती है तो अकसर उसके साथ बदबूदार तरल पदार्थ निकलता है। मिट्टी इसे घावके चारों तरफसे खींचकर निकाल लाती है। इससे यह आसानीसे समझा जा सकता है कि मिट्टी घावको और उसके चारों ओरकी जगहको दूषित पदार्थसे मुक्त रखती है और इसीलिए मिट्टीके प्रयोगसे घाव शीघ्र और आसानीसे अच्छे होते हैं।

घावमें मिट्टीद्वारा विष पहुंचनेका कोई डर नहीं है। यदि मिट्टीद्वारा कुछ गंदगी घावमें पहुंच जायगी तो मिट्टी उस गंदगीको तुरंत सोखकर नष्ट कर देगी।

कुछ लोग मिट्टीमें खाद-गोबर मिले होनेकी शंका करते हैं, पर यह तो सभी जानते हैं कि देहाती घावपर सीधे गोबर रख देते हैं। उनका घाव बिना विषाक्त हुए ठीक हो जाता है, इसलिए यदि मिट्टीकी पुलटिसमें गोबर हो भी तो किसी प्रकार डरनेकी जरूरत नहीं है।

रोगोंके कीटाणु पृथ्वीपर भरे पड़े हैं, आजके विज्ञानके इस कथनपर जरा भी ठंडे दिलसे विचार किए बगैर लोग इतने घबरा गए हैं कि गीली मिट्टीके प्रयोगकी बात करना ही एक साहसका काम हो गया है। इसके प्रचारपर पुलिस रोक लगा सकती है, पर हमें इन पक्षपातपूर्ण रूढ़िवादी विचारोंसे डरनेकी जरूरत नहीं है।

यह कहनेकी जरूरत नहीं कि मैंने अनगिनत बार मिट्टीका प्रयोग किया है और प्रत्येक बार फल आशातीत हुआ है। नुकसान तो कभी किसीको पहुंचा ही नहीं; न एकका भी रक्त विषाक्त हुआ।

वहशी और पशु अपनी नैसर्गिक वृत्तिद्वारा प्रेरित होकर अपने घावोंपर मिट्टीका प्रयोग कर उन्हें अच्छा कर लेते हैं। नैसर्गिक वृत्ति किसीको कुराह नहीं ले जा सकती। हम बिना किसी संशयके इसके इशारेपर चल सकते हैं, हमें कभी कोई हानि नहीं होगी।

यदि घाव बड़ा हो तो हर प्रकारसे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेकी (मांस,मदिरा, बीड़ी, सिगरेट आदि छोड़नेकी) आवश्यकता होती है, यह प्रयोगद्वारा सिद्ध हो चुका है।

मिट्टीकी पुलटिस और इसके अनेक प्रकारके प्रयोगोंके बारेमें कहना अभी थोड़ा बाकी रह गया है।

मैं यह पहले ही बता चुका हूं कि मिट्टीमें घुलाने और चूसनेकी शक्ति है। वह विजातीय द्रव्यको घुलाकर चूस लेती है।

यह बराबर देखा गया है कि लोग बिना पहलेकी जानकारीके डंक मारनेपर या सांपके डस लेनेपर नैसर्गिक वृत्तिद्वारा प्रेरित होकर मिट्टीका प्रयोग करते हैं।

एक बार जब ईसामसीह कहीं जा रहे थे तो उन्होंने रास्तेमें एक आदमीको देखा जो जन्मसे अंधा था।

जब उन्हें उसके बारेमें ज्ञात हुआ तो उन्होंने जमीनपर थूक-कर मिट्टी सानी और अंधेकी आंखोंपर लगा दी।

और कहा, "सैलम तालावपर जा और अपनी आंखें धो।" यह सुनकर वह गया, आंखें धोईं और देखता वापस लौटा।

धरतीमें जो आश्चर्यकारी रोगनाशक गुण हैं उनके कारण मिट्टीकी पुलटिसको भी विशेष स्थान प्राप्त हो गया। मिट्टीके प्रयोगसे कितने स्थानीय रोग इस प्रकार चले जाते हैं जैसे उनपर जादू कर दिया हो। यह प्रकृतिकी ही शक्ति है जिससे ये आश्चर्य-जनक कार्य संपन्न होते हैं।

कोई किसी भी रोगका रोगी क्यों न हो, सामान्यतया उसके सारे शरीरकी चिकित्सा जल, प्रकाश, वायु तथा प्राकृतिक भोजन-द्वारा होनी अत्यंतावश्यक है। इसी एक उपायद्वारा स्थायी स्वास्थ्यकी प्राप्ति होगी। पर स्थानीय चिकित्साके भी बहुतसे लाभ हैं। यदि तुरंत लाभ प्राप्त करना हो तो रोगी अंगकी चिकित्सा कभी-कभी अत्यंतावश्यक हो जाती है, और इसके लिए वस्तुतः प्राकृतिक साधन मिट्टीसे बढ़कर दूसरा ज्यादा पुरअसर उपाय नहीं है।

अवतक ऐसे अवसरपर जलका प्रयोग होता आया है। रोग-स्थित स्थानपर लोग भीगे कपड़ेकी पट्टी वांधकर गरमी लानेके लिए ऊपरसे ऊनी कपड़ा वांधते हैं। पर मिट्टीकी पुलटिस अधिक प्राकृतिक है और अधिक लाभदायक भी; क्योंकि मिट्टी पानी ज्यादा सोखती भी है और जल्द सूखती भी नहीं। इसके अलावा घुलाने और जज्ब करनेका मिट्टीमें अपना निजी गुण भी है।

प्रिसनीज साहव[1]के वताये पेड़ूपर गीले कपड़ेकी पट्टी वांधने और भी जितने प्रकारके गीली पट्टीके प्रयोग हैं, मिट्टीकी पुल-टिसके प्रयोगकी तुलनामें नगण्य हैं और वह दिन दूर नहीं है जव लोग उनके वजाय मिट्टीकी पट्टीका ही उपयोग करेंगे।

मिट्टीकी पट्टी भी प्रिसनीज साहवकी वताई पट्टियोंकी तरह ही वांधी जाती है। अंतर केवल यह है कि जलकी जगह गीली पट्टीका प्रयोग होता है। जहांतक वन सके मिट्टीको ढीली वनानी चाहिए पर इतनी ढीली नहीं कि रखनेपर वहने लगे।

मिट्टीकी पट्टी वनानेके लिए गीली मिट्टी या नदी-नालेकी कीचड़ लेकर छाती, आंख, गलेके चारों ओर और गरदन, गाल, पैर, पिंडली, पंजे, हाथ, जननेंद्रिय, मूत्राशय, तिल्ली और जिगरके स्थान, रीढ़की हड्डी आदि जहां भी रोग हो फैला देनी चाहिए और फिर उसपर कोई ऊनी या सूती मोटा कपड़ा रखकर वांध देना चाहिए ताकि मिट्टी अपने स्थानपर वनी रहे। ऊपरवाले कपड़ेके एक सिरेपर एक डोरी लगी रहे तो वांधनेमें सहूलियत होगी।

जरा सोचने-समझनेवाला कोई भी आदमी आसानीसे जान

---

[1]प्रिसनीज साहव जस्टके पहले हुए थे। ये रोगोंको मिटानेके लिए पानीका प्रयोग भीगी पट्टियोंके रूपमें करते थे।—अनुवादक

लेगा कि किसी विशेष स्थानपर मिट्टीकी पुलटिस कैसे बांधी जा सकती है। समझना केवल यही रहता है कि गीली मिट्टी अपने स्थानपर कैसे टिकी रक्खी जा सकेगी।

बांधनेकी पट्टी सूती या ऊनी कोई भी हो सकती है। पानी-की पट्टी या गद्दीमें ऊपरसे ऊनी पट्टी बांधनेकी जैसी जरूरत होती है वह मिट्टीकी पट्टीमें नहीं, क्योंकि मिट्टी अपने आप गरम हो जाती है। पर जो रोगी कमजोर हों, जिनके शरीरमें गर्मी कम हो, उनके लिए ऊनी पट्टीका प्रयोग बहुत अच्छा है।

मिट्टीकी पुलटिस वह बनी-बनाई दवा है जिसका कोई भी रोग क्यों न हो, किसी तरहका दर्द क्यों न हो तुरंत उपयोग कर सकते हैं। सदा अभीष्ट फल प्राप्त होगा। कितने ही रोगोंमें तत्क्षण आराम पहुंचेगा। रोग कड़ा हो तो मिट्टीकी पुलटिस देरतक रक्खे रहना चाहिए। सर्वरोगहारी मिट्टी रोगोंकी एक ही ओषधि है।

रोग शरीरके बाहर हो या भीतर, मिट्टीकी पट्टी गरमीको खींचती है। यदि रोग छातीपर है तो मिट्टीकी पट्टी छातीपर, मूत्राशय और तिल्लीके रोगोंमें इनके स्थानमें पेटके ऊपर, डिप्थी-रियाके रोगमें गलेके चारों ओर तथा और भी रोगोंमें इसी तरह रखनी चाहिए।

सभीं रोग पेटकी गड़बड़ीके कारण पैदा होते हैं, अतः पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी रखना सभी रोगोंमें लाभदायक साबित होगा। ऐसे रोगोंमें जिनमें कोई खास स्थान ग्रसित नहीं होता—जैसे स्नायु-दौर्बल्य, शोकातुर होना, आदि रोग जो सारे शरीरके रोग कहे जा सकते हैं—पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी रखना लाभकारी है।

पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे ज्वर तुरंत कम होता है। अतः इसका उपयोग मियादी बुखार, लाल बुखार, मोतीझरा,

कफज्वर आदि-से नये रोगोंमें और किसी भी कारणसे गिरे स्वास्थ्यमें अवश्य करना चाहिए।

मिट्टीकी पट्टी पेड़पर घंटोंतक पड़ी रह सकती है, अतः यह कटिस्नानकी वनिस्वत, जो एक वारमें केवल कुछ मिनटोंके लिए ही लिया जाता है, पेटसे ज्यादा गरमी खींचती है। पर क्योंकि मिट्टीकी पट्टीके वाद पेड़ूको साफ करनेके लिए उसे धोना ही पड़ता है, अतः मिट्टीकी पट्टीके वाद वहुत थोड़े समयका एक कटिस्नान हमेशा ले लेना चाहिए। नहान यदि नहीं लिया जाय तो भी कोई हरज नहीं है।

मिट्टीकी पट्टी उतारनेके वाद उसपर हाथ रखनेसे मालूम हो जायगा कि मिट्टीकी पट्टी पेड़ू या फोड़ेकी कितनी गरमी खींचती है।

सारे वदनमें धूप लेनी हो तो मिट्टी पोतनेके वाद धूपमें लेट-कर हम अपने वदनपर अहसान करेंगे। इस प्रकार शरीरमें धूप लगनेसे चमड़ी काली नहीं होगी, न जलेगी। धूप-नहान लेते वक्त यदि केवल मिट्टी मिला पानी ही शरीरपर चुपड़ लिया जाय तो वह जलनेसे वचेगा।

मिट्टीकी पट्टी आवश्यकतानुसार घंटों रखी रह सकती है और दिनमें कई वार वदली भी जा सकती है। रोग कड़ा हो तो पट्टी शुरूमें जल्दी-जल्दी वदलना चाहिए। सोते समय रातको मिट्टीकी पट्टी वांधी जा सकती है और तकलीफ न होती हो तो पट्टी रातभर वंधी रह सकती है। जव पट्टी वहुत गरम हो जाय तो उसे उतारकर दूसरी लगा देनी चाहिए।

जहां आदमी रहता है वहांकी मिट्टी जैसी भी हो वह मिट्टी-की पट्टी वनानेके लिए उपयोगी होती है। चिकनी मिट्टी

आसानीसे चिपकती है और इससे लाभ कुछ विशेष भी होता है। अगर मिले तो चिकनी मिट्टीका ही उपयोग करना चाहिए।

सूजन, फेफड़े, गले और कंठनलिका, आंख, नाकके रोग, गठिया, वात-रोग, रूसी, चर्मरोग, पेटके और जननेंद्रियसंबंधी रोग, मूत्राशय और यकृतसंबंधी रोग, नसोंकी पीड़ा, हर प्रकारके दर्द, सिरदर्द, दांतका दर्द आदि जैसे अनगिनत रोगोंमें, जो आये दिन होते रहते हैं, मिट्टीकी पट्टीका सहारा विश्वासपूर्वक लिया जा सकता है।

दर्दका तो मिट्टी निश्चय और निरापद इलाज है, क्योंकि दर्दके कारण विजातीय द्रव्यको मिट्टीकी पुलटिस खींच लेती है और दर्द हमेशाके लिए चला जाता है। फोड़े, फुंसी, सूजन वगैरह-के लिए जिन अप्राकृतिक ओषधियोंका उपयोग किया जाता है वे रोगको अच्छा करनेके साथ ही विषको शरीरके अंदर पहुंचाती हैं और इस प्रकार घातक सिद्ध होती हैं।

दर्द मिटानेवाली दवाका उपयोग कर दांतसाज दांतको ही खतम कर देता है। ऐसी दवाओंसे बचना चाहिए। अगर दांतका दर्द बिना दांत खोये (उखड़वाये) चला जाय तो फिर उस लाभका क्या कहना।

अगर एक बार मिट्टी रखनेसे दर्द न चला जाय तो उसे तब-तक बदलते रहना चाहिए जबतक इच्छित लाभ प्राप्त न हो जाय।

गरदनपर मिट्टीकी पट्टी बांधनेसे सिर-दर्दमें विशेष लाभ होता है।

बिजली गिर जानेपर या सांपका विष चढ़ जानेपर या किसी प्रकारके घातक रोगसे एकाएक आक्रांत हो जानेपर आदमियोंको सिर बाहर रखकर समूचा जमीनमें गाड़ दिया गया है। कभी-

कभी कोई खास अंग विशेष तौरपर हाथ-पांव ही गाड़े गये हैं। इससे रोगी जल्द अच्छा हो गया और बच गया है। आदमीको समूचा या उसका कोई विशेष अंग गाड़ते वक्त ऋतुकी उपयुक्ततापर ध्यान रखना चाहिए। हैजेके उग्र रोगी तथा मियादी बुखारके रोगीको गाड़ना श्रेष्ठतर साधन है। जिस मिट्टीमें रोगी गाड़ा जाय वह बहुत खुश्क न होनी चाहिए।

शरीरके जिस अंगकी चिकित्सा मिट्टीकी पुलटिससे की जाती है अथवा सारा शरीर या शरीरका जो अंग मिट्टीमें गाड़ा जाता है, उसे मिट्टी शक्तिशाली और तरोताजा बना देती है, यह देखकर मिट्टीका महान चिकित्सक गुण स्पष्ट हो जाता है। जिनकी किसी कारणवश एकाएक मृत्यु हो गई है वे मिट्टीमें गाड़ देनेसे पुनर्जीवित हो गये हैं।

सूर्यके प्रकाशमें शरीरको बालूमें गाड़नेकी भी सिफारिश की जा सकती है। सूर्य बालूको गरम कर देता है, अतः इस क्रियाका लाभ बढ़ जाता है।

हमेशा मिट्टीकी ठंढी पुलटिसका ही प्रयोग करना चाहिए, उसे अप्राकृतिक तरीकेसे आगपर कभी गरम न करना चाहिए। गरम पानी पीकर देखिए। तुरंत मालूम हो जायगा कि उसमें न तो ताजगी है न शक्तिप्रदायक गुण। इस तरह पुलटिसको जब आगपर गरम कर देते हैं तो पुलटिसमें लगा पानी और मिट्टी दोनोंकी रोगनाशक और शक्तिदायक शक्ति नष्ट हो जाती है। गुनगुने गरम या खूब गरम पानीके प्रयोगसे भी विजातीय द्रव्यको घुलाया जा सकता है और रोगसे कथित मुक्ति पाई जा सकती है। इस रीतिसे शरीर कमजोर हो जाता है और उसे बड़ी क्षति पहुंचती है। यहांतक कि हानिका पल्ला लाभसे बहुत ऊंचा पड़ता

है। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि हानिकी प्रतीति तुरंत नहीं होती, पर वह लंगड़ाती हुई धीरे-धीरे आती है और कुछ देर बाद पहुंच ही जाती है।

गरम पानी या गरम पुलटिसके प्रयोगके तुरंत बाद ठंढे जलके स्नान, फुहारे आदिका प्रयोगकर हम गरम प्रयोगसे हुई क्षतिको मिटा नहीं सकते।

इसी तरहकी हानि गरम वाष्पके स्नानसे भी होती है।

मिट्टी अथवा कीचड़ लगानेसे त्वचा बहुत अच्छी तरह साफ होती है। शरीरपर बराबर मिट्टी लगाकर रगड़कर धोते रहनेसे त्वचा स्वच्छ पूर्णतया होनेके साथ-साथ मुलायम और चिकनी हो जाती है।

इस विलक्षण ओषधि मिट्टीसे रोग जिस तरह आसानी और आरामसे तथा जितने निश्चित रूपसे जाते हैं उसके लिए मिट्टीके प्रयोगकी लाख-लाख प्रशंसा करनी चाहिए और इसका जोरदार प्रचार होना चाहिए। मिट्टीकी पुलटिस बनाकर और उसका प्रयोग करनेकी विधिकी अबतक उपेक्षा (केवल फादर कनाइप कभी-कभी मिट्टीकी पुलटिसकी राय देते थे) ही की जा रही है। मैंने बहुत पहले ही मिट्टीके प्रति अपने विश्वासकी घोषणा की थी कि मिट्टीका भविष्य महान है और इसका घर-घर प्रचार हो जायगा। जहां जब जरूरत होगी यह मिलेगी और आशातीत लाभ प्रदान करेगी। इसके प्रयोगसे जो फल निकले हैं उन सबने मेरे विश्वास-की पुष्टि की है।

मिट्टीकी पुलटिस और मिट्टीकी पट्टीके प्रयोगसे आश्चर्य-जनक रीतिसे रोगमुक्त हुए लोगोंकी रिपोर्ट बराबर आ रही है। सभी लोग इन प्रयोगोंकी जोरदार शब्दोंमें प्रशंसा करते हैं।

अनेकोंने मुझे यह भी लिखा है कि वे मेरे विचारोंका हृदयसे प्रचार कर रहे हैं।

इस प्राचीन तथा सीधी और सरल प्राकृतिक ओषधिको इसके योग्य सम्मान और पुरस्कार मिले, यही मेरी अभिलाषा है। तब प्रकृतिकी सबसे बड़ी ओषधिपर मनुष्य-जातिका पूर्ण अधिकार हो जायगा।

प्राकृतिक आहार

हजारों बरससे विज्ञान इस बातका पता लगानेकी कोशिश कर रहा है कि मानवदेहके पोषणके लिए किन चीजोंकी आवश्यकता है—इंसानकी सही खूराक क्या है। जीवन-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, शरीर-शास्त्र, तंतु-विज्ञान (हिस्टालोजी), मानव-विज्ञान और विज्ञानकी दूसरी शाखाओंमें इस गरजसे छानबीन की जा रही है।

पर एक हजार सालकी खोजका नतीजा क्या रहा? एक बहुत बड़े और प्रसिद्ध प्रोफेसरका कहना है कि सच्चा विज्ञान-सम्मत आहार आज भी हमारे लिए अनहोनी वस्तु है। सैकड़ों सालतक सिर मारते रहनेपर भी विज्ञान अभी यह नहीं जान पाया है कि मनुष्यको क्या खाना और क्या पीना चाहिए। इस विफलताके कारण वह मानते हैं कि विज्ञानमें इस कामकी योग्यता ही नहीं है। पर दुर्भाग्यवश दुनिया आज भी उसकी इस अयोग्यताकी कायल नहीं है।

विज्ञान तो अभी उन बातोंको भी नहीं जान पाया है जिन्हें आदि युगके मनुष्योंने बिना किसी अध्ययन या अनुसंधानके जान

लिया था। वह गलत-से-गलत और अति अनर्थकारी सिद्धांतोंकी घोषणा करता जा रहा है और कभी अपनी गल्तीको देखता-समझता नहीं।

अपने समयके महाविद्वानोंके विषयमें हम बाइबिलके इस वचनको दुहरा सकते हैं कि "अपने आपको बुद्धिमान कहते हुए वे मूर्ख बन गये।"

जो आदमी सच्चे ज्ञानके लिए पुनः प्रकृतिकी पुस्तकके पन्ने उलटता है, और यों सुखी और स्वस्थ रहकर जीनेके लिए जो कुछ उसे जानना चाहिए उसे सीधे-सादे ढंगसे जान लेता है उसे उन लोगोंके प्रयासपर हँसी आती है जो सदा अध्ययन, अनुसंधान और प्रयोगोंमें तन-मनसे लगे रहते हैं, पर जिनकी हर खोजका फल कोई बेतुका असंगत सिद्धांतमात्र होता है।

पर इन वैज्ञानिक अनुसंधानोंके बावजूद जो बात सचमुच मनुष्यके सुख-स्वास्थ्यकी वृद्धि और उसका कल्याण करनेवाली है वह दिन-दिन उसकी आंखोंसे ओझल होती जा रही है। पर जो आदमी फिरसे प्रकृतिके आदेशका अनुसरण करता है, उसके बताये हुए रास्तेपर चलता है, वह देखता है कि सब पेड़-पौधे और पशु-पक्षी जो वस्तुतः प्रकृतिके आश्रयमें रहते हैं, रोग और दुःख-दैन्य उन्हें नहीं सताते। उसको इस बातका दृढ़ विश्वास हो जाता है कि मैं स्वास्थ्य और आत्मकल्याणके सही रास्तेपर हूं। सत्-असत्की जिस उलझन और बेचैनीमें आजकी दुनिया थपेड़े और गोते खा रही है वे उसे छू भी नहीं पातीं। भले-बुरे, हितकर-अहितकरके क्षुद्र विवादको वह दूरसे चित्तके पूर्ण समाधान और प्रसन्नताके साथ देखता है। सही रास्तेपर होनेका अटल विश्वास स्वयं ही सुख-स्वास्थ्य देनेवाली बहुत बड़ी शक्ति है।

मनुष्यका प्राकृतिक आहार क्या है, यह आज एक उलझा हुआ मसला हो गया है और इससे हमारे सही रास्तेसे वहक जाने-का खतरा पैदा हो गया है। कहा जाता है कि हमारे शरीरको अल्व्यूमेन, नाइट्रोजन, पोपक नमक आदिकी अनिवार्य आवश्यकता है।

फिर भी इतना हम जरूर जानते हैं कि हमारी सच्ची खूराक वही है जो अपने प्राकृतिक रूपमें हमारी जीभको रुचती है और हमारी सहज वुद्धि जिसके ग्रहणके लिए हमें प्रेरित करती है। हमारी खूराकमें किन चीजोंका होना जरूरी है और जो कुछ हम खाते हैं वह किस तरह पचकर रक्तमांस वनता है, इस विषयमें पक्के तौरपर हम कुछ भी नहीं जानते। यह हमारे लिए अधिकांशमें प्रकृतिका एक रहस्य है और सदा रहेगा।

हमारा आहार क्या होना चाहिए और हमारे शरीरके सम्यक् पोषणके लिए किन तत्त्वोंकी आवश्यकता होती है, इसके विपयमें विज्ञानने जो 'सिद्धांत' हमारे सामने रखे हैं उनसे अधिक वेतुकी वातें इनसानी दिमागसे अवतक नहीं उपजी। यही कारण है कि ये 'सिद्धांत' रोज वदलते रहते हैं।

अतः इस मामलेमें हमें खास तौरसे दृढ़ रहना चाहिए और केवल प्रकृतिको अपने जीवन-पथका प्रदर्शक मानना, केवल उसीकी आवाजका अनुसरण करना चाहिए।

चिड़ियेका वच्चा जव घोंसलेसे वाहर निकलकर पहली वार वाहरकी दुनियाके दर्शन करता है तो क्या उसके मनमें क्षणभर भी इसकी उलझन होती है कि उसे अपनी भूख किस चीजसे वुझानी चाहिए? सहज वुद्धि उसे राह वताती है और वह विना किसी परेशानीके अपनी खूराक पा जाता है।

हिरनका बच्चा घास खाता है, गिलहरीका बच्चा मींगीवाले फलोंकी तलाश करता है और लोमड़ीका बच्चा जनमते ही चूहे-खरगोशके पीछे दौड़ने लगता है।

जानवर जन्मसे ही जहरीले पौधों और दूसरी हानिकर चीजोंसे परहेज करने लगता है।

मनुष्य जब प्रकृतिके आदेशका अचूक अनुसरण करता था, जब केवल सहज बुद्धि और रुचि अपनी खूराकके पहचाननेमें उसकी पथप्रदर्शिका थी, उस आदि युगमें उसने वनस्पतिजगतकी सबसे सुंदर और उत्तम वस्तु—फलको अपने आहारके लिए चुना था। वह घास तो संभवतः चर न सकता था, और छोटे-मोटे जानवरोंको पकड़कर उनका मांस नोचना उसने शायद पसंद न किया हो।

बाइबिल कहती है—"और खुदाने कहा, देखो मैंने हर एक बीजधारी वनस्पतिको जो सारी धरतीपर व्याप्त है और हर एक पेड़को जिसमें बीज उपजानेवाला फल है तुम्हें दिया। वह तुम्हारी खूराक होगी।"

'बीजधारी वनस्पति' और 'बीज उपजानेवाले वृक्ष'का यहां विशेषरूपसे उल्लेख हुआ है। भाव यह है कि फल उपजानेवाले पेड़ मनुष्यके आहार बनाए गए। पृथ्वीपर रहनेवाले पशु-पक्षियोंको, उसके कथनानुसार 'हर एक हरे पौधे'का आहार दिया गया।

इस युक्तिसे हम यह अनुमान तो कर ही नहीं सकते कि पेड़ खुद ही इनसानकी खूराक बननेके लिए पैदा किए गए।

दुनियाके जिस-जिस हिस्सेमें इंसान रहा, प्रकृति उसके लिए इफरातसे फल-मेवे पैदा करती रही, मनुष्यको उनके उपजानेमें हाथ-पांव नहीं हिलाने पड़ते थे। हां, सब कहीं एक ही तरहके

फल नहीं पैदा होते थे, देश और जलवायुके भेदसे वे भिन्न-भिन्न प्रकारके होते थे।

भूमंडलके इस भाग (यूरोप)में मनुष्यकी पहली खूराक जंगलके बेर, मकोय, करौंदे-जैसे फल थे। पीछे वह पेड़ोंमें लगने-वाले फल भी खाने लगा और अखरोट, बादाम-जैसे मींगीवाले फल या मग्ज उसकी खास खूराक हो गए। हर चीज जो कच्ची, शुद्ध, अविकृत दशामें उसे अच्छी लगती थी उसके भोजनकी वस्तु बन गई[1]।

मींगी या गिरीवाले फल सालके बड़े भागमें उपलब्ध हो सकते हैं, प्रकृतिने ऐसा प्रबंध कर दिया है कि डालियोंसे वह जमीन-पर या सूखे पत्तोंमें झड़नेके बाद लंबे अरसेतक अच्छी हालतमें रह सकें।

जबतक जंगलोंकी 'सफाई' नहीं हुई थी और प्रकृति अबाधित रूपसे अपना काम कर सकती थी तबतक मग्जवाले और गूदेदार फल हर जगह इतनी इफरातसे उपजते थे कि मनुष्यको उनसे पूरा भोजन मिल जाय। हमारी परम ममतामयी माता प्रकृतिने अपनी सभी संतानोंके लिए, उनको सृष्टिके समयसे ही भोजनका प्रबंध कर रखा है, और अपने लाड़ले बेटे मनुष्यके सामने तो उसने शाहाना दस्तरख्वान बिछा दिया है।[2]

---

[1]जो चीजें कच्ची प्राकृतिक दशामें हमारी जीभको रुचती है केवल वही हमारा प्राकृतिक भोजन मानी जा सकती हैं; क्योंकि बनावटी तौरपर सेक-बघारकर उबकाई पैदा करनेवाली सर्वथा अप्राकृतिक चीजें भी जबानको अच्छी लगनेवाली बनाई जा सकती है। रसनाको धोका देना आसान है।

[2]यह सुविदित बात है कि पुराने जमानेके जर्मन शुरू-शुरूमें केवल

इस रीतिसे हम आसानीसे और पक्के तौरपर जान सकते ह कि हमारी सही खूराक क्या है। पर हम सही रास्तेसे फिर बहक न जायं इसकी सावधानी हमें रखनी होगी। कारण यह कि ज्यों ही हम उस रास्तेपर लगते हैं चारों ओरसे हमपर एतराज उठाए जाने लगते हैं। ऐसे आदमी तो सदा रहते ही हैं जो यह समझते हैं कि प्रकृति और उसकी वाणीकी बनिस्बत वह हमारी ज्यादा अच्छी रहनुमाई कर सकते हैं।

लोग जब पहली वार सुनते हैं कि मनुष्यकी सही खूराक क्या है तब आम तौरसे बहुत सशंक हो उठते हैं और सोचते हैं कि हमें आजसे ही यह आहार आरंभ कर देना चाहिए। लोगोंके आजके खान-पानपर शंका उठाकर हम उनके हृदयके अति कोमल और दर्दभरे स्थानको स्पर्श करते हैं। अतः आहारके विषयमें अपने विचार, मैं बहुत ही संयत भाषामें प्रकट करूंगा और कोई ऐसी बात न कहूंगा जिसे सुनकर कोई आदमी हिम्मत हार दे।

हर आदमीको सबसे पहले तो पानी, हवा, सूरजकी रोशनी और मिट्टीकी ओर इस पुस्तकमें बताए हुए रास्तेसे, लौटना चाहिए। जो कोई तुरत इस क्रमके साथ पूरा प्राकृतिक आहार न चला सके वह कम-से-कम इतना तो कर सकता है कि अपने भोजनको जितना सादा बना सकता हो बना ले और खासकर हानिकर और नफासतकी चीजोंसे परहेज करे।

इन सबसे ज्यादा जरूरी है मांसभक्षणके विषयमें अपनी जीभको काबूमें रखना। नमक लगाकर या धुएंमें सुखाकर

जंगली फल खाकर रहते थे। शिकार करना उन्होंने बहुत पीछे सीखा। पर उसके बाद भी फल-मेवे अरसेतक उनका मुख्य भोजन बने रहे।

रखा हुआ मांस अति हानिकर है । सूअरका मांस और कीमा भरकर वनाई हुई चीजें तो सवसे खराव होती हैं ।

मांसके वदलेमें हम दूधको अधिक मात्रामें ले सकते हैं । दूधको कच्चा, विना उवाले ही पीना या दही, मट्ठे, पनीर आदिके रूपमें खाना चाहिए ।

अंडा या अंडेके योगसे वनी हुई चीजें खानेकी सलाह मैं किसीको नहीं दे सकता ।

आलू, फलीदार तरकारियां (सेम, कौंच इत्यादि) दाल और रोटी मनुष्यकी प्राकृतिक खूराक नहीं है, यह वात तो वार-वार कही जा चुकी है । अतः इन चीजोंको थोड़ा ही खाना चाहिए ।

आलू और फलीदार तरकारियोंके वदले हमें हरी तरकारियां और सलाद पसंद करने चाहिए । ताजा सब्जियोंमेंसे कुछको—हरी मटर, गाजर, शलजम, पालक आदिको—कच्चा ही खाना चाहिए ।

रोटी-दाल, फलीदार तरकारियां और आलू देहसे मशक्कत करनेवाले मजदूरके लिए कम हानिकर हैं, पर जो लोग शारीरिक श्रम नहीं करते, कलम और दिमागसे रोटी कमाते हैं उन्हें चाहिए तो इन चीजोंसे पूरा परहेज रखना, पर यह न हो सके तो इन्हें थोड़ी मात्रामें ही खाना चाहिए । वीमारीके दिनोंमें तो यह परहेज खास तौरसे जरूरी है ।

ताजा फल और मग्जवाले मेवे सदा हमारे दस्तरख्वान-पर होने चाहिए ।

केक, मिठाइयां, चाकलेट, कहवा, हलवा, खोया और उससे वने हुए मिष्टान्न आदि हमेशा हाजमेको खराव करते हैं और इस कारण स्वास्थ्यको विगाड़नेवाले हैं ।

शराव तो वह भयावह पिशाच है जो आज सारी दुनियामें हर वक्त ऊधम मचा रहा है और सर्वत्र मानव-जातिके सुख-स्वास्थ्यकी वलि ले रहा है। अतः उचित तो यह है कि आदमी इस विलासितासे बिलकुल ही दूर रहे पर यह न निभ सके तो वहुत ही थोड़ी, दवाकी मात्रामें ले।

तंबाकू भी हमारा दगा देनेवाला दोस्त है, और उससे होशियार रहनेकी चेतावनी मैं आपको पूरे जोरसे देता हूं।

चाय, कहवा और उत्तेजना पैदा करनेवाली दूसरी चीजें भी सर्वत्र मनुष्यके स्वास्थ्यको नष्ट कर रही हैं। ये चीजें धीरे-धीरे काम करनेवाले जहर हैं इसलिए इनकी बुराई जल्दी हमारी पकड़में नहीं आती।

कहवेसे मैं अपने पाठकोंको खास तौरसे सावधान कर देना चाहता हूं; क्योंकि आज उसका रिवाज आम है। उसके वजाय हम जौ या गेहूंके सत्तका कहवा इस्तेमाल कर सकते हैं।

पर हमारा प्राकृतिक पेय तो एकमात्र जल है। वनका हिरन केवल पानी ही पीता है।

वैसे तो पीनेकी सभी चीजें हमें कम-से-कम लेनी चाहिए। शोरवा और तरल खाद्य वार-वार या अधिक मात्रामें हमारे सामने नहीं रखे जाने चाहिए। प्रकृति हमें ठोस चीजें खानेका आदेश करती है जिन्हें चवाना जरूरी होता है।

पर अगर पेय और पतले खाद्योंसे हमें वचना है तो यह जरूरी है कि हमारे भोजनमें अधिक मिर्च-मसाला न डाला जाय। नमक और सभी मसाले स्वास्थ्यके शत्रु हैं और कितने ही कठिन रोगों (पेटका कैंसर इत्यादि) इनके कारण होते हैं।

मैं भोजनके मामलेमें लोगोंकी कमजोरियोंका काफी

लिहाज कर चुका। वह फिलहाल इतना भी कर दें कि अपनी खूराकको सादी बनाना शुरू कर दें, प्रकृतिविरुद्ध आहारमें कुछ कमी कर दें, फल-मेवोंमें स्वाद लेने लगें और वे उनकी मेज या दस्तरख्वानपर रखे जाने लगें तो हमें उन्हें अपनी राह जाने देना चाहिए।

पर अब हमें उनको राह बतानी है जो प्रकृतिका पूर्ण अनुसरण करना चाहते हैं, जो फलको अपने भोजनमें गौण नहीं, मुख्य स्थान देना चाहते हैं। बल्कि केवल फल ही खाकर रहना चाहते हैं। मैं जानता हूं कि आज भी ऐसे लोगोंकी तादाद कितनी बड़ी है जो बड़ी प्रसन्नता और उत्साहके साथ इस रास्ते-पर चलनेको उद्यत होंगे। प्रकृतिकी ओर लौटनेका वक्त आया ही चाहता है।

हम प्रकृतिको अविकल और अबाधित रूपमें अपना काम करने दें तो हमारी सहज बुद्धि, हमारी रुचि और हमारी अंतरात्मा हमें केवल रसदार और अखरोट, बादाम-जैसे मींगी या गिरीवाले फलोंको ही अपनी खूराक बनानेकी प्रेरणा करेंगे।

मींगीदार फलोंके अतिरिक्त जंगलमें प्रकृतिके उद्यानमें उपजनेवाले रसीले गूदेदार फल मनुष्यके लिए सबसे अच्छी खूराक हैं। इनके सहायक रूपमें हमारे बागोंमें पैदा होनेवाले लुभावने सुस्वादु फल सेब, नासपाती, अंगूर, खुबानी, शफतालू, बेर आदि हैं। गरम देशोंके फल बादाम, छुहारे, खजूर, अंजीर, संतरे, खरबूजे, अमरूद, शरीफा, चीकू, केले आदिको भी हम इस सूचीमें शामिल कर सकते हैं।

मनुष्य ! देख, सृष्टिकर्ताने तेरे लिए कैसा सुंदर दस्तर-ख्वान सजा दिया है।

फल वह भोजन है जो भगवान हमें देता है, जिसे उसका सूर्य पकाता है। काश अब भी मनुष्य इस दिव्य देनको समझता और उसके अनादरके पापसे बचता! इस न्यामतको अस्वीकार करके उसने प्रकृति और परमेश्वरके प्रति भारी अपराध किया है और इसका दंड अनिवार्य है—रोग और सैकड़ों प्रकारके दुःख-दैन्य।

किसी फलदार दरख्तको सुंदर फलोंसे लदा देखकर क्या आपका दिल खुशीसे खिल नहीं उठता? इस दिव्य दृश्यमें क्या आपको प्रकृतिकी आवाज सुनाई नहीं देती?

पकाये हुए आलू, रोटी, दाल, जानवरोंके मुर्दे इत्यादि मन और आंखोंको मोह लेनेवाले ताजा फलोंके सामने क्या चीज हैं? ये पकाये हुए खाद्य मुर्दा और स्वादरहित होते हैं। बिना नमक-मसाला मिलाये जीभको वे रुचते ही नहीं। फलोंमें स्वाद है, दिव्य गंध है, ताजगी और जीवन है।

अप्राकृतिक, पकाये हुए खाद्य हमारी आंतोंके लिए कष्ट-प्रद बोझ होते हैं, हमारे तन-मनको शिथिल, बेदम और जीवनको भारभूत बना देते हैं। पर फल हमारी दुर्बल रोगजर्जर देहमें फिरसे शुद्ध रक्तका संचार करते हैं, उसे प्राण और बल देते हैं।

मनुष्य रोगनाशक दवाओंकी तलाशमें क्यों हैरान होता है? फलमें उसे रोगमुक्त कर देनेका गुण है। प्रकृति यह बनी-बनायी दवा उसे दे रही है। फल मीठे, स्वादिष्ट होते हैं और उसके दुःख-दर्दकी अचूक ओषधि हैं। फल देवताओंका भोग है, उसमें अमृत बसता है। मनुष्य क्यों प्रकृतिके दिये हुए इस संजीवन रस, इस अति मधुर महौषधिको ठुकराता और जहर-से कड़वे काढ़े अर्क पकाता-उतारता और अपने आपको उन्हें

घूंटनेके लिए मजबूर करता है, जिसका फल उसे केवल अवर्णनीय दुःख-दर्दके रूपमें मिलता है।

गोलियां, अर्क और काढ़े रोगको दूर नहीं करते।

"तू व्यर्थ ही बहुत-सी दवाएं इस्तेमाल करेगा; क्योंकि तू रोगमुक्त न होगा।"

इंसान इस बातको नहीं जानता कि गोलियां, अर्क और मरहम उसकी तंदुरुस्तीको नाश कर रहे हैं और यह बड़े दुःखकी बात है। दुर्भाग्यवश जहरका असर अकसर हमें धोखा देने-वाला होता है।

प्रकृति फलको अपने आप उत्पन्न करती है, या यों कहिए कि उसे उपजानेमें इंसानका ज्यादा एहसान नहीं लेती। और अप्राकृतिक आहारको पैदा करनेके लिए मनुष्यको खेतों और बागोंमें लगातार कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। अपना वर्तमान आहार गेहूं, चावल, दाल, आलू आदि उपजानेके लिए हमें सख्त मेहनत और परेशानी उठानी पड़ती है, प्रकृतिको इन्हें पैदा करनेके लिए मजबूर करना पड़ता है।

ऐसी दशामें हमारे लिए यह समझना और बताना कठिन है कि मनुष्य अपने प्राकृतिक भोजन फलका अनादर क्यों करता है, उसकी यह मूर्खता हमारे लिए बहुत बड़ी पहेली है जिसे बूझनेमें हमारी बुद्धि असमर्थ है।

फलको भी हमें उसी दशामें खाना चाहिए जिसमें प्रकृति उसे पैदा करती है। उसे सुखाने, पकाने या बिगड़नेसे बचानेके लिए नमक-मसाला लगानेसे स्वभावतः उसका गुण घट जाता है। फलोंका रस निकालना भी प्रकृतिका अनुसरण नहीं है, क्योंकि कृत्रिम विधिसे निकाला हुआ रस उतना स्वास्थ्यकर,

उतना पोषक नहीं होता जितना वह फलकी स्वाभाविक दशामें उसके साथ सेवन करनेसे होता है।

अतः मनुष्यकी खूराकमें गिरीवाले फल सबसे ज्यादा जरूरी चीज माने जाने चाहिए। इस वर्गके फल ही मनुष्यको गरमी और शक्ति देते हैं।

जिसके दांत इस लायक न हों कि बादाम, पिस्ते, अखरोट आदिको अच्छी तरह चबाकर खा सके उसे उन्हें घिस या पीसकर खाना चाहिए। उन्हें घिसनेकी कलें आजकल बिसातवालेकी हर अच्छी दुकानमें मिल सकती हैं।

मैं आम तौरपर 'हेजेलनट'[1] को ज्यादा पसंद करता हूं; क्योंकि वह कुदरती तौरपर पैदा हो सकता है। पर अखरोट और दूसरे मग्ज भी बहुत अच्छे रहेंगे। छुहारे, खजूर और अखरोट, बादाम आदिको साथ खाना बहुत मजेदार होता है।

कच्चा, बिना उबाला हुआ दूध भी हमारी भोज्य वस्तुओंकी सूचीमें शामिल किया जा सकता है। मक्खन और नरम पनीर या दही भी लिया जा सकता है। हो सके तो दोनोंको बिना नमक मिलाये ही खायें। शुद्ध फलाहार एकबारगी चलाना सबके लिए कठिन है, बिरले ही इस व्रतको निभा सकते हैं। इसलिए हमें साधारण आहार और फलाहारके बीचकी मंजिल दूध, मक्खन और रोटीके सहारे बिता लेनेकी सलाह देनी होगी, इनके साथ थोड़ी हरी तरकारी लेना भी जरूरी हो सकता है। स्तन्यपायी पशु (गाय, घोड़ा इत्यादि) का बच्चा भी जब शिशुके आहारसे वयस्क प्राणीके आहारपर आने लगता है तो

---

[1]एक तरहका अखरोट।

कुछ दिन उसके साथ-साथ मांके दूध भी पीता रहता है। जान पड़ता है सभ्य स्त्री-पुरुषके बिगड़े हुए पेटको भी इसी तरह धीरे-धीरे फिर शुद्ध प्राकृतिक आहारपर ले जाना होगा। इस संक्रमणके लिए दूध मुझे सबसे अच्छा मालूम होता है।

थोड़ी-सी रोटी भी, त्याज्य पर कुछ कालके लिए अनिवार्य मानकर खायी जा सकती है। रोटी चोकरसमेत गेहूंके आटेकी हो तो ज्यादा अच्छी होगी। हमारी मामूली डवल रोटी बहुत ही दुष्पाच्य होती है, इसलिए मैं उसे खानेकी सलाह नहीं दे सकता। मक्खन, रोटी और अंजीर बहुत ही अच्छा भोजन है।

उबले फल, मुरब्बे आदिके रूपमें सुरक्षित फल और रसभरी आदि ताजा फल भी दहीके साथ खाना बहुत अच्छा भोजन है। ऐसी चीजें फलाहार आरंभ करनेवालोंके लिए खास तौरसे अच्छी हैं। इससे उनका भोजन एकबारगी बहुत सादा न हो जायगा।

जो लोग पकाये हुए भोजनको एकबारगी न छोड़ सकें वे एक वक्त घी, मक्खन या नारियलके तेलमें पकायी हुई तरकारियां और दो-चार आलू भी ले सकते हैं।

इस भोजन-व्यवस्थामें सब तरहके गिरीदार और गूदेदार फल, दूध, मक्खन, रोटी और उबाली हुई सब्जियोंके लेनेकी छूटके साथ फलाहार आसानीसे चलाया जा सकता है। इस व्यवस्थामें आपके घरवालोंको स्वाद और स्वास्थ्य दोनोंका सुख मिलेगा। इस प्रकारके भोजन-सुधारकी आज सख्त जरूरत है। ऊंची श्रेणीवालोंको इस सुधारमें अगुआ होना चाहिए। इस

तरहकी खूराकको उन्हें रोगीके पथ्यरूपमें नहीं बल्कि नित्यके सामान्य भोजनके रूपमें अपनाना चाहिए।

गरीब श्रेणीके लोग पैसेवालोंको गोश्त, शराब, मिठाई, मलाई, सिगरेट, चाय आदि खाते-पीते देखते हैं तो इसे पैसेका सुख समझते हैं और उनके अंदर भी उसके भोगकी लालसा भड़क उठती है। पर इस सुखकी स्पर्धा करके वे धनिक वर्गके विशेष रोगों और दुर्दशामें भी हिस्सा बंटानेकी कोशिश कर रहे हैं। अतः ऊपरके दरजेवालोंको चाहिए कि वे इन अप्राकृतिक पदार्थोंके भोजन और सारी घातक विलासिताओंके सुखका त्याग कर नीची श्रेणीवालोंके सामने एक अच्छी मिसाल पेश करें।

पर सच्चे अर्थमें प्रकृतिकी ओर लौटना गरीब-अमीर, छोटे-बड़े सभीके लिए सही रास्ता है, अगर वे चाहते हों कि उन्हें फिर स्वास्थ्य और सुखकर जीवन मिले। प्रकृति वर्ग या दरजेका भेद करना नहीं जानती। पर आजकी स्थितिमें प्रकृतिकी ओर सामान्य रूपसे लौटनेके क्रम, अतिशय अप्राकृतिक रहन-सहनके बाद प्रकृतिके पुनः अनुसरणकी तथोक्त प्रतिक्रियाका प्रारंभ ऊंची श्रेणीमें ही होना चाहिए।

यंगबार्नमें[1] मैंने देखा कि समुचित सहायता और परिवर्तन-कालके लिए बताये हुए खाने मिलनेपर लोग ऊपर बताये हुए फलाहारको कितनी जल्दी और कितने उत्साहके साथ अपनानेको तैयार हो जाते हैं। यही नहीं, मैं ऐसे कुटुंबोंको जानता

---

[1] मूल पुस्तकके लेखक एडोल्फ जस्टद्वारा जर्मनीके हार्ट्ज स्थानमें स्थापित आरोग्याश्रम।

हूं जिन्होंने अपने घरमें इस तरहके भोजनकी व्यवस्था की है और इस सुधारसे सुखी हैं। इन परिवारोंके स्त्री-पुरुष अपने नये भोजन, उसके गुण और स्वादकी जब कभी इसकी चर्चा चलाइए, दिल खोलकर सराहना करते हैं।

अवश्य ही हम चाहें तो अपने दस्तरख्वानको और भी सादा बना सकते हैं। गिरीदार फल और अपने देशमें होनेवाले ऋतुफल बस यही हमारी सबसे अच्छी खूराक और हमारे पोपणके लिए यथेष्ट भी हैं। कुछ रोगोंमें अधिक सादा आहार आवश्यक भी होता है।

बहुतेरे पैसेकी कमीके कारण भी अधिक सादी रहन-सहन रखनेको मजबूर होंगे। पर मैंने जान-बूझकर इस विपयमें जितनी छूट दी जा सकती थी दे दी है।

इस निरामिष भोजनको जिसमें फल मुख्य वस्तु होता है, हम 'नव्य निरामिपवाद' कह सकते हैं।

प्रकृतिने जैसे मांसको मनुष्यका भोजन नहीं बनाया वैसे ही गेहूं, जौ, चावल, दाल, साग, तरकारियां, आलू आदिको भी उसका आहार बननेके लिए नहीं पैदा किया है। कारण यह कि इन चीजोंको हम कच्चा विना नमक-मसाला मिलाये खायें तो ये हमें अच्छी नहीं लगतीं।

मनुष्य मांस, मद्य, सिगरेट, तंबाकू आदि त्याग दे तो उसके दिलपरसे एक भारी बोझ उतर जाता है, उसे जान पड़ता है, जैसे वह प्रकृतिके प्रति कोई भारी अपराध कर रहा था, जिससे अब छुटकारा पा गया हो। पर आप फल, रोटी, दाल, हरी और फलीदार तरकारियां खायं, और दूध-दही और गिरीवाले फल न खायं तो इस भोजनमें चिकनाईका अभाव होगा जो

मानव-शरीरके धारण-पोषणके लिए बहुत ही जरूरी है। यह चीज आपको अखरोट, बादाम-जैसे फलोंके मग्जोंमें मिल सकती है' ऐसे आहारपर रहनेवाले आम तौरसे पीले और दुबले दिखाई देते हैं, मुर्दादिल और अकसर कमजोर दिल-दिमागके जरासे कष्ट, चितासे घबरा जानेवाले होते हैं, और शिकायतें भी उन्हें अकसर हुआ करती हैं। उनकी देहमें न गरमी होती है और न शक्ति।

पहलेके निरामिषभोजियोंके स्वास्थ्यके बारेमें हमारे अनुभव बहुत ही खेदजनक हैं। उनमें बहुतेरे पीले, रक्तहीन, सूखी खाल और दुबली देहवाले मिलते हैं। अतः पुराने संप्रदायके निरामिषभोजियोंको बुद्धि-विवेककी आवाज सुननी चाहिए।

यह बात देखी गई है कि कुछ आदमी निरामिषाहारकी पुरानी पद्धतिके अप्राकृतिक आहारके दोषको दूसरोंकी अपेक्षा अधिक सह सकते हैं, और उसके कुपरिणाम सबमें समान रूपसे नहीं प्रकट होते।

फिर भी गिरीदार फलोंके आहारके विरुद्ध जो कुछ भी कहा जाता है वह एकबारगी गलत है।

'अक्सर यह कहा जाता है कि हमारी गोशालामें पालित गायें रोगी होती हैं, इसलिए हमें दूध न पीना चाहिए। इस तर्कके अनुसार तो हमारे बच्चोंको मांका दूध भी, बिना उबाले न पीना चाहिए, क्योंकि स्त्रियां तो और भी अधिक रोगिणी होतीं है। पर हम देखते हैं कि जो बच्चे मांके दूधसे वंचित रहते है उनकी देह पनपती नहीं। अवश्य ही चरागाहमें चरनेवाली तंदुरुस्त गायोंका दूध रोगी गायके दूधसे बहुत अधिक पोषक और गुणकारी होता है।

कहा जाता है कि गिरियोंमें तेल होता है इसलिए मनुष्यको उसे पचाना कठिन होता है। ऐसा कहनेवाले यह सोचनेका कष्ट नहीं करते कि यह कथन प्रकृतिपर कितना बड़ा लांछन है, मानो उसने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृतिके लिए अयुक्त और अपाच्य आहार उत्पन्न किया।

प्रकृतिने गिरीदार फल गिलहरी और मनुष्य दोनोंके लिए पैदा किया है। यह नन्हा-सा प्राणी जो इस डालसे उस डालपर कूदता-उछलता रहता है उसकी चुस्ती-फुरती देखकर क्या आप यह सोच सकते हैं कि वह न पचनेवाली खूराकपर जी रहा है।

जो निरामिषभोजी गिरियोंके आहारपर उपर्युक्त आक्षेप करते हैं उन्हें मैं यह सलाह देना चाहता हूं कि वे कुछ दिन दाल, तरकारी, रोटी और आलूके बदले केवल मग्ज, पिस्ता-बादाम, अखरोट, चिलगोजा आदि खाकर रहनेकी कोशिश करें। कुछ ही दिनोंमें वे देखेंगे कि उनकी मंद जठराग्नि तीक्ष्ण हो गई, उनका पाचन-संस्थान अधिक मुस्तैदीसे अपना काम करने लगा।

बैलको केवल घास और हाथीको धान या चावलके आहार-से जो प्रभूत बल प्राप्त होता है वह अकसर इस बातकी दलीलमें पेश किया जाता है कि मनुष्य भी केवल साग, भाजी, रोटी, दाल और फल खाकर स्वस्थ-सबल रह सकता है। यह दलील देनेवाले निरामिषभोजियोंका ध्यान मैं इस बातकी ओर खींचना चाहता हूं कि शेर और व्हेल मछली मांसके आहारसे भी तो ऐसा ही प्रचंड बल प्राप्त करते हैं। प्राणी मात्र केवल उस आहारसे स्वस्थ रहते और पुष्ट होते हैं जिसकी ओर प्रकृति उनकी सहज बुद्धि, स्वाद, रुचि और अंतरात्माके द्वारा उन्हें प्रेरित करती है और उसके अंगोंकी बनावट जिसकी प्राप्ति, भक्षण

और पाचनके अनुकूल है। लोमड़ी मांस और बैल घास खाकर पुष्टिबल प्राप्त करता है। उन्हें गिरीदार फलोंकी गिजा दी जाय तो दोनोंका स्वास्थ्य-बल गिर जायगा। गुबरैलेका आहार गोबर है, पर दुनियामें और भी कोई प्राणी है जो इस आहारपर जी सके ?

इसलिए अगर बैल घास खाकर बलवान और सशक्त बना रहता है तो इससे यह साबित नहीं होता कि मनुष्य हरी और फलीदार तरकारियों या फल और रोटी खाकर स्वस्थ और सुखी रह सकता है। दूसरी ओर जब गिरीदार फल उसकी खास ख़ूराक होते हैं तब उसका तन-मन अधिक सबल-सशक्त होता है। कारण यह कि यह चीज कच्ची हालतमें उसकी जीभको अच्छी लगती और यह इस बातका सबूत है कि प्रकृतिने यही आहार उसको दिया है। वह वर्षके बड़े भागमें यह भोजन उसके लिए प्रस्तुत भी रखती है।

यह बात बार-बार पुराने और हालके जमानेमें भी कही गई है कि प्रकृतिने मांस नहीं बल्कि वनस्पतिको मनुष्यका आहार बनाया है, पर इस बातपर शायद ही किसीने जोर दिया हो कि प्रकृतिकी योजना यह नहीं है कि आदमी साग-सब्जी, सेम-आलू और दाल-रोटी खाकर रहे, बल्कि यह है कि वह कच्चे और अपने आप पके हुए फल खाय। इस बातकी तो अबतक खास तौरसे उपेक्षा की गई है कि प्रकृतिने फलोंकी गिरियोंको ही उसकी खास ख़ूराक बनाया है।

एक अंग्रेज डाक्टर स्व० डेंसमोरने सबसे पहले प्रकाश्य-रूपसे हमारे वर्तमान बिना चिकनाईके निरामिष भोजनमें हमारे स्वास्थ्यके लिए जो खतरा है उसकी ओर हमारा ध्यान

खींचा और वताया कि गिरीदार फल अखरोट, वादाम, चिलगोजा आदि ही मनुष्यका मुख्य भोजन है। हमें इसके लिए उसका उपकार मानना चाहिए।

पर डेंसमोरपर भी विज्ञानका जादू वुरी तरह सवार था। इस कारण उसकी पद्धतिमें अनेक दोप रह गये। उसने वैज्ञानिक प्रमाणों, खासकर आंतोंकी वनावटसे इस वातको सावित कर दिया कि मनुष्यकी सही खूराक गिरीवाले फल ही हैं। पर वैज्ञानिक प्रमाणोंका कोई मूल्य नहीं। हमारी चिकित्सा-प्रणालीकी सारी वेतुकी वातें वैज्ञानिक प्रमाणोंसे सही सावित कर दी गई हैं। विज्ञानकी विधिसे हम हर चीजको सही या गलत सावित कर सकते हैं। जिस विज्ञानका आधार प्रकृति नहीं है और फलतः जो आधाररहित है उसका उपयोग इस रीतिसे किया जा सकता है। अतः डेंसमोरके सिद्धांतोंका गलत होना वैज्ञानिक रीतिसे सिद्ध किया जा चुका है। ध्यान देनेकी वात यह है कि डेंसमोरके वैज्ञानिक प्रमाण साधारण जनोंको गूदे और गिरीदार फलोंके मनुष्यका प्राकृतिक आहार होनेका विश्वास न दिला सके और न उन्हें इस खूराककी ओर खींच सके। इसका कारण शायद यह हो कि डेंसमोर भी पहले विज्ञानके नहीं वल्कि दूसरे रास्तोंसे ही इस नतीजेपर पहुंचा।

प्रकृति और उसके नियम अटल, अपरिवर्तनीय हैं, वे सृष्टिके आदिसे प्रलयपर्यन्त ज्यों-के-त्यों रहेंगे। अतः मानव-जातिने अपने आप पके हुए फलों और खासकर गिरीवाले फलोंको फिर अपना मुख्य भोजन न वनाया तो वह कभी सच्चे अर्थमें स्वस्थ, सवल और सुखी नहीं होनेकी।

इसके उत्तरमें निश्चय ही यह बात कही जायगी कि बिना फलाहारी बनाये लोगोंके रोग अच्छे किये गये हैं और वे स्वस्थ, सबल भी रहे हैं। पर बात यह है कि जो लोग प्रकृतिके सभी नियमोंका फिर पूरा-पूरा पालन करेंगे उन्हें वह जिस स्वास्थ्य, बल और सुखका दान करेगी और रोगोंको भगानेमें इससे जो चमत्कारिक सफलता प्राप्त होगी आजकी स्थितिमें हम उसकी तनिक भी कल्पना नहीं कर सकते।

प्रस्तुत पुस्तकके आरंभमें ही मैंने इसे दिखानेकी कोशिश की है कि हवा और रोशनीके बारेमें लोग प्रकृतिसे जो शंका रखते हैं वह कितनी खतरनाक और समझमें न आनेवाली बात है। वैसे ही प्रकृति उन्हें जो आहार देती है उसकी उपयुक्तताका विश्वास न करना भी वैसी ही हानिकर और हमारी अकलमें आनेवाली बात है। क्या यह प्रकट सत्य नहीं है कि हर एक जानदार जब वह प्रकृतिकी दी हुई खूराकपर रहता है तब स्वस्थ, सुंदर, सबल और सुखी होता है। हिरन घास चरकर और शेर मांस खाकर स्वस्थ-सबल रहता है।

यह भी मशहूर बात है कि 'ओरंग-ऊटान'[1] जिसकी आंतें और पाचनका काम करनेवाले अंग मनुष्यसे इतने मिलते हैं कि पहचाननेमें धोखा हो सकता है, केवल कच्चे फल खाकर रहता है, फिर भी इतना बलवान होता है कि 'गरम देशोंके जंगलोंका दैत्य' कहा जाता है। बहुतोंका विश्वास है कि केवल फलके आहारसे मनुष्यको पूरा बल नहीं मिलेगा। पर आज

---

[1]बोर्नियो, सुमात्राके जंगलोंमें पाया जानेवाला, लंबे हाथोंवाला, बलवान, बिना पूंछका बंदर।

तो मांस, तरकारी, फलियां, रोटी-दाल और शराब उसका आहार है, और यह बनावटी खूराक खाकर भी वह ओरंग-ऊटानसे कहीं कमजोर है। उसका आहार-विहार-भोजन और रहन-सहन सचमुच प्राकृतिक हो तो वह ओरंग-ऊटानसे भी अधिक बलवान हो सकता है। वह सृष्टिका सिरमौर है, संपूर्ण प्राणियोंपर राज करनेके लिए पैदा किया गया है। उसकी इंद्रियां, देह-मनकी शक्तियां सबसे अधिक विकसित हैं, अतः उसे शरीरबलमें भी सभी प्राणियोंसे बहुत आगे होना चाहिए।

दैत्यों, असुरोंकी पौराणिक कहानियां भी इस बातका संकेत करती हैं कि आदि युगमें मनुष्य अति बलशाली था।

जानवर पके हुए फलोंकी अपेक्षा कच्चे और अधपके फलों, पौधोंको खाना ज्यादा पसंद करते हैं। हर एक अनुभव उनकी इस प्रवृत्तिकी पुष्टि करता है। बच्चे भी जिनकी सहज बुद्धि आज भी बड़ी उम्रवालोंसे बड़ी है, आमतौरसे कच्चे और अधपके फलोंको ही पसंद करते हैं।

प्रकृति-विज्ञानका हर एक पंडित इस तथ्यकी ओर ध्यान देता हुआ दिखाई देता है कि जानवर अपक्व फल-पौधोंको पकेसे ज्यादा पसंद करते हैं। मार्टिनके नव-प्रकाशित विशाल प्राकृतिक इतिहासमें हम इस बातका उल्लेख पाते हैं कि ओरंग-ऊटान अनपके फल खानेका खासतौरसे शौकीन है।

चिड़ियोंके बारेमें यह बात सुविदित है कि वे शाहदाने या विलायती मकोयको; पूरा पकनेके पहले जब वह लाल होने लगते हैं, खाना सबसे ज्यादा पसंद करती हैं।

घास चरनेवाले जानवर भी नरम-कच्ची घास और दानेको

ही ज्यादा पसंद करते हैं। सूखी घास और पुवाल आदि भी, अगर वह पकनेसे कुछ पहले ही काट लिया गया हो तो उन्हें अधिक रुचता है। अनपका चारा उनके लिए अधिक पोषक और स्वास्थ्यकर भी होता है।

जो सेब जाड़ेके दिनोंमें इस्तेमाल करनेके लिए तोड़कर रख लिए जाते हैं वे अब आम तौरसे अधपके ही तोड़े जाते हैं। पूरी तरह पकनेके लिए उन्हें इससे कहीं अधिक दिन डालसे लगा रहना होगा।

बे पके फल खानेसे बच्चोंको दस्त आने लगना और खाज आदिकी शिकायत हो जाना भी इस बातका सबूत है कि अनपका फल पकेकी बनिस्बत देहको अधिक शक्ति और गति देता है, क्योंकि अतिसार और खालके रोग शोधक उभार हैं। ये संचित विषको शरीरसे बाहर कर देनेकी प्रक्रिया हैं।

अतः अनपके और अधपके फलसे डरना अब हमें छोड़ देना चाहिए और उन्हें चावसे खाना चाहिए। हमारी बिगड़ी हुई जीभ भी उन्हें ज्यादा पसंद करेगी। हरी तरकारियां, हरी सेम-मटर आदि भी पकी हुई फलियों और अन्नोंसे, जिनसे हमारी रोटी बनाई जाती है, अधिक पोषक और स्वास्थ्यकर होती हैं।

जानवरोंको जब फलियां, चना-मटर और पका अन्न अधिक मात्रामें दिये जाते हैं, और खासकर जब उन्हें कड़ी मेहनत नहीं करनी पड़ती, तब उनकी देहके जोड़ कड़े पड़ जाते हैं, और कभी-कभी वे मर भी जाते हैं। इसके विपरीत, घोड़ेको जब कच्चा चारा दिया जाता है—भले ही वह सूखा हो, तब उसके जोड़ लचीले होते हैं। इससे साबित होता है कि फलियां और वह गेहूं-जौ जो पक जानेपर खेतसे काटा गया हो, प्रकृतिकी पसंदका आहार नहीं है, इसलिए इनको खानेकी सलाह मैं नहीं दे सकता। इस दृष्टिसे

आजके अन्नाहारी हमें पके दाने और मोटे छिलकेवाले गेहूंके विना छने आटेको अपना मुख्य आहार वनानेकी सलाह देकर भारी गलती कर रहे हैं। इस गलतीकी हमें अकसर कड़ी सजा मिली है।

वहुतोंका खयाल है कि खजूर और अंजीर हमारे दांतोंको नुकसान पहुंचाते हैं। जो खजूर और अंजीर हम खाते हैं वे सुखाये हुए होते हैं, अतः अपने प्राकृतिक रूपमें नहीं होते। हो सकता है कि गरम देशोंके सुखाये हुए फलोंमें शक्करका अत्यधिक होना हमारे दांतोंके लिए थोड़ा अहितकर हो, पर यह वात अधिक हानि करनेवाली है इसमें मुझे शक है। फिर गरम देशोंके फल हमारे लिए अनिवार्य नहीं हैं, उनकी सिफारिश तो मैंने महज इसलिए की है कि इससे हमारे दस्तरख्वानपर खासकर जाड़ेके दिनोंमें इस तरहकी और चीजें रखी जा सकती हैं, और यह हमारी जीभको ही नहीं, मन और आंखोंको भी वहुत भाता है। गरम देशोंके ताजा फलों—संतरे, मौसंवी आदिके खिलाफ तो यह एतराज उठाया ही नहीं जा सकता।

निश्चय ही हमारे फल आज धरतीकी अयाचित देन नहीं हैं, हम उन्हें बनावटी विधियोंसे पैदा करते हैं। फिर भी वे प्रकृतिकी ऐसी देन हैं जो अपनी स्वाभाविक दशामें, विना पकाये और नमक-मसाला मिलाये, रुचती हैं और इस कारण वनके फलोंकी तरह मजेसे खाए जा सकते हैं।

गरम देशोंके फल (खजूर, अंजीर, संतरे, वादाम आदि) हमारी जल-वायुसे भिन्न जल-वायुमें उपजते हैं, और खासकर दक्षिणके देशोंके लिए पैदा किये गये हैं, पर वे हमें कच्ची हालतमें रुचते हैं, इसलिए अप्राकृतिक आहार नहीं माने जा सकते। फलियां, आलू, दाल आदि खाकर हम प्रकृतिकी व्यवस्थासे जितनी दूर चले

जानेका अपराध करते हैं गरम देशोंके फलोंको खाना उसकी तुलनामें प्रकृतिके विधानका बहुत ही हलका उल्लंघन है।

दूध सदा कच्चा ही पीना चाहिए। उबालनेसे वह दुष्पाच्य हो जाता है। दही और मट्ठा भी इस्तेमाल किये जा सकते हैं।

जंगली और बगीचोंमें उपजनेवाले फल जहांतक हो सके कच्चे, बिना पकाये ही, खाने चाहिए। जब ताजा फल अलभ्य हों, तब सुखाए या पकाये हुए फल भी खाये जा सकते हैं।

फलोंको आगपर पकाने या उनका अचार-मुरब्बा बनानेमें शक्करका उपयोग बहुत ही कम करना चाहिए। कृत्रिम विधिसे बनाई हुई शक्कर (फलोंके रसमें भरी प्राकृतिक शक्कर नहीं) पेटके लिए बहुत ही हानिकर है। कच्ची या लाल शक्कर अवश्य सफेद शक्कर और मिश्रीसे अच्छी होती है।

खजूरको हम दूध आदिको मीठा करनेके काममें ला सकते हैं। शहद रोटीके साथ खाया जा सकता है।

खाना धीरे-धीरे और खूब चबाकर खाना चाहिए। जिस भोजनमें राल अच्छी तरह मिली हो उसे आमाशय ज्यादा अच्छी तरह पचा सकता है।

आगपर पकाये हुए खाद्योंकी अपेक्षा फल स्वभावतः धीरे-धीरे खाये जाते हैं। हम सदा सब बातोंमें प्रकृतिका अनुसरण करते रहें तो हमारा हर काम अपने आप ठीक तौरपर होगा।

मांसाहारसे प्रचलित निरामिषाहार (हरी तरकारियां, फलियां, रोटी और कोई फल) पर जाना बहुत ही कठिन है, क्योंकि कुछ ही दिनमें अखरोट-बादाम आदिमें रहनेवाली चिकनाईकी इच्छा जोरोंसे होने लगेगी। कुछ दिनोंमें और तरहके कष्ट, बेचैनीकी अनुभूति भी होगी। यद्यपि मांस-मद्यके आहारसे उत्पन्न

विकृतिसूचक लक्षण विदा हो जाएंगे। यही कारण है कि बहुतेरे निरामिषाहारको अधिक दिन चला नहीं सकते, और कुछ दिनोंमें फिर पुराने खान-पानपर आ जाते हैं। पर आगपर न पकाये हुए फल, खासकर मग्जोंके साथ मिलाकर खाये जायें तो पाचनका काम करनेवाले अंगोंका काम तुरत बहुत हलका हो जाता है, और पाचनशक्ति बहुत बढ़ जाती है। इस आहारसे दिमाग भी साफ हो जाता है और सारा जीवन बंधनमुक्त हलका-पुलका और प्रसन्नता-से भरा हुआ मालूम होने लगता है। अंतरमें सुख-स्वास्थ्य और आनंदकी ऐसी अनुभूति होने लगती है जो उसके पहले सर्वथा अज्ञात होती है। चूंकि अब शरीरको वे चीजें मिलती होती हैं जो उसके पोषण और बाढ़के लिए आवश्यक हैं इसलिए तन-मनमें शीघ्र ही एक सुखद स्फूर्तिकी अनुभूति होने लगती है, और बल ओजकी नई अनुभूतिके साथ-साथ जीवनमें एक नए, अननुभूत आनंदकी लहरें उठने लगती हैं।

रही हमारी सिर चढ़ाई हुई जीभकी बात। सो वह तो अभ्याससे कुछ दिनमें नितांत स्वादरहित, बल्कि शराब और तंबाकू-जैसी अति अरुचिकर चीजोंमें स्वाद पाना सीख जाती है।

सच तो यह है कि प्रकृति फलको, जिसे ईश्वरीय तेजके प्रतीक स्वयं सूर्यने उगाया-बढ़ाया, जो स्वाद प्रदान करती है, ऊंचे-से-ऊंचे दरजेकी पाकविद्या भी रोटी-चावल, साग-भाजीमें वह स्वाद पैदा नहीं कर सकती।

कोई आदमी थोड़े दिन भी अप्राकृतिक आहारकी इच्छाको दबा ले तो वह प्राकृतिक भोजनमें जो राजसी पकवानोंसे भी बढ़-कर और सच्चा स्वाद है उसका मजा लेना सीख जायगा। वह चाहे तो सदा केवल कच्चे या स्वयं पक्के फल खाकर रह सकता

है, उसकी जीभ उससे कोई दूसरी चीज न मांगेगी, और फलोंके दिव्य स्वादकी दिन-दिन अधिकाधिक रसिया होती जायगी, यहांतक कि पुरानी रहन-सहनको फिर अपनाना उस आदमीके लिए अति कठिन हो जायगा। यही कारण है कि जो लोग पुराने ढंगके निरामिषाहारपर बड़ी कठिनाईसे टिकाये जा सकते हैं वे रसदार और गिरीदार फलोंका आहार एक बार आरंभ करके फिर बड़े चावसे उसका व्रत लिए रहते हैं।

पर इस आहारकी सलाह देते हुए मुझे यह बात एक बार फिर कह देनी होगी कि हमारे आहारमें यह परिवर्तन प्रकृतिके आदेशके जितना ही अधिक अनुकूल होगा उतना ही उन शोधक उभारोंकी अधिक संभावना होगी जो रोगसे छुटकारे और स्वास्थ्यकी प्राप्तिके बीचकी मंजिल माने जाते हैं। वे अनेक रूपोंमें प्रकट हो सकते हैं—हाथ-पांव या जोड़ोंके दर्द; क्षणिक अवसादकी या और किसी शक्लमें। पर ये उपद्रव सदा शुभलक्षण होते हैं। वे इस बातका प्रमाण हैं कि शरीरके शोधनकी रोगके कारणरूप विषके बाहर करनेकी क्रिया पूरे वेगसे चल रही है। इन शोधक उभारोंके बाद रोगीको आरामकी पक्की अनुभूति होती है और रोगी प्रकृतिकी कार्यविधिको थोड़ा भी समझता होगा तो इन उभारोंसे घबरायेगा नहीं।

कभी-कभी यह भी होता है कि यह सोलहों आने प्राकृतिक आहारक्रम चलानेपर कुछ ही दिनोंमें बड़े जोरकी भूख लगने लगती है, और उसे बुझानेके लिए बार-बार भोज्यपदार्थोंकी बड़ी मात्रा पेटमें पहुंचानी पड़ती है। यह भी एक सुलक्षण है; क्योंकि इससे यह साबित है कि शरीर अपने आपको बनानेका काम मुस्तैदीसे शुरू कर रहा है।

प्राकृतिक आहार आरंभ करते ही भूखका भड़क उठना ऐसी बात नहीं है जिससे कोई डरे, कुछ दिनोंमें वह फिर चली जायगी। और अंतमें अप्राकृतिक आहार-कालमें जितना खाना पड़ता था उससे बहुत कममें तृप्ति होने लगेगी और यह अल्प मात्रा बड़ी रुचि और स्वादके साथ खाई जायगी।

मांके दूधको छोड़कर और जो भोजन प्रकृति मनुष्यको देती है सब ठोस शकलमें होता है। जानवरोंमें भी जो कच्चे रसदार घास-पौधे या फल खाकर रहते हैं, बहुत ही कम पानी पीते हैं, एक जातिके हिरन (रो) तो पीते ही नहीं। मुमकिन है, मनुष्य भी आरंभमें अपायी, जल न पीनेवाला प्राणी रहा हो; क्योंकि किसी कृत्रिम साधन मात्रके बिना कुछ पीना उसके लिए अति कठिन है। पर आज वह शोरबे आदिके रूपमें कितना तरल खाद्य खाता और चाय, कहवा, शराब आदिके रूपमें कितना पेय पीता है; इसको हम सोचें तो आसानीसे समझ सकते हैं कि इस विषयमें भी वह प्रकृतिके प्रति कितना बड़ा अपराध कर रहा है।

प्राकृतिक चिकित्साके एक आचार्य श्राथकी चिकित्सा-पद्धतिमें केवल कुछ दिनोंतक जल और अन्य पेय पदार्थोंका त्याग करके ही रोग दूर किये जाते हैं।

केवल फल खाकर रहनेवालेको तो जल्दी ही यह अनुभव होने लगता है कि अब उसे प्यास नहीं लगती और पानी या और कुछ पीनेकी जरूरत नहीं है।

और दूसरोंको प्रकृति तो मांके दूधके सिवा केवल पानी ही पीनेके लिए देती है। फलोंके रस भी पिये जा सकते हैं।

हम आपको एक स्वादिष्ट शर्बत बनानेकी विधि बताते हैं—किसी पहाड़ी सोतेका एक बोतल जल लीजिए जिसमें लोहे

या किसी दूसरे उपयोगी खनिज द्रव्यका मिश्रण हो। उसमें एक नीवू और रसभरीका उतना रस निचोड़िये जितना उसे स्वाद बनानेके लिए आवश्यक हो। यंगवार्नमें त्यौहारोंपर यह पेय चिकित्सार्थियोंको दिया गया और उन्हें बहुत पसंद आया है। उसे इकट्ठे बैठकर पीना हमारे लिए सदा एक बढ़िया, आनंदजनक गोष्ठी होती है।

अतः अगर त्यौहारों, उत्सवोंपर पानगोष्ठीका आयोजन आवश्यक ही हो तो यह जरूरी नहीं है कि उस मौकेपर हम शराब ही पियें। सेब, संतरे, अंगूरके रससे भी किसीके आयुरारोग्यकी कामना या सम्मानकी रस्म अदा की जा सकती है। उत्साह और प्रसन्नता कुछ नशेका इजारा नहीं है।

फलोंका रस और शरवत सदा शुद्ध और सरल विधिसे बनाया हुआ होना चाहिए, जैसा कि स्त्रियां आम तौरसे घरोंमें बनाया करती हैं।

फलोंके जो शर्बत बाजारोंमें बिकते हैं और जिनका बड़े-बड़े नाम देकर विज्ञापन किया जाता है उनमें मिलावटका शक करने-की गुंजाइश जरूर होती है, गो उनमेंसे कुछ अकसर नेकनीयतीसे तैयार किये जाते हैं।

मांस, नमक और मसालेके आहारसे हमें आज जो अप्राकृ-तिक प्यास लगती है उसे बुझानेके लिए हमें तीक्ष्ण, उत्तेजक पेयों-की आवश्यकता होती है। हमारा ढीला-ढाला बेदम नाड़ी-संस्थान भी कभी-कभी उत्तेजना मांगता है पर उत्तेजित किये जानेके कुछ देर बाद वह अपने आपको अधिक अशक्त पाता है। इसी तरह मनुष्य शराब-ताड़ी, चाय, कहवेका आदी बना। मैं समझता हूं, इस बातको साबित करनेकी जरूरत नहीं है कि शराब प्रकृतिके

किस तरह विरुद्ध है और इस पिशाचीने मानव-जातिपर हर शक्लमें कैसी आफतें ढाई हैं।

शराव ज्यादा पीनेसे जितनी हानि करती है थोड़ी मात्रामें लेनेसे अवश्य ही उसकी तुलनामें कम नुकसान करती है। जो डाक्टर यह मान लेते हैं कि जौ या अंगूरकी शराव थोड़ी मात्रामें दी जाय तो कोई हानि नहीं करती, वल्कि शक्तिवर्धक होती है, और यह मानकर अपने रोगियोंके लिए उसकी तजवीज करते हैं, वह अति शोचनीय भूल करते हैं। शरावसे पैदा होनेवाली थोड़ी-सी वनावटी उत्तेजना भी जो कुछ देर वाद उससे कहीं अधिक सुस्ती—शिथिलता पैदा कर देती है, तंदुरुस्त आदमीके लिए भी अति हानिकर है, रोगीके लिए तो और भी अधिक हानिकर होनी चाहिए।

पुरुष आज शराव और बीड़ी-सिगरेटके अत्यधिक सेवनसे अपने स्वास्थ्यकी जो हानि कर रहे हैं स्त्रियां उसकी वही हानि कहवा पीकर करनेकी कोशिश कर रही हैं। कहवा आज हमारे नारी-समाजमें वहुत अधिक रोग-क्लेशका कारण हो रहा है। जवतक इस व्यसनके पंजेसे अपने आपको छुड़ा न लें तवतक कोई भी स्त्री सच्चे स्वास्थ्यके रास्तेपर नहीं लग सकती। जौ-गेहूंके सत्तसे वनाया हुआ कहवा स्वभावतः असली कहवेके जितना हानिकर नहीं होता। पर इस तरहके कहवेका इस्तेमाल भी धीरे-धीरे घटाकर अंतमें विल्कुल वंद कर देना इष्ट है; क्योंकि तरल खाद्यकी अधिक मात्रा सदा हानिकर होती है।

ताजा, रसदार फल जितना ही अधिक खाया जायगा पानी और पतली चीजोंकी इच्छा उतनी ही घटती जायगी। शरावके व्यसनका तो एकमात्र इलाज प्राकृतिक आहार है।

प्राकृतिक जीवनके विरोधियोंके पास तरह-तरहकी शंकाएं और आपत्तियां हैं। एक साहब पूछते हैं, अगर दुनियाके सारे लोग फिर प्राकृतिक ढंगसे जीवन बिताने लगें तो इतने सेब-संतरे, बादाम-अखरोट आयेंगे कहांसे ? दूसरे महाशयको यह चिंता सता रही है कि ये इतने बूचड़, मोची, नानबाई, पंसारी आदि क्या करेंगे जो उस दशामें बेरोजगार हो जाएंगे।

हर आदमी जो आज प्राकृतिक आहारपर रहना चाहता हो उन चीजोंको आसानीसे पा सकता है जो उसके पोषणके लिए जरूरी है।

फिर भी फलोंकी मांग बढ़ जाय तो उनकी उपज आसानीसे बढ़ाई जा सकती है। जो जमीन आज चरागाह और उन चीजोंके उपजानेमें, जो मनुष्यके लिए बेकार ही नहीं हानिकर भी हैं (तंबाकू, शलजम, आलू, अनाज आदि), आज फँसी हुई हैं वह फल उपजानेके काममें लाई जायंगी।

आज तो राजमार्गोंके आसपासकी और बंजर, बेकार जमीन ही फलोंके पेड़, बाग लगानेके काममें लाई जाती है। जंगली फलों, बेर-करौंदे, रसभरी आदिकी झाड़ियां घास-पात समझी जाती हैं और खोद-उखाड़कर फेंक दी जा रही हैं।

सच पूछिये तो मनुष्य अपने जीवन-क्रम, अपनी रहन-सहनमें प्रकृतिनिर्दिष्ट पथसे जितना ही दूर हटा है, और सभ्यता तथा विज्ञान जितना ही आगे बढ़े हैं, उसकी दशा उतनी ही बिगड़ गई है, और वह फ़िर प्रकृतिकी ओर जितना बढ़ेगा, उसी अंशमें उसकी दशा सुधरती जायगी। मानव-जीवनके आदि युगमें तरह-तरहके धंधे-पेशे नहीं थे और मनुष्य सुखी थे। आज यह स्थिति हो जाय कि वे हमारे लिए फ़िर बेकार हो जाएं तो सभी मनुष्य फ़िर दुनिया-

के सुख भोगने लगें गो यह वात वहुतोंको अनहोनी-सी लगेगी।

मैं हरएक फलाहारीसे प्रार्थना करूंगा कि वह अब भी फलोंका उत्पादन वढ़ानेके लिए जो कुछ उसके किये हो सकता हो वह करे।

मनुष्यका पाचन-यंत्र अपनी बनावट और पुरजोंकी तरतीबके विचारसे केवल फलाहारके उपयुक्त है, अतः केवल फल ही उसे आसानीसे और पूरी तरह पच सकता है।

जो आदमी केवल फल खाकर रहता है उसके शरीरमें विजातीय द्रव्य अथवा मलकी वृद्धि तुरत रुक जाती है, और पाचनका काम करनेवाले अवयव संचित विजातीय द्रव्य बाहर निकालनेका काम ज्यादा मुस्तैदीसे करने लगते हैं, फल इस शुद्धि-की क्रियाको उत्तेजन देता है।

कच्चा या अपने आप पका हुआ फल कितनी आसानीसे पच जाता है—और उसमें आरोग्य तथा जीवनदानकी कैसी अद्भुत शक्ति है इसका विचार करनेसे यह वात स्पष्ट हो जाती है कि रोगोंको दूर करनेमें फलाहारसे कितनी मदद मिलेगी।

फलाहारसे मिली हुई सफलता निस्संदेह आश्चर्यजनक है। उसकी वदौलत अकसर ऐसे रोगियोंको भी स्वास्थ्यकी पुनः प्राप्ति हुई है जिनकी सारी जीवनशक्ति समाप्त दिखाई देती है और नैराश्यके सिवा और कुछ शेष नहीं जान पड़ता।

तब भी क्यों हम फलकी उपेक्षा कर सब तरहके अस्वा-भाविक खाद्यों और दवाओंका सहारा लेते हैं?

हर एक जानवर बीमार होते ही खाना छोड़ देता है।

रोगकी अवस्थामें मनुष्यको चाहिए कि अपना

भोजन जितना घटा सकता हो घटा दे। कम-से-कम उसे इतना तो करना ही चाहिए कि जब पेट माँगे, यानी जब जोरकी भूख लगे तभी खाय।

बीच-बीचमें एक-दो वक्त कुछ भी न खाना स्वास्थ्यके लिए अति हितकर है।

उपवासकी बड़ाई, हजरत ईसाने भी की है। उन्होंने कहा है—"फिर भी यह चीज प्रार्थना और उपवासके बिना नहीं जाती।"

बहुतोंका खयाल है कि जब वह बीमार हों और भूख न लगी हो तब भी उन्हें पेटमें कुछ खाना ठूंस ही लेना चाहिए, जिससे शरीर ज्यादा कमजोर न हो जाय। पर यह धारणा एक घातक भ्रम है।

जब पेट खाना नहीं मांगता तब वह उसे पचानेके काबिल नहीं होता। ऐसी दशामें बिना भूखके जो भोजन उसमें डाला जाता है वह उसके लिए भाररूप हो जाता है। यह बात बुरी तो हर वक्त है, पर बीमारीकी हालतमें खास तौरसे हानिकर होती है। कभी-कभी तो खतरनाक भी हो जाती है। खानेका अधिक आग्रह तंदुरुस्त आदमीसे भी नहीं किया जाना चाहिए। बीमारसे तो हरगिज नहीं करना चाहिए। अपने बच्चोंको हृष्ट, पुष्ट देखनेके लिए बेचैन माताएं इस विषयमें उसका अहित करनेका अधिक पाप न करें तो बहुत अच्छा हो।

बनावटी भोजनको जरूरतसे ज्यादा खा लेनेका खतरा सदा रहता है। पर प्राकृतिक आहार (कच्चा और पेड़पर पका हुआ फल) में प्रकृतिने ऐसा प्रबंध कर दिया है कि उसे जरूरतसे ज्यादा

खा लेना आसान नहीं है। अत: बीमारीकी दशामें केवल फल खाया जाय तो उसके अधिक खा लेनेका उतना डर न होगा।

प्राकृतिक जीवन-क्रमका वर्णन करनेमें अबतक मेरा उद्देश्य यह बताना रहा है कि मनुष्यके भौतिक जीवन, उसके शरीरको इससे क्या-क्या लाभ हो सकते हैं। मैंने यह बतानेकी कोशिश की है कि जिन अवस्थाओंको हम रोग कहते हैं प्रकृतिकी ओर लौटनेकी साधना—उसके बताये हुए रास्तेपर फिरसे चलनेसे वे किस तरह बचाई और दूर की जा सकती हैं।

पर प्रकृतिमें हर चीजका एक दूसरेसे पूरा मेल, लगाव है, और मनुष्यमें भी देह, मन और आत्मा एक दूसरेसे अलग नहीं किये जा सकते। देह मन और आत्माका धारण-पोषण करती है, और वैसे ही मन और आत्मा भी देहपर सदा अपना असर डालते हैं।

परमात्माने मनुष्यको सर्वथा स्वस्थ और सुंदर ही नहीं, नितांत नेक और भला भी पैदा किया था। वह संपूर्ण सृष्टिका शिरोमुकुट है। स्वयं ज्ञानरूप और सद्रूप परमात्माकी सर्वश्रेष्ठ कृति शरीर, मन और आत्माकी खोटखामियोंसे भरी हुई नहीं हो सकती।

मनुष्यका मन आज सब प्रकारकी पापमय वासनाओंका आगार हो रहा है। वह अपनी सारी शक्ति और साधनोंसे उनसे लड़ता है, पर बार-बार उनसे हारकर पापके गढ़ेमें गिरता है। इन कुप्रवृत्तियोंपर विजय पानेके लिए वह अध्यवसाय और प्रयत्न भी अपनी सारी शक्ति लगाकर बारंबार करता है, पर हर बार हार खाता और उनके अधीन होता है। अत: अगर परमेश्वरने इनके साथ ही उसे सिरजा है—ये पापकी ओर ले जानेवाली प्रवृत्तियां और वासनाएं उसका स्वभाव हैं—तो वह खुद भला और नेक न

होगा; वह खुदा न होकर शैतान होगा जिसे पुण्यसे नहीं बल्कि पापसे प्रसन्नता होती है। पर वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। मनुष्यका पापमय होना उसके अपने प्रकृति-विरोधी जीवनक्रमका फल है। एक मना की हुई चीजको खा लेना—प्रकृतिनिर्दिष्ट पथसे च्युत होना—ही तो स्वर्गसे उसके पतनका कारण है?

मिसालके तौरपर, मुक्त, अबाध प्रकृतिमें पशु-पक्षियोंका नियम केवल संतानोत्पादनके लिए ही मैथुन करना है। गर्भ-धारणके बाद वे खुद तो यह क्रिया बंद कर ही देते हैं, कोई उन्हें किसी भी उपायसे इसके लिए मजबूर भी नहीं कर सकता। ठीक यही हाल मनुष्यका है। प्रकृतिके आदेशानुसार जीवन बिताकर वह ज्यों-ज्यों तन-मनसे स्वस्थ होता जाता है त्यों-त्यों व्यभिचार और दूसरे पापोंसे बचना उसके लिए आसान होता जाता है। यही नहीं, कुछ दिनोंमें उससे उनका होना सर्वथा अशक्य हो जाता है। जब वह यह स्थिति प्राप्त कर लेता है तभी सच्चे अर्थमें सुधरा हुआ कहा जा सकता है।

आदि युगमें मनुष्यको मन और आत्माका पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त था। उस स्थितिसे वह जितना भी हटा, गिरा है, सब शरीरकी विकृतियोंके कारण हुआ है। विजातीय द्रव्य सारी इंद्रियों, अंगोंको नुकसान पहुंचाते हैं—उन अंगोंको भी जो मन और आत्माको देह-से मिलाते हैं। पर आज किसीके दिमागमें यह बात नही घुसती कि प्रकृतिके नियमोंके अनुसार शरीरकी सम्हाल रखकर हम बौड़मपन, पागलपन, अन्यमनस्कता, उदासीनता, बदमिजाजी, विषाद रोग, चिंताधिक्य, विषय-लोलुपता, जवानीकी कुचालों, बुरी आदतों, पाप-अपराधकी प्रवृत्ति, काम-क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष, दूसरोंका बुरा चाहना आदि मानस दोषोंको दूर भगा सकते हैं।

जो हो अगर साथ-साथ शरीरकी भी, प्राकृतिक विधिसे वैसी ही सम्हाल न रखी जाय तो नीति, शिक्षा और मन आत्माके संस्कारके लिए किया हुआ सारा श्रम व्यर्थ जायगा, वल्कि हो सकता है उससे हमारी दशा और बुरी हो जाय।

यूनानके पुराण हमें 'डानेइदीज'की कथा सुनाते हैं। ये डैनेअस नामक राजाकी वेटियां थीं। वापके आदेशसे इन्होंने अपने पतियोंको सुहागरातमें ही कतल कर दिया। इस अपराधका दंड उन्हें यह दिया गया कि मृत्युके वाद प्रेतलोकमें छलनीमें सदा पानी भरती रहें।

जो लोग आज मनुष्यको प्रकृतिकी ओर वापस जानेके रास्ते-पर लगाए विना ही उन्हें अधिक भला और सुखी वनानेकी कोशिश कर रहे हैं वे भी डानेइदीजका ही काम कर रहे हैं। वे भी छलनीको हमेशा पानीमें डुवो रहे हैं जो कभी भरने-की नहीं।

वेशक वे सारे विधानकार और लोकोपकारव्रती, जो प्राकृ-तिक जीवन-क्रमके महत्त्वके विपयमें विलकुल कोरे हैं, अकसर केवल वुराईको वढ़ानेका ही पुण्य कमाते हैं। मिसालके तौरपर हम वेश्यावृत्तिके विरुद्ध, जो एक खुली वुराई है, लड़ते हैं और इससे गुप्त पापकी वृद्धिमात्र करनेका फल पाते हैं, जो प्रकट वेश्यावृत्तिसे ज्यादा खराव और खतरनाक है।

दुनियाकी सारी वुराई, सारा पाप, जो आज मानव-जातिके लिए भयानक दैत्यरूप हो रहा है, नष्ट किया जा सकता है, पर केवल एक ही चीज हमें इसका वल-सामर्थ्य दे सकती है—प्रकृति-की ओर लौटना।

वाइविल कहती है—"इस प्रकार ईश्वरने मनुष्यको अपने

स्वरूपमें उत्पन्न किया। उसने ईश्वरके स्वरूपमें उसे उत्पन्न किया।"

परमेश्वर प्रेमरूप है और मनुष्य इस विषयमें उसकी समता करता है—उसका प्रतिरूप है। भगवान और अपने भाइयोंको प्यार करना ही आरंभमें मनुष्यका स्वभाव था।

मनुष्य जब प्रकृतिनिर्दिष्ट पथसे च्युत हुआ तो उसके फल-रूपमें उसे जो शारीरिक दुःख-दर्द मिले उनके साथ-साथ उसकी आत्मापर भी मलके छींटे पड़ गये। विषय-सुखकी वासना बहुविध बीभत्स रूपोंमें प्रकट हुई—कामुकता उनमें सबसे बड़ी बुराई थी। मनुष्यका प्रेम मलिन, दूषित हो गया। उसके मानसमें द्वेषका अंकुर उगा और द्वेषसे ईर्ष्या, दूसरोंका बुरा चाहनेकी वृत्ति और परमेश्वर तथा अपने बंधु मानव-संतानोंके प्रति किए जानेवाले सारे पापोंका वंश बढ़ा। परमेश्वरकी प्रतिभा उसमें अधिकाधिक लुप्त होती गई।

प्रकृतिके राज्यमें हम देखते हैं कि सभी मांसभक्षी प्राणी क्रूर हिंस्र स्वभावके होते हैं, और घास-पात खानेवाले पशु सीधे और शांतिप्रिय होते हैं। बिना पूंछके बंदर (एप) और कुत्तेको ज्यों ही मांसकी खूराक मिलने लगती है वे कटहे और खतरनाक हो जाते हैं। पुच्छहीन बंदर तो कुछ दिन इस खूराकपर रहते ही हद दरजेका लंपट हो जाता है।

अतः प्रकृतिकी बताई विधिसे जीवन विताना केवल पेटका प्रश्न नहीं है। उसके जरिए हम केवल अपनी देहका दुःख-दर्द ही दूर करना नहीं चाहते, बल्कि इससे उच्चतर लक्ष्योंको—उस वस्तुको भी प्राप्त करना चाहते हैं जो सदाचार और धर्मका चरम लक्ष्य है। इस पथके अनुसरणसे मनुष्यको परमेश्वरकी प्रति-रूपता पुनः अधिकाधिक प्राप्त होती जायगी।

मांस और शराब

प्रकृतिने मनुष्यको मांस खानेवाला शिकारी जानवर नहीं बनाया है।

मनुष्यको कच्चा मांस अच्छा नही लगता, उसे उसके वनाने, पकाने, वघारने, छौंकने और उसमें मसाला मिलानेकी जरूरत होती ही है। उसे मांसके साथ और कुछ न सही नमक तो चाहिए ही।

जव हिंसक पशु अपना शिकार मार लेता है तव वह उल्लाससे भर जाता है और ताजा खून पीकर मतवाला-सा हो जाता है।

पर मनुष्य, जो पूर्णतया पशु नहीं हो गया है, हत्या करनेसे घवराता है। जव वह पशुको, जिसे मनुष्यका सजातीय ही कहना चाहिए, मारनेके लिए खूंखार अस्त्र उठाता है तो उसका विवेक उसे हमेशा ऐसा करनेसे रोकता है। मरते हुए पशुका छटपटाना देखकर कठोर-से-कठोर हृदय पिघल जाता है। मांस खानेवालोंको यदि जानवरको स्वयं अपने हाथों मारकर खाना पड़े तो अधिकांश न खाना ही पसंद करेंगे। कच्चा, विना पका मांस अथवा कसाईकी दूकानमें रखी पशुकी लाश देखकर सभीका मन घृणासे भर जाता है। अतः अनेक स्थानोंमें मांसको खुला ले जानेके विरुद्ध कानून वन गये हैं।

मनुष्य इस संवंधमें भी प्रकृति, अपने विवेक, रसना, घ्राण-शक्ति, आंख और नैसर्गिक वुद्धिकी वात क्यों नहीं सुनता? क्या ऐसा कर सकना वहुत सरल नहीं है?

मनुष्य इस प्रकारके वैज्ञानिक अनुसंधानमें कि वह पशुकी मांस-भक्षी जातिका है या सर्व-भक्षी सूअर, भालू आदि जातिका है, क्यों अपनी शक्ति व्यर्थ खर्च करता है? पशुकी ये दोनों ही

जातियां तो मनुष्यको सदासे क्रूर और निर्दयी प्रतीत होती हैं और इस नाते वह इनसे सदा घृणा करता रहा है।

मांस मनुष्यके लिए उचित भोजन है या नहीं इस प्रश्नकी छान-बीन मनुष्य उन सरल साधनोंसे नहीं करता जो प्रकृतिने उसे दिये हैं। वह दांत और आंतका अध्ययन करता है, मांसके अवयवोंको जाननेकी कोशिश करता है—यह मनुष्यकी अस्वस्थ ज्ञान-पिपासाका दूसरा प्रमाण है।

अनेक विद्वानोंने, जिन्हें मांस खाना निश्चय ही बहुत प्रिय रहा है, कहा है कि मनुष्यके दांतोंको देखकर कहा जा सकता है कि मनुष्य अंशतः मांसाहारी है और आज भी ऐसे बहुतसे लोग हैं जो उनके इस रागको बिना समझे-बूझे अलाप रहे हैं।

जो कुछ भी हो अपने शिकारको पकड़ने और फाड़नेके जैसे नाखून और दांत शिकारी जानवरोंके होते हैं वैसे मनुष्यके नहीं हैं। इसी तरह मांस-भक्षी पशुकी पाचन-प्रणाली भी मनुष्यकी पाचन-प्रणालीसे सर्वथा भिन्न होती है।

शिकारी जानवर, मसलन कुत्ता, मांसके साथ-साथ हड्डी भी खा सकता है, पर मनुष्य तो ऐसा नहीं कर सकता। इससे यह साबित होता है कि मनुष्यका आमाशय इन पशुओंसे सर्वथा भिन्न प्रकारका है।

मनुष्यके दांत और आंखकी, फल और शाक खाकर रहने-वालोंकी और मांस-भक्षी तथा सर्व-भक्षी पशुओंके दांतों और आंखोंसे तुलना करनेपर प्रतीत होता है कि मनुष्य शिकारी पशुओं-की जातिका न होकर फल और शाक खानेवाली जातिका ही है। हाथी और चूहोंके दांतोंमें जो साम्य है उससे अधिक साम्य मनुष्य और मांस-भक्षी तथा सर्व-भक्षी पशुओंके दाढ़ और आंखोंमें नहीं

है। मनुष्यकी आंतोंकी लंबाई भी बताती है कि मांस उनके अनुकूल नहीं है।

यदि प्रकृतिने मनुष्यके लिए मांस नहीं बनाया है तो उसका उपयोग मनुष्यके लिए अवश्य ही क्षतिकारक है। मनुष्य मांस खाकर स्वस्थ और मजबूत नहीं बनता वरन् बीमार पड़ता है और कमजोर होता है।

कहा जाता है कि मनुष्यको मांस खाना चाहिए, क्योंकि उसमें चर्बी होती है जो आदमीको सर्दीसे बचाती है। अगर यही बात है तो शरीरमें आवश्यक गर्मी स्नेहप्रधान मेवे खाकर क्यों नहीं उपजाई जाती? इन मेवोंमें मनुष्यके लिए प्राकृतिक चिकनाई पाई जाती है और उनमें वे सब चीजें नहीं होतीं जो मनुष्यके लिए हानिकारक और जहरीली हैं।

ग्रीनलैंडमें न शाक होते हैं न मेवे, जिससे वहांके निवासी, जिन्हें एसकिमो कहते हैं, पोषण पा सकें। अतः वे लोग उत्तरी ध्रुवकी वह कड़ाकेकी सर्दी मांस और पशुकी चर्बी खाकर बर्दाश्त करते हैं। यह हो सकता है कि चर्बीके आहारके कारण एसकिमो उत्तरकी सर्दीमें रह पाता है, पर उसके इस अप्राकृतिक भोजनके कारण उसका शरीर कुरूप और भद्दा हो गया है और उसका मस्तिष्क बिलकुल जड़।

लोग अक्सर अपने अप्राकृतिक जीवन, मांस और शराबकी आदतको खराब मौसमके बहानेके पीछे छिपाते हैं। मौसमकी आड़ लेकर वे प्राकृतिक जीवनके विरुद्ध बड़े-बड़े पाप करते हैं, मौसम उनका विवेक दबा देता है। फलाहार अप्राकृतिक खाद्योंकी अपेक्षा मनुष्यको सर्दी और गरमी सहनेकी अधिक शक्ति देता है।

ऐसा माननेकी तो गुंजाइश नहीं है कि मनुष्यको, जो पृथ्वीका सर्वाधिक विकसित प्राणी है, पृथ्वीके एक अंशपर ही रहनेके लिए बनाया गया था। बाइबिल कहती है: "पृथ्वीको परिपूर्ण कर।"

पर सारी पृथ्वीको भरनेके लिए, पृथ्वीके प्रत्येक भागमें रहनेके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपने प्राकृतिक भोजनको छोड़े।

उष्ण कटिबंधके उष्णतम भाग और उत्तरके शीततम भाग मनुष्यके रहने योग्य नहीं हैं। पर यदि यह समझा जाय कि प्रकृतिने मनुष्यको गरम जगहमें रहनेके लिए बनाया है तो भी उसे अपना अप्राकृतिक जीवन छोड़कर प्राकृतिक जीवन ही व्यतीत करना आरंभ करना चाहिए। इससे उसकी नैसर्गिक बुद्धि अधिकाधिक जागृत होगी और वे गरम जगहमें रहना पसंद करेंगे। पर वास्तवमें शीतोष्ण कटिबंध ही मनुष्यके रहनेके अधिक उपयुक्त हैं। अपने इस कथनपर मैं अधिक प्रकाश आगे डालूंगा।

मनुष्य ईश्वरकी प्रतिमूर्ति है। उसे इस पृथ्वीकी बादशाहत भलमंसाहत और दयालुताके भरोसे करनी चाहिए। जब वह अपने भोजनके लिए पशुकी हत्या करता है या उसकी हत्याका कारण होता है तो वह अपने हृदयके अंतर्नादके विरुद्ध चलता है। आज तो मनुष्य अपने इन बांधवोंके खूनसे अपने हाथ लाल कर रहा है। भोजन प्राप्त करनेके लिए किये गये इस पापके फ़लस्वरूप उसे बहुत कड़ी सजा भुगतनी पड़ेगी।

इस दृष्टिसे मांस खाना अप्राकृतिक रिवाज है, प्रकृतिकी

अवज्ञा है जिसका परिणाम वहुत वुरा और खतरनाक होना चाहिए। अप्राकृतिक मांस और अन्य अप्राकृतिक खाद्योंको खानेपर उनका ठीक पाचन नहीं हो पाता। इस तरह खाया हुआ मांस न पचनेपर पेटमें पड़ा सड़ता रहता है, सड़नसे उठा हुआ खमीर शरीर और उसके रक्तमें फैलता रहता है जिसकी वजहसे अनेक प्रकारकी सूजन उत्पन्न करनेवाली और वुरी-वुरी वीमारियां पैदा होती हैं।

ग्रीसकी पौराणिक कथाओंमें ओरेस्टेसकी कथा आती है, जिसमें उसने कोई भयानक हत्या की थी और इसका वोझ उसकी आत्मापर वरावर पड़ा रहता था, उस हत्याका वदला लेनेके लिए इरिनिस नामक देवता उसपर वरावर सवार रहता था। आज मनुष्य-जातिका विवेक अपनी की गई हत्याओंके वोझसे दवा पड़ा है और उसे पृथ्वीपर कहीं सुख और शांति नहीं मिल रही है।

मांसकी गरमी और उसे स्वादिष्ट वनानेके लिए उसमें डाले गये मसाले और नमक हमेशा नशीले पेय और शराव पीनेकी इच्छा पैदा करते हैं। इस प्रकार मांस खाना, छिपे हुए शैतान, शरावके घरका दरवाजा खोल देता है। शराव मांसका भाई है, जो निहायत ही पाजी और शरारती है और हमेशा अपने भाईके साथ रहता है। शराव तनिक-सी पी जाय या वहुत-सी, पर क्या किसीसे भी इसका हानिप्रद और खतरनाक रूप छिप सकता है?

शराव स्नायुओंको उत्तेजित करता है और इसको पीने-वाला सुंदर सपनोंकी मायामें पहुंच जाता है। पर जव नशा उतरता है तो उसकी प्रतिक्रियास्वरूप यह दुनिया उसे नीरस

और शून्य लगती है, उसकी यथार्थता उसे कष्ट और पीड़ा पहुंचाती है। शराब पीनेवाले समझते हैं कि शराबसे उन्हें शक्ति मिलती है पर वास्तवमें वे धोखेमें रहते हैं। बनावटी तरीकेसे पैदा की गई उत्तेजना स्वास्थ्यके लिए अत्यंत हानिकर है। यदि शराबके क्षणिक प्रभावके भुलावेमें न पड़ा जाय तो यह तुरत समझमें आ जाता है कि शराब शरीरको बहुत कमजोर कर रही है और स्नायु खास तौरसे छिन्न-भिन्न होते जा रहे हैं। शराबसे आत्मा पतित और मस्तिष्क कमजोर होता है। फलतः मनुष्य पाप और दोषकी ओर अग्रसर होता है।

जो मांस नहीं खाता उसकी मानसिक वृत्ति सदा ऐसी रहती है कि उसे शराबका सुंदर किंतु क्षणिक, साथ ही मायावी स्वप्न-सुख भोगनेकी इच्छा नहीं होती।

पर यदि मांस शरीर और आत्माके लिए इतना हानिकारक है तो सवाल यह उठता है कि क्या बाइबिल और ईसाने मांसका विरोध नहीं किया है? क्या ही अच्छा होता यदि हम फिर अपने जीवनके प्रत्येक कार्यके लिए ईसा और बाइबिलसे अधिक-से-अधिक पथप्रदर्शन ग्रहण करते!

तौरेतके पुराने अनुवादोंमें अनेक भूलें हैं और कुछ तो इतनी भद्दी भूलें हैं कि उनसे मांसके संबंधके उपदेश उलटे अधिक अस्पष्ट हो गये हैं।

खुदाका बनाया पहला कानून यह है:

"देख, धरतीपर जितने दानेवाले पौधे हैं वह सब मैंने तेरे लिए उपजाये हैं; ये तेरे लिए मांस (भोजन) का काम करेंगे।"

इस प्रकार इस उपदेशमें हम देखते हैं कि इस कानूनसे मनुष्यको मांस खानेका हुक्म नहीं है।

यह कानून हर आदमीकी आत्मापर अंकित कर दिया गया था, और कोई दूसरा हुक्म अलावा इसके मनुष्यको नहीं दिया गया था। सर्वशक्तिमान् ईश्वरको मनुष्यपर शासन करनेके लिए एकसे अधिक कानूनकी क्या जरूरत हो सकती थी ?

अगर मनुष्यने ईश्वर[1] का वनाया यह पहला कानून माना होता तो दूसरे अन्य कानून और मनुष्यके वनाये आजतकके हजारों कानूनोंकी जरूरत ही न होती।

ईश्वरका वनाया यह पहला नियम वाइविलमें आगे चलकर फिर दुहराया गया है, उसमें एक रोक लगानेवाला वाक्य जोड़ दिया गया है और दंड देनेकी धमकी भी दी गई है :

"वागके हर पेड़के फल तू खुशीसे खा सकता है, पर ज्ञान, भले और वुरेकी समझवाले पेड़से पैदा हुएको न खाना। अगर तूने उसे खाया तो तुझे मौतकी सजा मिलेगी।"

भला ज्ञानका पेड़ क्या हो सकता है ? कहीं पेड़में भी भलाई और वुराईको समझनेकी ताकत होती है ?

शुरूमें जिस भाषामें और जिस समय वाइविल लिखी गई थी उसमें शव्दोंका वड़ा दारिद्रय था, उसमें उन वृक्षों (पेड़)के लिए जो पृथ्वीमें अच्छी तरह गड़े थे, और उन वृक्षों (पशु) के लिए जो विकासोन्मुख होकर पृथ्वीसे अलग हो गए थे एक ही

---

[1]यदि मनुष्य प्रकृति-पथसे न हटा होता, वह गलत रास्ता न पकड़ता तो न उसे हत्या करनेकी इच्छा होती, न झूठ वोलनेकी जरूरत, न वह चोरी करता और न अन्य कोई भी अनैतिक कार्य। ऐसी दशामें उसे अपने अंतरकी उस आवाजको जगानेकी जरूरत नहीं होती जो उसे ईश्वर और अपने भाइयोंके विरुद्ध इन पापोंको करनेसे रोकती है।

१४

शब्द है 'वृक्ष'। पशु और वृक्षसे भेद करनेके लिए "ज्ञान", भलाई और बुराईकी पहचान आदि विशेषण लगाये गये हैं। वनस्पति-वर्ग और पशु-वर्गमें वहुत निकटका संबंध है। विज्ञान आजकी पौधों और पशु (अणुवीक्षण यंत्रद्वारा देखे जाने योग्य कृमि, मूंगा वनानेवाले कीड़े) के वीचकी सीमा निर्धारित नहीं कर पा रहा है। पर आज पशु और पौधोंमें खास फर्क यह समझा जाता है कि पशुमें अनुभव करने और समझनेकी शक्ति होती है।

इसलिए बाइबिलमें वृक्षोंसे पशुओंको अलग करनेके लिये "बुराई और भलाईको समझनेवाला" यह वाक्यांश जोड़ा है। बाइबिलमें पशुको एक जगह 'सजीव वृक्ष' कहा है, अर्थात् वृक्ष (प्राणी) जिसमें जीवन हो। अतः वाइविलमें यदि "भलाई और बुराई समझनेवाला प्राणी" लिखा होता तो ज्यादा सही होता और इस प्राणीसे जो यह समझ सकता है कि क्या बुरा है और क्या भला है, क्या हानिकर और क्या लाभदायक है, और जिसे मनुष्यकी तरह अनुभवकी शक्ति है कोई अन्य नहीं, पशु ही है। मनुष्यके पतनका आरंभ यहींसे हुआ, उसने पहला पाप यहींसे किया कि उसने पशु[1] का निषिद्ध मांस खाया।

इस विचारके विरुद्ध यहां प्रमाण इकट्ठे किये जायं तो वह एक लंबा लेख हो जायगा और यह करना मैं उचित नहीं

---

[1]तौरेतमें अनेक ऐसे स्थल हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि मनुष्यका पहला पाप यही था कि उसने मांस खाया था। आरंभमें लोग अपने इस पापको पहचानते थे और इससे वचनेकी कोशिश करते थे पर धीरे-धीरे वे फिसलते गये। अंतमें वे अपने इस पापका समर्थन करने लगे और यहां-तक समझने लगे कि मनुष्य ईश्वरकी ओरसे मांस खानेके लिए स्वतंत्र है।

समझता। हिंदू-धर्मके ग्रंथोंमें, जिनका अनुवाद जर्मन भाषामें भी सही-सही मिलता है, पशुका मांस खाना निषिद्ध ठहराया गया है।

प्रकृतिके प्रांगणकी ओर दृष्टिपात करनेपर ज्ञात होता है कि केवल मांस खानेवाले प्राणी ही हत्या करते हैं। प्रकृति मांसाहारीमें हत्याकी इच्छा प्रतिष्ठित करती है। मनुष्यने अपने पतनके बाद पहला या यों कहिए कि एक ही बुरा काम किया था, वह थी हत्या—भ्रातृ-हत्या। इसका अर्थ यही है कि मनुष्यके पतनका कारण मांसाहार है अन्यथा हत्याका यहां कोई अर्थ नहीं है।

मनुष्यके पतनके बादके प्रसंगोंमें चमड़ेका नाम आता है।

"आदम और उसकी पत्नीने चमड़ेके कोट बनाये और पहने।"

अगर मनुष्यने पशुओंको न मारा होता तो चमड़ा कहांसे मिलता? बाइबिल यह दिखाती है कि सुसभ्य आदमी किस प्रकार बहका। शुरूमें मनुष्य स्वर्गीय वायु-मंडलमें रहता था, वह केवल वही फल खाता था जो प्रकृति स्वतः उपजाती थी। मनुष्यके प्रकृतिपथसे पतनका आरंभ तभी हुआ जब उसने आखेट शुरू किया और आखेटके कारण ही उसका पतन हुआ। आखेटके परिणामस्वरूप मनुष्यने मांस खाया और चमड़ा पहना।

अब आदमी बीमार पड़ा और उस घोड़ेकी तरह अशांत रहने लगा जिसे उसका प्राकृतिक खाद्य घास न देकर साफ की हुई और बनाई हुई जई खिलाई जाती है और जिस अशांतिको दूर करनेके लिए उससे कठिन श्रमसाध्य काम लेना पड़ता है।

अब आदमीको काम करना पड़ा, उसने जंगल साफ किये और कृषियुगका आरंभ हुआ।

इस प्रकार आदमी जो खेती कर रहा है वह अपने कियेकी सजा भुगत रहा है।

"तू जमीनपर कहर लाया है, तू जिंदगीभर रोयेगा और इसका पैदा हुआ खायगा।"

"यह तेरे लिए कांटे और झाड़ियां भी पैदा करेगी; तू पसीने-पसीने हो जायगा तब कहीं जाकर तुझे तेरी रोटी मिलेगी।"

यह ईश्वरीय प्रकोप सारी दुनियापर छा गया। मनुष्यकी ओरसे बिना किसी प्रयासके, पृथ्वी पहले फल उपजाती थी। उसे किसी प्रकारकी मशक्कत नहीं करनी पड़ती थी पर आजका खेतिहर अपनी सारी मिहनतके बावजूद, खराब फसल, घास-फूसका रोना रोता है, चिंता और उत्सुकता उसके भाग्यमें लिख गई है।

फलोंके बदले अब मनुष्यको खेतकी जड़ी-बूटी (लेटूस, पातगोभी, हरी मटर आदि) खानी पड़ती है। यही उसकी सजा है।

"तू खेतमें पैदा की गई जड़ी-बूटी खायगा।"

जितनी भी चीजें आदमी मिहनतसे, खेती-बारी करके उपजाता है उसके स्वास्थ्यके लिए हानिकर हैं; वे उसकी ऐहिक प्रसन्नताकी घातिका हैं।

अन्नकी काश्तके बाद लोग अंगूरकी काश्त करने लगे और हानिकारक शराबका चलन चला।

"नोथ नामक व्यक्तिने खेती करनी शुरू की और उसने एक अंगूरोंका वाग लगाया।"

"उसने शराव पी और शराव पीकर मतवाला हो गया और अपने खेमेमें नंगा पड़ा पाया गया।"

"उसके एक लड़केने उसे नंगा पड़ा देखा और अपने दो भाइयोंको वताया।" आदि

इसके वाद व्यापार और कलाका रिवाज चला।

"और जिल्हा भी नंगी मिली और ट्यूवलकेन, जो तांवे और लोहेके कामका कारीगर था।"

गृहनिर्माणकला भी प्रचलित हुई। वेवीलोनियामें मीनार वनने लगी। और अनेक भाषाएं भी चल पड़ीं जिसके फल-स्वरूप भाषा-विज्ञान पैदा हुआ।

पर कष्ट धीरे-धीरे वढ़ा, मनुष्य अधिकाधिक गलतियां करने लगा, वह ईश्वर और प्रकृति-पथसे दूर होता गया। रोग, दुःख, अभाव, असंतोष और निराशा वढ़ती गई। इसीको लक्ष्य करके कविने गाया है :

"हम लोगोंकी उम्र साढ़े तीन वीसी है, यह वुद्धि और श्रम-वलसे चार वीसी भी वनाई जा सकती है पर उस मेहनतका फल व्यर्थ आयास और दुःखसे अधिक क्या है ?"

पर कभी-कभी ऐसे फरिश्ते और साधु-संत भी आते रहे हैं जिन्होंने मनुष्यके प्रकृति-पथसे हटने और मांस खानेके विरुद्ध अपनी वाणीका प्रयोग किया और साथ ही उन्होंने ईसाके अवतार होनेकी ओर संकेतमय भविष्यवाणी की।

तव इस दुनियाकी काली अंधेरी रातका अंत आया और

सुंदर प्रातःका आविर्भाव हुआ, दुनियाके बचावनहारका जन्म हुआ।

ईसा आदमके पतनके लिए प्रायश्चित्त करना चाहते थे, वह हमें प्रकृति और ईश्वरकी ओर पुनः लौटा ले जाना चाहते थे, वह मनुष्यके किये गए पहले पाप मांस-भक्षणको भी धो डालना चाहते थे। जबतक मनुष्य उससे मुक्त नहीं हो जाता वह ईश्वरकी भेजी हुई खुशीका स्वागत करने योग्य कैसे हो सकता है ?

ऐसी स्थितिमें ईसा मांस कैसे खा सकते थे ? ईसा सबसे अधिक मृदुता और दयाकी शिक्षा देते थे। तो क्या उन्होंने अपनी आत्मा और ईश्वरकी आवाजके विरुद्ध, मनुष्यको राक्षस बनानेवाला पशु-मांस खाया होगा, जिसे जबह करनेमें दयाको एकबारगी तिलांजलि दे देनी पड़ती है ? यह कार्य ईसाकी दयाका विरोधी होता, वह हत्याके पापसे मुक्त नहीं हो सकते थे। भला ईसा शरीर और आत्माको रुग्ण बनानेवाला पाप और दोषमें फँसानेवाला मांसका भोजन स्वीकार कर सकते थे ?

तौरेतके अनुवादमें की गई गलतीके समान ही बाइबिलके अनुवादमें भी गलती मिलती है। प्राचीन समयमें लोग मांस खानेके पापके प्रायश्चित्तस्वरूप देवताओंको शांत करनेके लिए पशुकी बलि दिया करते थे। इतिहासकारोंका कहना है कि एसेन जातिके लोग, जिनसे ईसा संबंधित थे, पशु-बलि नहीं देते थे। इससे यह आसानीसे समझा जा सकता है कि वे मांस भी नहीं खाते थे। धर्मशास्त्रियोंकी भी यही मान्यता है।

इसको इस तरह भी कह सकते हैं कि वे लोग पशुकी बलि नहीं चढ़ाते थे, मांस नहीं खाते थे। ईसा और उनके शिष्योंने कभी

कोई वलि नहीं दी। उन्होंने तो पशु-वलिका निषेध भी किया है।

"मुझे दया चाहिए, वलि नहीं।"

जिस किसीने वाइविलकी भावनाको समझा है और खास तौरसे तौरेतकी, जानता है कि ईसाने मांस खाना साफ-साफ मना किया है और इसमें शक और शुवहेकी जगह ही नहीं है कि ईसा मांस नहीं खाते थे।

तर्कके वच्चे सांपसे पैदा हुआ विज्ञान मनुष्यको आज भी उसी प्रकार पथ-भ्रष्ट कर रहा है कि जिस प्रकार इसके पिता सर्पने आदमको स्वर्गमें किया था। यह आज भी पढ़ा रहा है कि प्रकृति-पथका त्याग करनेसे मनुष्यकी आत्मा और शरीरको अनेक लाभ मिलेंगे।

अभी एक विद्वानने कहा है कि मनुष्यने परिष्कृत एवं वैज्ञानिक जीवन अपनाकर वड़ी उन्नति की है, और अंतमें वह देवताओंकी तरह अमर हो जायगा।

पर विज्ञान धोखा देने और भुलावेमें रखनेके सिवा अधिक क्या कर रहा है?

प्रत्येक स्थिरवुद्धि और निष्पक्ष व्यक्ति यह कहेगा कि मनुष्य अप्राकृतिक जीवनको अपनाकर देवता नहीं वन सकता, इसके विपरीत वह रोगी, दुःखी, पापी, पाजी, मूर्ख और सच्चे अर्थमें दानव ही तो वनेगा।

जव ईश्वरके वनाये कानूनकी अवहेलना करनेवाले विज्ञान-द्वारा कूट तर्कपूर्ण वैज्ञानिक आधारोंपर मांस-भक्षणका प्रतिपादन किया जाय तो हमें वहुत सजग रहना चाहिए।

ऐसी खतरेकी घड़ीके वास्ते हमें प्रकृतिकी आवाज सुननी चाहिए जो इस संवंधमें निश्चित चेतावनी देती है।

पर शराबके संबंधमें ईसाका क्या रुख था ? इस प्रश्नका उत्तर भी हमें पाना है।

तौरेतमें लिखा है :

"शोकातुर कौन है ? दुःखी कौन है ? चिंतित कौन है ? घबराहटसे भरा जीवन किसका है ? अकारण चोट किसे लगती है ? आंखें लाल किसकी रहती हैं ?"

"वे जो देरतक शराब पीते रहते हैं; वे जो नशीली शराबकी खोजमें रहते हैं।"

"उसका अभिमान करना उचित है जो शराबके चक्करमें नहीं पड़ता।"

"तू शराबको रौंद, पर उसे पी मत।"

"शराब पीकर मतवाला मत हो।"

'अंतिम भोज'के समय ईसाने कहा था :

"आज मैं तुम लोगोंसे कहता हूं कि अबके बाद मैं शराब नहीं पीऊंगा, और अब मैं अपने पिताके राज्यमें चलकर तुम लोगोंके साथ नई शराब ही पीऊंगा।"

नईका अर्थ है ताजी, जिसमें खमीर न उठा हो। नई शराब-का अर्थ है अंगूरका ताजा रस। इस अवतरणसे प्रतीत होता है कि इसलिए कि वे अति कठोर प्रतीत न हों और कहीं उससे जो कार्य[1] वे कर रहे थे उसमें व्याघात न पड़े, उन्होंने एक बारके लिए शराब पीनेका असाधारण कार्य कर दिया होगा। (ईसाका स्वभाव बड़ा मृदु था, वे लोगोंका आग्रह टाल न पाते थे) पर वे हमेशा अंगूरके रसकी प्रशंसा करते थे और शराबकी बुराई।

---

[1]इस घटनासे ईसाकी बुद्धिमत्ता और प्रेम-भावनाकी गहराई समझी जा सकती है।

कहा जाता है कि ईसाने सानाके विवाहमें वरातियोंके लिए शराव तैयार की थी। पर वहुत संभावना इसी वातकी है कि वह शराव मादक नहीं थी। यही कारण है कि शादीमें गये लोगोंने उसे वहुत पसंद किया था। आज भी फलोंके ऐसे अनेक रस वनाये जाते हैं जिनका स्वाद शरावसे हजार गुना अच्छा होता है।

अग्नि

मालूम नहीं किस कुसमयमें अग्निका आविष्कार करके मनुष्य प्राकृतिक जीवनसे इतनी दूर हट गया।

आगकी मददसे ही मनुष्य अनेक तरहके अप्राकृतिक भोजन शराव और दवाएं आदि वना सका। सुसभ्य जीवनके सारे साधनोंका, जो आरंभसे रोगोंको लिए आ रहे हैं, और हमारे आजके जीवनके सभी कष्टोंका, कारण अग्नि ही है।

इसलिए अग्नि ही मनुष्यके सारे कष्टोंका असली कारण है। पर आदमी आज अपने शत्रुको पहचान नहीं रहा है। वह समझता है कि अग्नि उसकी परित्राणवती है, उसकी वजहसे उसे सुख-संपदाएं मिली हैं! पर इस संवंधमें सत्य भावना भी जातिके प्राणोंमें सन्निहित और जाग्रत है। अनेक प्राचीन कथाओंमें अग्निका शत्रु एवं राक्षसोंकी भांति वर्णन है। शैतानकी तस्वीरमें शैतान आग उगलता दिखाया गया है। ग्रीसकी प्रोमोथिस-संवंधी पौराणिक कथामें वड़े चित्ताकर्षक एवं सुंदर रीतिसे वयान किया गया है कि मनुष्यका अग्निका आविष्कार देवताओंको कितना वुरा लगा और उन्होंने मनुष्यको इसके लिए कितना

कठोर दंड दिया और फिर किस प्रकार संसारकी सारी वदमाशियां एक-एक करके अग्निसे पैदा हुईं।

प्रोमोथिस (अर्थात् अग्रबुद्धि)ने स्वर्गसे अग्निको इसलिए चुराया कि उसकी सहायतासे मनुष्यको मांस जायकेदार लगने लगे। प्रोमोथिसके इस कार्यसे जेस नामक देवताको बहुत क्रोध हुआ और उसने प्रोमोथिसको काकेसस नामक पर्वतपर ले जाकर जंजीरोंसे बांध दिया। गीधोंने उसका कलेजा निकालकर खा लिया। पर उसको मिले वरदानके अनुसार कलेजा फिर निकल आया। गीध फिर झपटे और फिर कलेजा खा गए। इस प्रकार नया-नया कलेजा निकलता रहा और गीध उसे बराबर सताते रहते।

इस कथाके अनुसार आज भी अग्नि मनुष्यका कम अनिष्ट नहीं कर रही है। यदि मनुष्यके पास भूनने एवं रांधनेको अग्नि न होती तो उसके लिए मांस खाना अशक्य हो जाता। फिर पशुओंको पकड़ने और मारनेके औजार-हथियार भी बेकार हो जाते।

मैं पहले ही बता चुका हूं कि शराब और दवाएं अग्निकी ही सहायतासे बनती हैं। मैंने निश्चित रूपसे यह भी साबित कर दिया है कि सभी बुरी बीमारियां मांस, शराब और दवाओंसे ही पैदा होती हैं। मांसकी ही भांति अन्य खाद्योंको भी रांधनेसे रोग पैदा होते हैं।

गंदी हवा-सरीखे अन्य किसी कारणसे पशु बीमार न पड़ जाय तो हरा चारा और वनस्पतियां मिलते रहनेपर वह खूब स्वस्थ रहता है और उसकी सुंदरता बनी रहती है। यदि उसका चारा और आलू, गाजर, शलजम आदि तरकारियां उसे उबालकर दी जाएं तो यह पका हुआ भोजन लारसे बिना अच्छी तरह

मिले ही जल्दी-जल्दी उसके गलेके नीचे सरकता जाता है और वह आवश्यकतासे अधिक खा जाता है। ऐसा भोजन वह कस-कसकर खाता है, जिससे वह मोटा, कुरूप, सुस्त और ढीला अर्थात् बीमार हो जाता है। इस रीतिसे पशुका वजन छ महीनेतक तो बढ़ता जाता है, फिर उसके अधिक खाते रहनेपर भी वजन नहीं बढ़ता वरन् घटने लगता है। और उसे कई तरहके रोग घेरने लगते हैं। उसकी पाचन-शक्ति खराब हो जाती है और पहले जहां थोड़े भोजनसे उसकी शक्ति बनी रहती थी वहां अब ज्यादा-ज्यादा खानेपर भी उसका पूरा नहीं पड़ता।

मनुष्य जो कुछ आज खाता है वह प्रकृतिने उसके लिए नहीं बनाया है, इतना ही नहीं वरन् वह उसे पका-रांधकर अपने लिए अधिक प्रतिकूल—दुष्पाच्य और शक्तिहीन बना लेता है। सोचिए तो सही आगकी सहायतासे हम अपना भोजन कितना हानिकारक एवं अनर्थकारी बना लेते हैं।

इस भोजनसे हमारा पाचन-संस्थान अशक्त हो जाता है और विजातीय द्रव्य (अथवा भोजन) शरीरमें इकट्ठा होने लगता है। फिर यह फोड़े-फुंसी, दाद-खाज, ज्वर आदि अनेक रूपोंमें बाहर निकलता है। रोगके इन लक्षणोंको दबानेके लिए डाक्टर चीर-फाड़ एवं मरहम-पट्टी करते हैं और रोगीको दवा पिलाते हैं। पर विजातीय द्रव्यके इकट्ठा होनेका काम तो बंद नहीं होता। और उसे निकालनेके लिए शरीरको फिर-फिर प्रयास करना पड़ता है। रोगोंके कारणकी जानकारी न होनेके कारण आज मनुष्य प्रोमोथिसकी भांति बंधा पड़ा है और उसे अपने कष्टको सहना है।

यदि हम अपना भोजन बनानेके लिए आगका उपयोग न

करें तो हमें पुनः प्राकृतिक भोजनको अपनाना होगा तब डाक्टरों-को चीरने-फाड़नेका मौका ही नहीं मिलेगा।

जिस प्रकार गरम पानीका स्नान त्वचा और स्नायुओंको शिथिल कर देता है ठीक उसी प्रकार गरम भोजन आमाशयको। इसलिए अच्छा हो कि जो भी भोजन किया जाय वह ठंडा हो। अधिक-से-अधिक वह सिरगरम हो सकता है। गरम तो वह किसी हालतमें होना ही नहीं चाहिए। गरम भोजन बहुत हानि करता है।

यदि मनुष्य केवल फल खाता है तो गरम भोजनद्वारा होने-वाली हानिसे बच जाता है। उसे भूखसे अधिक खा जानेका भी खतरा नहीं है। अप्राकृतिक भोजनमें मनुष्य भूखके अनुसार भोजन करते रहनेकी कोशिश करते रहनेपर भी अधिक खा ही जाता है।

इसलिए मनुष्य जब पका भोजन नहीं करता तो उसे इतने लाभ मिलते हैं—स्त्रियोंको चूल्हेके सामने बैठकर जहरीले धुएंसे अपना स्वास्थ्य खराब करने और रोग लगानेकी जरूरत नहीं होती। उन्हें अच्छे कामोंके लिए समय मिलता है। वे अपने बच्चोंकी देख-भाल अच्छी तरह कर पाती हैं। वे ईश्वरके बनाये सुंदर प्राकृतिक स्थानोंमें अपना अधिक समय बिताती हैं। उन्हें अब अपने और अपने कुटुंबियोंके लिए उन खाद्योंके पकानेकी जरूरत नहीं होती जो समस्त रोगों एवं संसारकी सारी विपत्तिके कारण हैं। जल्दी ही सारे कुटुंबका स्वास्थ्य परिष्कृत हो जाता है जिससे उन्हें अपूर्व शक्ति और प्रसन्नताकी प्राप्ति होती है।

फलों—विशेषतः मेवोंका भोजन शरीरको सब प्रकारकी शक्तियोंसे परिपूर्ण करता है। उनकी मानसिक वृत्तियां उन्नत होती हैं और उसे देवताओंकी-सी क्षमता प्राप्त होती है।

वर्षों पहलेकी बात है, एक बार इंग्लैंडके कोयलेकी खानोंके मजदूरोंने हड़ताल कर दी थी। उन खानोंमें कामके लिए कुछ घोड़े भी रखे गये थे। ये घोड़े वहीं दस-पंद्रह वर्षोंसे थे। जब उन्हें बाहर प्रकाशमें लाया गया तो वे पागल-से हो गए और वापस सीली, अंधेरी खानोंमें चले गए। भोजन पकाना बंद कर देनेपर स्त्रियों एवं उनके परिवारवालोंको क्या-क्या लाभ होंगे, स्त्रियोंको जब यह बताया जाता है तब उनकी भी हालत मुझे उन खानके घोड़ों-की-सी होती दिखाई देती है। वे भी चुपचाप अंधेरे रसोईघरमें चली जाती हैं जहां उनके पसीनेसे भरे मुखको धूआं काला करता है, उनकी सूरत ही बदल जाती है। स्त्रियां ईश्वरकी सर्वोत्तम रचना हैं। ईश्वरने उनका निर्माण भाड़ झोंकनेके लिए नहीं किया है।

शराबी यह जानते हुए भी कि शराब पीनेका नतीजा बहुत बुरा होगा, शराब पीना छोड़ नहीं पाता। विद्वान्का पढ़ते-पढ़ते शरीर टूट जाता है, चेहरा पीला पड़ जाता है और सिर चंदला हो जाता है, वह जानता है कि संसारके सभी सुख उससे दूर हटते जा रहे हैं पर वह अपनी पढ़ाई छोड़ नहीं पाता। इसी प्रकार स्त्रियां यह जानते हुए भी कि भोजन पकाना बंद करनेसे उन्हें एवं उनके बच्चोंको पृथ्वीका सच्चा आनंद मिलेगा, वे चूल्हा झोंकने-सरीखे अप्राकृतिक कार्यका मोह नहीं छोड़ पातीं।

जब आरंभमें प्रकृतिने मनुष्यको पैदा किया था तो वह सर्वांग-सुंदर था। ग्रीसनिवासियोंने वीनसकी मूर्तिमें स्त्री-संबंधी अपनी पूर्ण भावनाको अभिषिक्त किया है। आजकी स्त्रियां इस सौंदर्यसे अनेक अंशोंमें बहुत दूर हो गई हैं। इस सौंदर्यकी पुनः प्राप्तिका एक ही साधन है—प्राकृतिक जीवन।

प्राकृतिक जीवन स्वास्थ्यका प्रदाता है और स्वास्थ्य ही सौंदर्य है। क्या हमारी स्त्रियोंका यह खयाल है कि जिस सौंदर्यकी अभिलाषा स्त्रियां करती हैं वह उन्हें चूल्हा देगा?

प्रकृतिके प्रांगणमें रहनेवाले बूढ़े और जवान पशुओंमें हमें वह अंतर दिखाई नहीं देता जो हमें मनुष्यमें देखनेको मिलता है। बड़ी उम्रके पशु ही पशुओंमें सुंदर और मजबूत होते हैं और मादाके पास होनेपर प्रसन्न। प्यार पुष्पसे भी अधिक सुकुमार है, हमारे प्राकृतिक जीवनके कारण वह बढ़ नहीं पाता। सभ्यताके झोंकेसे यह मुर्झा जाता है, कभी-कभी यह बच्चोंमें उस प्रकाशकी तरह दिखाई दे जाता है जिसका अंत शीघ्र ही होनेवाला है। आत्माके सुंदरतम आवेगोंका हनन करनेवाली, धूएंभरे रसोईघरसे पुरअसर, दूसरी अन्य वस्तु नहीं है। एक स्वस्थ स्त्री जो अपने स्वास्थ्यके प्रतापसे हमेशा सुन्दर एवं युवा बनी रहती है, एक सुकोमल रज्जुके सहारे पुरुषका ही नहीं सारे संसारका नेतृत्व कर सकती है। क्या ही अच्छा होता कि स्त्रियां अपनेको रसोईघरकी काली कोठरीसे मुक्त कर लेतीं और प्रेमके अनवरत आनंदकी अधिकारिणी बनतीं।

आरंभमें पुरुषको जब वह प्रकृतिसे दूर नहीं हुआ था, उसका पतन नहीं हुआ था, भोजन-प्राप्तिके लिए उसे पसीना नहीं बहाना पड़ता था और न उसे अपनी आत्मिक अशांति और खालीपनको दूर करनेके लिए जिस तिस कामको ही करना पड़ता था। निषिद्ध भोजनद्वारा ही मनुष्यपर यह गाज गिरी।

"एड़ी-चोटीका जोर लगानेपर ही तुझे तेरा भोजन मिलेगा।"

यदि स्त्रियां प्राकृतिक जल-स्नान करने लगें, वायु और प्रकाशका सहारा लें तो उनमें एक नवचेतना जागृत होगी और

वे अंधेरे काले रसोईघरमें काम ढूंढ़नेके बजाय अन्य उपयोगी कार्योंमें लगेंगी।

सारे अन्वेषण और आविष्कार जिनपर आजकी सभ्यताको नाज है और उसके हवाई जहाज, बारूद, रेल, बाइसिकिल, तार, फोन सभी साधनोंके खतरे और उनके द्वारा की गई हानिको समझनेके लिए हमें अपने दिमागसे सारे पूर्व संस्कारों और पक्षपातको निकाल बाहर करना होगा। आजके लोग उन्हें देखकर चौंधिया गये हैं। उन्होंने ऐसे चश्मे लगा रखे हैं जिनसे अनिष्ट उन्हें वरदान प्रतीत होता है। इन सिद्धियोंद्वारा प्रदत्त रोग, हड़बड़ी, अशांति, निराशा और स्नायुदौर्बल्य हमें दिखाई नहीं देता। जो सुख ये सिद्धियां लाई हैं वह केवल मृग-मरीचिका है।

इसमें संदेह नहीं कि आज हम यकायक न अग्निका सर्वथा परित्याग कर सकते हैं और न तुरंत सारे अप्राकृतिक कार्योंका अंत ही कर सकते हैं। हम प्रकृतिकी ओर धीरे-धीरे ही लौट सकते हैं।

भोजनका उपयुक्त समय

प्रकृति हर एक बातके लिए अपना ठीक नुस्खा हमें दिया करती है—वह हमें यह भी बतलाती है कि हमें भोजन कब करना चाहिए।

प्रकृतिमें सर्वत्र यही देख पड़ता है कि जानवर शामको ही अपना मुख्य आहार ग्रहण करते हैं। जंगलमें रहनेवाले जानते हैं

कि शिकारी जानवर दिनके समय शायद ही कुछ खाते हैं। सूर्यास्त हो जानेपर खूब खाने लगते हैं। जाड़ेके दिनोंमें भी, जब जमीन बर्फसे बिलकुल ढकी रहती है, शिकारी जानवर खाद्य प्रस्तुत किए गए स्थानपर शामको ही आते हैं, हालां कि दिनमें भी वे आना चाहते तो उनके मार्गमें कोई बाधा न पड़ती। जंतुशालामें भी उन्हें शामको ही खिलाया जाता है।

प्रायः लोग खुमारी उतारनेके लिए प्रातःकाल भी कुछ मद्यपान कर लेते हैं, पर इसका असर सायंकालीन मद्यपानसे बहुत बुरा होता है। मद्यपानकी गोष्ठियां भी शामको ही जमा करती हैं, प्रातःकाल नहीं जम सकतीं। प्रातःकाल भोजन करनेपर क्लांति जान पड़ती है, पर ब्यालूके बाद ऐसी कोई शिथिलता नहीं जान पड़ती। प्रातःकाल शरीर खाद्य पदार्थको उतना नहीं पचा सकता, शामको या रात्रिकालमें ही उदर विशेष रूपसे सक्रिय रहता है।

ईसाई साधु प्रकृतिके इस अभिप्रायके अनुसार दिनके समय बहुत कम खाते थे। जो लोग इस नियमका कड़ाईके साथ पालन करते थे वे तो सूर्यास्तके पहले कुछ भी नहीं खाते थे। सब लोग शामको अपने मुख्य भोजनके लिए एकत्र हो जाते थे और उस समय ब्यालू भी एक धर्मकृत्य ही माना जाता था। ईसाने अपने शिष्योंके लिए यही नियम रखा था और जिस तरह नियमित स्नान आज बपतिस्मा नामक संस्कारके रूपमें रह गया है उसी तरह यह सायंकालका सहभोज भी 'प्रसाद' पानेके रूपमें बच गया है। प्रकृतिका नियम तो सायंकालीन भोजनका ही है, पर इसके विरुद्ध बुद्धिका प्रदर्शन करनेके लिए तरह-तरहकी दलीलें पेश की जाती हैं जिनमें कोई दम नहीं होता।

अगर प्रातःकाल कुछ खाया भी जाय तो सिर्फ नामके लिए। अगर दोपहरतक कुछ भी न खाया जाय तो बहुत अच्छा। दोपहरतक उपवास करना, जो प्रकृतिके अनुकूल है, जरा भी कठिन नहीं है। दोपहरके समय भोजन करते समय भी अधिक न खाकर यथासंभव कम खानेका खयाल रखा जाय। शामको बिना किसी हिचकके भरपेट खाया जा सकता है।

मेरा उपचार करनेवाले रोगियोंने यह स्वीकार किया है कि दोपहरतक कुछ भी न खानेपर उपचारसे अधिक लाभ होता देख पड़ा। इसी विचारसे मैं अपने रोगियोंको दोपहरतक कुछ भी न खानेकी सलाह दिया करता हूं। अगर दिनका भोजन सूक्ष्म रहा है तो सोनेके पहले भरपेट खानेपर किसी तरह-की तकलीफ नहीं होगी।

बच्चोंका पालन-पोषण

कितना मधुर और पवित्रतम आनंद और कितने प्रकारके अनुभव प्रकृति हमें बच्चोंद्वारा प्रदान करती है! बच्चे अनमोल रत्न हैं, इन्हें ईश्वरने हमें धरोहरस्वरूप दिया है। बच्चे-वालोंके कर्त्तव्य गुरु हैं और जिम्मेदारी बहुत बड़ी। हमें अपने बच्चोंके लालन-पालन और शिक्षाका अधिक-से-अधिक ध्यान रखनेकी आवश्यकता है। इस संबंधमें भी हमें प्रकृतिसे ही सीख लेनी चाहिए और उसीके बताये मार्गपर चलना चाहिए।

प्रकाशमें आनेके बहुत पहले ही शिशुमें प्राण पड़ जाते हैं।

जिस स्त्रीको बच्चा होनेवाला हो उसका यह समझ लेना कर्त्तव्य हो जाता है कि एक नवीन प्राणीके प्रति उसका एक पवित्र दायित्व पैदा हो गया है और ईश्वरने उसे एक गंभीर काम सौंपा है। इस कालमें उसे गप-बाजी, दुष्कामना, ईर्षा, घृणा, स्पर्धा और सभी प्रकारके उत्तेजक एवं अशांत करनेवाले कार्योंसे किनारा अख्तियार करना चाहिए, उत्तेजना तथा घबराहट पैदा करनेवाले आमोद-प्रमोदसे दूर रहना चाहिए। इसके बदले उसे विधाताकी शांत और गंभीर प्रकृतिका चिंतन करना चाहिए और आनंदपूर्वक प्रकृतिमें विचरण करना चाहिए। मैंने अपनी इस पुस्तकमें प्राकृतिक जीवनका यथेष्ट वर्णन किया है। गर्भिणी स्त्रीको यह जीवन बिताना आवश्यक है। इस समय वेष-भूषाके संबंधमें भी और दिनोंकी भांति अविवेकी न बनना चाहिए। माताओंको इसका ज्ञान नहीं है कि बच्चा जननेके पहले ही वे उसके प्रति कितना बड़ा पाप कर सकती हैं।

स्त्रीके गर्भमें जब बच्चा बढ़ता रहता है उस समय उसके जीवनके परिवर्तनोंका कितना सीधा प्रभाव बच्चेपर पड़ता है यह हम नहीं जानते यह हमारा दुर्भाग्य ही है।

ऐसे अनेक जड़ और पागल, जिन्हें दुनियामें न शांति ही है न किसी प्रकारका आराम, और जो पाप और दोषमें लिपटे ही रहते हैं और पृथ्वीपर भारस्वरूप हो रहे हैं, उनमेंसे अधिकांशके कष्टका कारण उनके गर्भमें रहते समय उनकी मातापर पड़ा हुआ कोई अशुभ प्रभाव ही है।

कितना अच्छा होता कि इन अभागोंको देखकर माता-

पिता इसका अंदाज कर सकते कि वे अपने बच्चोंके प्रति कितना बड़ा पाप कर सकते हैं।[1]

जो स्त्री थोड़ा भी प्राकृतिक जीवन व्यतीत करती है उसे प्रसव-समयकी पीड़ासे डरनेकी जरूरत नहीं है। उसे बड़ी आसानीसे बच्चा हो जायगा। यदि पीड़ा हो तो पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे बहुत मदद मिलती है। सौरीमें वायु और प्रकाशकी बड़ी आवश्यकता होती है अतः सौरीकी सारी खिड़कियां खुली रखनी चाहिए।

नवजात शिशुको गरम पानीसे न नहलाकर उसे ठंडे पानीसे शीघ्रतासे नहलाना और साफ करना चाहिए। इससे बालकको शक्ति प्राप्त होती है और वह सहनशील बनता है। सालकी कोई भी ऋतु क्यों न हो बच्चोंको जब भी नहलाया जाय ठंडे पानीसे ही—इसकी आदत आरंभसे ही डालनी चाहिए, इससे बच्चे जन्मसे ही बीमार एवं दुर्बल होनेसे बचेंगे। कड़ाकेकी सर्दीमें इस पानीका ताप अधिक-से-अधिक कमरेकी गरमी जितना कर लिया जा सकता है।

बच्चेको कोट और मोजोंमें कसनेकी जरूरत नहीं है। उसके शरीरपर वायु और प्रकाश लगने और उसमें प्रवेश करनेका पूरा मौका देना चाहिए। अकसर बच्चेको नंगा रखना चाहिए इससे उसकी जीवनशक्ति बढ़ती है।

जब नवजात शिशु अपनी संसार-यात्रा आरंभ करता है

---

[1]यहां मैं डाक्टर राशकी लिखी छोटी पुस्तक "स्त्रियोंके अधिकतर जीर्ण रोगों एवं उनके स्थायी कष्टोंका कारण" की ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। यह पुस्तक विवाहितोंको बताती है कि संयोग-

स्वतंत्रता, वायु और प्रकाशके प्रति उसके मनमें चाह उत्पन्न होती है। पर इसके विपरीत जव वह अपनेको कपड़ोंसे लपेटा और बंधा हुआ दूषित वायुसे परिपूर्ण कमरेमें पाता है, तो जीवनके प्रति उसका सारा उत्साह ही समाप्त हो जाता है। यदि वच्चेको कभी हवा खिलाने ले भी जाते हैं तो मोटे-मोटे

संवंधी कितनी भयंकर भूलें उनसे वन पड़ती हैं। लोगोंकी ऐसी धारणा-सी हो रही है कि विवाहित अनियंत्रित संयोग कर सकते हैं। ये घातक विचार हैं और इनका परिणाम माता-पिता और उनके वच्चोंको भी सहना ही पड़ता है। यह पाप है। पर खेद है कि अविवाहितोंद्वारा किए गए पापको ही आजका समाज दुराचार कहता है।

संयोग, जाति-रक्षाके महान उद्देश्यके लिए ही होना चाहिए। अन्य जीवोंकी तरह आरंभमें मनुष्य इस संवंधमें भी प्रकृतिकी आवाज सुनता था। यह आवाज होती थी एक लंवे अंतरपर, पर सुनाई देती थी स्पष्ट। आज इस संबंधमें भी मनुष्य अपनी हीन एवं घृणास्पद इच्छाका शिकार हो रहा है। वच्चा पैदा करनेके लिए आज संयोग नहीं होता, लोग तो यह देखकर घवराते हैं कि संयोगसे वच्चे भी पैदा होते हैं। वे प्रकृतिके इस कार्यमें अकसर वाधा डालनेकी भी कोशिश करते हैं। वाह! प्रकृति और मनुष्यकी कैसी प्रतिद्वंद्विता चल रही है? प्रत्येक पत्रमें गर्भ-निरोधकी दवाका विज्ञापन खुल्लमखुल्ला छपता है। प्रकृतिके विरुद्ध किए जाने-वाले ये पाप वताते हैं कि मनुष्यजाति ह्रासकी ओर अग्रसर हो रही है। आज अनाचार और अनैतिकताकी कोई सीमा नहीं रह गई है गो कि इसका फल मनुष्यको पग-पगपर भोगना पड़ रहा है। अव शीघ्र ही ज्ञात हो जायगा कि इस संवंधमें मनुष्यजातिने अपनी कितनी हानि की है। पर लोग यदि प्राकृतिक जीवनकी ओर अधिकाधिक अग्रसर होंगे तो ये पाप अपने आप बंद हो जायंगे अन्यथा इनको निश्चित 'रूपसे कम किया जा सकेगा।

कपड़ोंसे ढककर और जिस गाड़ीमें उसे टहलाने ले जाते हैं उसे भी पूरी तरह ढकी रखते हैं इस डरसे कि बच्चेतक कहीं वायु और धूप पहुंच न जाय।

गांवके लोग अपनी गाय-बकरियोंके बच्चोंको खास तौर-से धूपमें ले जाते हैं और यह देखकर खुश होते हैं कि बच्चे धूप खाकर प्रसन्न होते हैं और शीघ्रतासे बढ़ते हैं। अपने बच्चोंको हम शक्ति-प्रदायिनी वायु और जीवनदायी सूर्यसे दूर रखते हैं। यदि इस दशामें बच्चे कमजोर रहें या अकालमें कालकवलित हो जायं तो इसमें क्या आश्चर्य है?

बच्चोंके दिनभर रोने और रो-रोकर अपनेको थका डालने तथा माता-पिताको हैरान करनेका कारण बच्चेके माता-पिता ही हैं। बच्चेको जरा स्वतंत्र कीजिए, उसके बदन-परसे भारी कपड़े हटा दीजिए, उसे वायु और प्रकाशमें रखिए, फिर देखिए वे कितने शांत रहते हैं और कितनी जल्दी-जल्दी बढ़ते हैं। यदि इस सारी गड़बड़ीके कारण बच्चेकी पाचनशक्ति खराब हो जाय तो पेड़ूपर ठंडी पट्टी रखनी चाहिए। ठंडे पानीमें भिगोकर कपड़ेकी पट्टी भी रखी जा सकती है, पर मिट्टीकी पट्टीसे शीघ्र लाभ होता है।

आज जैसी भयंकर भूलें बच्चोंकी चिकित्सामें की जाती हैं उन्हें देखकर तो ताज्जुब ही होता है कि क्यों इतने कम ही बच्चे मरते हैं? इससे प्रमाणित होता है कि मनुष्यको आरंभसे ही पशुसे अधिक जीवनशक्ति मिली होती है। क्योंकि मनुष्यका बच्चा जिन अप्राकृतिक उपचारोंको सहकर जीवित रहता है वह उपचार यदि पशुके बच्चेका किया जाय तो वह कभी भी जीवित नहीं बच सकेगा।

बच्चोंके जीवनके आरंभिक वर्षोंमें की गई गलतियोंका बुरा असर उनके जीवनपर्यंत चलता रहता है। इसलिए हमें सदा प्रकृतिका अधिक-से-अधिक सहारा लेना चाहिए।

शुरूमें बच्चेको माताका ही दूध मिलना चाहिए। गर्भ-वहन करते समय एवं बच्चेको पिलाते समय यदि माता प्राकृतिक जीवन व्यतीत करे तो निश्चय ही उसे अपने बच्चेके लिए पूरा दूध होगा। यह सोचना मूर्खतासे खाली नहीं है कि माताके मांस खाने और शराब पीनेसे बच्चेको यथेष्ट शक्ति और पोषण मिलेगा। ऐसा करनेसे तो माताको दूध कम होगा और बिलकुल खराब होगा।

अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेके कारण यदि माताका दूध सूख जाय तो बच्चेको नीरोग धायका दूध मिलना चाहिए। इसके अभावमें उसे चरनेवाली, स्वस्थ, स्वच्छ गायका कच्चा बिना उबाला हुआ दूध देना चाहिए।

हम लोग कीटाणुओंके डरसे कच्चा दूध बर्तते डरते हैं और समझते हैं कि दूधको गरम करनेसे कीटाणु मर जाते हैं और दूध निरापद हो जाता है। कीटाणु अन्य कृमियोंकी भांति ही सड़नसे पैदा होते हैं। जिस प्रकार मैली त्वचापर चींटियां-फतिंगे आ जाते हैं उसी प्रकार जब शरीरमें स्थित विजातीय द्रव्य सड़ने लगता है तब कीटाणु पैदा हो जाते हैं। यदि शरीरमें कीटाणु बाहरसे घुस भी जायं तो यदि उन्हें वहां उपयुक्त खाद (विजातीय द्रव्य) न मिले तो वे कभी जीवित न रह सकेंगे। यदि हम प्राकृतिक जीवन व्यतीत करें, अपने शरीरमें विजातीय द्रव्य न पैदा होने दें तो हमें कीटाणुओंसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है। पर यदि हमारा शरीर गंदा हो तो खाद्योंके उबालने

अथवा कृमि-विहीन करनेकी कोई क्रिया हमें उनसे बचा नहीं सकती। यदि शरीरमें या दूधमें विजातीय द्रव्य पैदा हो गया है तो वहां कृमियोंका होना आवश्यक है। वे वहां पहुंचकर एक आवश्यक कार्य करते हैं।

यदि रोगी गायका दूध उबालनेसे उसके कीटाणु मर भी जायं तो वह विजातीय द्रव्य तो नष्ट नहीं हो जाता जो सचमुच भयानक चीज है और जिसके कारण उस दूधकी ओर कीटाणु आकर्षित होते हैं।

यदि बच्चेके शरीरमें विजातीय द्रव्य यथेष्ट मात्रामें हो तो उसे कीटाणुओंसे किसी प्रकार भी नहीं बचाया जा सकता और यदि न हो तो कीटाणु उसे कोई हानि नहीं पहुंचा सकते। जिस कच्चे दूधमें कीटाणु पैदा हो गए होते हैं उसमें उबाले दूधकी वनिस्बत सड़न शीघ्र पैदा होती है और वह पचता भी शीघ्रतासे है। कीटाणु कभी-कभी पाचनमें भी सहायक होते हैं। दूधको उवालकर हम उसे दुष्पाच्य अतएव हानिकर वनाते हैं, ऐसे दूधके पीनेसे बच्चेके शरीरकी बाढ़ रुकती है।

भाप या अन्य किसी प्रकारसे गरम किया हुआ दूध भी उवाले दूधके समान ही हानिकारक है।

इसलिए बच्चेको, जबतक वह मेवे खाने लायक न हो जाय, माता या गायका दूध ही पिलाना चाहिए।

जईके दलिए आदिका भी, जो वच्चोंके भोजनके नामसे डिब्बा-बंद वाजारमें बिकते हैं, पूरा बहिष्कार होना चाहिए। इनके मुकाबलेमें बच्चोंको कुछ उबली तरकारियां और थोड़ी रोटी देना अच्छा है। बच्चोंको छुटपनसे ही दूध और मेवे अच्छे लगते हैं और यह उनके अनुकूल भी होते हैं। फलाहारसे

बच्चेकी जो ऐसी शारीरिक और मानसिक उन्नति होती है उसे देखकर माता-पिताको हार्दिक आनंद प्राप्त होता है।

हमारे आजके बनावटी जीवनके दुःखद वातावरणमें आज भी स्वर्गका एक द्वार खुला हुआ है। वह हैं बच्चे। बच्चोंको फल खाने दें अन्यथा आप इस द्वारको भी बंद कर देंगे—और उनके बहुतसे आनंद और प्रसन्नतासे उन्हें वंचित कर देंगे। उन्हें कच्चे और अधपके फल भी बिना किसी डरके दिये जा सकते हैं। ये उनके लिए विशेष लाभदायक हैं।

ईसाने कहा है:

"बच्चोंको कष्ट न दो, उन्हें मेरे पास आनेसे मत रोको।"

ईसाके अधिकतर अनुयायी गांवोंमें रहते थे और कारीगरी तथा किसानीका काम करते थे—उनमें जो कट्टर होते थे वे हमेशा खुलेमें पहाड़ अथवा रेगिस्तानमें रहते थे और उनमेंसे बहुतसे केवल वही खाते थे जो पृथ्वी अपने आप बिना किसानी या बागवानीके उपजाती है। इन पूर्णतः प्राकृतिक जीवन बितानेवालोंको कभी-कभी शिक्षणके लिए बच्चे सौंपे जाते थे।

इस प्रकार जब 'जान' निरे बच्चे थे, उनके माता-पिताने उन्हें शिक्षा प्राप्त करनेके लिए एक रेगिस्तानमें भेज दिया था। उनके बारेमें कहा गया है:

"बच्चा बढ़ा और मजबूत हो गया और इजराइलियोंका साथ होनेतक रेगिस्तानमें ही रहा।"

हां, यदि बच्चे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना आरंभ कर दें तो यह निश्चित है कि उन्हें स्वास्थ्य और आनंद मिलेगा जिसे प्राप्त कर सकना बड़ोंके लिए साधारणतः संभव नहीं है।

इसलिए मैं माता-पिताओंसे बहुत जोर देकर कहना चाहता हूं कि वे अपने बच्चोंको प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने दें, उन्हें प्रकृति-पथपर लौटा ले चलें। इस कार्यके फलस्वरूप इस संसारमें वे अनिर्वचनीय आनंदके अधिकारी होंगे और जब वे स्वर्गमें पहुंचेंगे तो ईश्वर उन्हें उनके इस उत्तम कार्यके लिए पुरस्कृत करेगा।

जिन बच्चोंकी नैसर्गिक बुद्धि तीव्र रहती है वे अकसर पका भोजन ग्रहण नहीं करना चाहते, उन्हें फल ज्यादा पसंद आते हैं। पर उन्हें जबरदस्ती अप्राकृतिक भोजन कराया जाता है और कभी-कभी तो मार-मारकर। इसके फलस्वरूप वे स्वभावतः बीमार पड़ते हैं। उन्हें दवा दी जाती है, वे फिर इसे भी लेनेमें पूरी आनाकानी तथा विरोध करते हैं, इस समय भी माता, जिसके हृदयके कोने-कोनेमें रोगी बच्चेके प्रति प्यार भरा रहता है, कठोरतासे काम लेती है, गोकि उसका हृदय अंदरसे रोता रहता है, बच्चेको जबरदस्ती दवा पिलाई जाती है और कभी-कभी तो कार्यकी सफलताके लिए छड़ीसे भी काम लेना पड़ता है। पर जब अप्राकृतिक चिकित्साका प्याला लबरेज हो जाता है, बच्चा उसके बोझके नीचे टूट जाता है और धरती माताकी शीतल गोदमें शरण पाता है। माता दुःखभरा टूटा दिल लिए बच्चेकी छोटी कब्रके पास खड़ी रहती है, बेचारीको इसका पता नहीं होता कि बच्चेकी मृत्युका कारण वह स्वयं है।

साधारणतः माता-पिता यही चाहते हैं कि उनके बच्चे सदा मोटे-ताजे बने रहें। जबतक कि उनके बच्चे मोटे किए गये सूअरोंकी भांति या चित्रोंमें अंकित देवताओंके दरबारमें तुरही

बजानेवाले फूले हुए बच्चोंकी तरह नहीं हो जाते, उन्हें संतोष नहीं होता।

बड़े भी मोटे, मांसल होने और अपना वजन बढ़ानेके फिक्र-में रहते हैं। पहले वे यह नहीं चाहते कि उनका पेट लटक आए, तब भी ये आदमीका मूल्य खिला-पिलाकर खानेके लिए मोटे किए गए पशुके समान ही समझते हैं।

यह भी प्रकृतिके विरुद्ध है, अतः सर्वथा गलत है।

प्रकृतिके प्रांगणमें विचरण करनेवाले पशुको देखिए, वह बच्चा हो या बड़ा या बूढ़ा, उसका शरीर बड़ी सुंदर रीतिसे सुगठित एवं संतुलित होता है। न उसका शरीर ही मोटा होता और न कोई अंगविशेष ही फूला रहता है।

मनुष्यको तभी स्वस्थ समझना चाहिए जब कि उसका शरीर सुडौल है, एवं उसके अंग अनुपातयुक्त हैं तथा वह मोटा-भद्दा नहीं हो जाता और उसके शरीरपर जगह-जगह चर्बी नहीं चढ़ जाती। अधिकतर फल खाकर रहनेवालेका ही शरीर सुंदर एवं सुगठित रह सकता है और यही भोजन मनुष्यको स्वस्थ रखता है। इसलिए बच्चोंको अधिकतर फल खिलाकर ही रखना चाहिए, ताकि वे भद्दे-मोटे न होकर सुंदर एवं सुरूप हों। स्वस्थ और सुंदर शरीरका गठन कैसा होना चाहिए यदि यह जानना हो तो अपोलो और बेलवेडियरकी मूर्तियां देखी जा सकती हैं।

सबसे अधिक भयानक एवं घातक गलती जो मनुष्यने अब-तक अपने अनजानमें प्रकृतिके प्रति की है वह है टीकेका चलन।

यह विज्ञान एवं आंकड़ोंके आधारपर साबित कर दिया गया है कि टीका लगाना अनिवार्य होनेके पहले बच्चोंको चेचक

अधिक होती थी। जो प्रकृतिको समझता है वह आसानीसे अनुमान कर सकता है कि टीका लगाना कितना नुकसानदेह है। छोटे बच्चोंमें काफी जीवन-शक्ति होती है जो उनके शरीरमें इकट्ठे पैतृक विजातीय द्रव्यको, बच्चोंके रोग कहे जानेवाले उभारोंद्वारा, जिनमें चेचक भी एक है, निकालनेकी कोशिश करती है। इस शक्तिको टीकेका जहर बेकाम कर देता है। इस प्रकार बच्चेकी बाढ़में अड़चन पड़ती है और उसे प्रकृतिका सहारा पाकर शरीरका शोधन करनेवाले तीव्र रोगके बजाय बुरा जीर्ण एवं सांघातिक रोग हो जाता है।

टीका एक बार देनेके बाद जब वह कुछ वर्षों बाद दुहराया जाता है उस समय यह स्पष्ट दिखाई देने लगता है कि टीकेके फलस्वरूप शरीरमें कई प्रकारके रोग उत्पन्न होनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

पता नहीं मनुष्य-जातिको इस भयंकर भूलसे कब मुक्ति मिलेगी जिसके द्वारा वह अपने बच्चोंपर कानूनन बड़े-से-बड़ा कष्ट और कठोर-से-कठोर यातना लादती है।

मैं यहां फिर जोर देकर यह कहना चाहता हूं कि गंडमाला, लकवा, मिरगी एवं अन्य अनेक प्रकारके स्नायु-संबंधी रोग जो लोगोंको अकसर होते रहते हैं, अधिकतर टीका लगवानेके फल हैं।

यदि टीका लग ही जाय तो उसपर मिट्टीकी ठंडी पुल्टिस बांधनी चाहिए और उसे दिनमें कई बार और कई दिनोंतक बांधते रहना चाहिए। पुल्टिस जहां टीका लगा हो उसके चारों ओर दूरतक फैला दी जाय। इस वक्त बच्चा सर्वथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करे। यदि इतना कर लिया जाय तो टीकेसे कोई हानि होनेकी संभावना नहीं है।

यदि टीका लगानेपर उस जगह दाने न उभरें तो कानूनन फिर टीका लगवाना होता है, ऐसी हालतमें यदि दुबारा टीका लगे तो उसकी चिकित्सा पहले बताई रीतिसे करनी चाहिए। तीन बार टीका लगानेके बाद चौथी बार टीका लगानेकी इजाजत कानून नहीं देता।

रोगनाशक टीकोंके विरोधमें यहां कुछ विशेष तौरसे कहनेकी आवश्यकता नहीं है। ये भी कम जहरीले नहीं होते। इनके लगानेसे डिप्थीरिया दब सकता है पर टीकेके फलस्वरूप डिप्थीरियासे भी भयानक रोग कैंसर, पागलपन आदि उभर सकते हैं।

अन्य तीव्र रोगोंकी तरह डिप्थीरियाका इलाज भी बच्चेका सर्वनाश किए बगैर प्राकृतिक रीतिसे आसानीसे एवं निश्चयात्मक रूपसे हो सकता है। मृत्युके इस दूतसे माता-पिताको जरा भी डरनेकी जरूरत नहीं है। इस रोगसे घबराकर जल्दीमें उन्हें अपने बच्चेको इसके "प्रतिरोधक" इंजेक्शन नहीं लगवाने चाहिए।

बच्चोंके सारे रोग स्वास्थ्यकारक उभारमात्र हैं, उनके संबंधमें किसी प्रकारकी चिंताकी जरूरत नहीं है। कोई भी रोग (डिप्थीरिया, मोतीझरा, लाल बुखार, मियादी बुखार आदि) होनेपर पहली बात यह करनी चाहिए कि कमरेकी खिड़कियां खोलकर बच्चेको नंगा ही लिटा देना चाहिए और यदि वह चाहे तो वहीं चलने-फिरने देना चाहिए। यह जितनी ही देरतक किया जा सके उतना ही अच्छा है। यदि संभव हो सके तो इस समय बच्चेका खुली जगहमें टहलना ज्यादा अच्छा है। इस समय प्राकृतिक स्नान भी कराना चाहिए और पेड़ूपर

मिट्टीकी पट्टी रखनी चाहिए। यदि बच्चेको डिप्थीरिया हो गया हो तो मिट्टीकी पट्टी गर्दनपर रखनी चाहिए। यह भी आवश्यक है कि बच्चेको कुछ भी खानेको न दिया जाय, और यदि दिया भी जाय तो बहुत थोड़ा, सो भी फल और मेवे। ज्यों ही संभव हो बच्चेको बाहर खुली जगहमें जाने देना चाहिए (यदि संभव हो तो नंगे बदन ही)। इस विधिसे रोग जिस तेजीसे जायंगे उसे देखकर आपको आश्चर्य होगा और आप देखेंगे कि रोग जानेके बाद बच्चे अधिक प्रसन्न रहने लगे हैं और उनके चेहरेपर आभा आ गई है। तीव्र रोगके द्वारा बच्चेका शरीर बहुतसे विजातीय द्रव्य और कूड़े-करकटसे अपनेको मुक्त कर लेता है।

हमारे अनेक अप्राकृतिक ढंगों (गलत भोजन, वायु एवं प्रकाश-विहीन कमरेका वास, मोटे रंगीन चुस्त कपड़ोंका पहिनाव) के कारण बच्चे सुकुमार हो जाते हैं। अकसर वे मद्य-रूपी राक्षसीके चंगुलसे भी दूर नहीं रखे जाते। स्कूलमें पहुंचते-पहुंचते लड़के अपने बड़ोंके दोषोंकी नकल करने लगते हैं। वे बड़े घमंडके साथ शराब और सिगरेट-बीड़ी पीने लगते हैं। सभी बड़े, और खास तौरसे अध्यापक, यदि उच्च जीवनका उदाहरण बालकोंके सामने रख सकें तो इस दिशामें बहुत काम हो सकता है।

विलासिता एवं अन्य प्रकारकी अप्राकृतिक आदतोंके तथा आजकी सर्वादृत एवं सर्वगुणकारी (!) स्कूलकी पढ़ाईकी अविवेकपूर्ण आवश्यकताओं एवं श्रमके कारण बच्चोंके स्नायुओंपर आवश्यकतासे अधिक भार पड़ता है और वे कमजोर हो जाते हैं। इस प्रकार बच्चोंमें असमयमें ही कामुकताकी

प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसे वे वशमें नहीं कर पाते। फलतः जवानीके सबसे अधिक घातक शत्रु हस्तमैथुनका पदार्पण होता है। बच्चेके आचरणमें आए शर्मीलेपनको देखकर सजग माता-पिताको तुरंत अंदाज हो जाता है कि उनका लड़का यौवनके सबसे बड़े शत्रुके चंगुलमें फँस गया है जिससे छुटकारा पानेके लिए बेचारा तड़फाया करता है, मन-ही-मन बुरी तरह अपनी भर्त्सना करता है और आत्मग्लानिसे मरता रहता है। माता-पिताको चाहिए कि इस रोगके शिकार बच्चेको कोई दंड न दें। ऐसे बच्चेका मानसिक एवं आत्मिक विकास मार-पीट और जोर-जबरदस्तीके बजाय बिल्कुल भिन्न ही रीतिसे करना चाहिए। दंड खास तौरसे शारीरिक दंड तो कभी देना ही नहीं चाहिए। कड़े दंडके भयसे बच्चेको इस रोग-से मुक्त करनेकी कोशिश करना बिल्कुल गलत है। इस वक्त तो बच्चेको प्यारकी खास तौरसे जरूरत होती है। माता-पिताको बड़े प्यार और कोमलतासे ऐसे बच्चेकी चिकित्सा जल, प्रकाश, वायु, प्राकृतिक भोजन, कसरत आदि प्राकृतिक साधनों-द्वारा करनी चाहिए। इस विधिसे उनका बच्चा उस राक्षसके हाथसे शीघ्रतासे मुक्त हो जायगा और फिर स्वाभाविक रूपसे प्रसन्न बदन रहने लगेगा और उसका चेहरा चमकने लगेगा।

जब बच्चोंको इस तरह नहीं संभाला जाता तो वे जवान हो जाते हैं पर उनमें न जवानीका उत्साह होता है न आनंद; जीवन उन्हें भारस्वरूप लगता है। वे कमजोर, चिड़चिड़े और थके-से रहते हैं और उनमें किसी प्रकारकी आशा नहीं रह जाती। उनकी आंखोंको देखनेसे प्रतीत होता है कि वे आत्मग्लानि और दुःखमें डूबे रहते हैं।

अकसर वच्चोंको सोये-सोये विछावनमें पेशाव कर देनेकी आदत पड़ जाती है। यह आदत भी प्राकृतिक चिकित्साद्वारा छूट जाती है। इस रोगसे पीड़ित वच्चोंको भी किसी प्रकारका दंड देना पाप है।

एक वार फिर मैं नंगे पैर चलने और खास तौरसे वच्चोंके लिए नंगे पैर चलनेकी आवश्यकतापर जोर देना चाहता हूं। वच्चोंके कपड़ोंको भी सादा और प्राकृतिक रखनेपर मैं एक वार फिर जोर देना चाहता हूं। छातीको व्यर्थके कसे कपड़ेसे ढके रहनेकी जरूरत नहीं है। यह नियम वच्चों और वड़ोंको समान रूपसे पालन करना चाहिए। कपड़े ढीले रहें, ताकि हवा छातीतक पहुंच सके। वच्चोंके कपड़े वनाते वक्त इसका खास खयाल रखना चाहिए।

कई वार प्राकृतिक जीवनके अनुकरणसे वच्चोंकी वढ़ी मानसिक शक्ति देखकर मुझे आश्चर्य हुआ है। दर्जेमें हमेशा पिछड़े रहनेवाले लड़कोंको शीघ्र ही पाठ याद होने लगे और वे जल्दी विना किसी प्रयासके अपने साथियोंसे आगे वढ़ गए। मैंने देखा कि इनमेंसे कई युवक, जो फौजमें भर्ती हो गए, वहांके कठिन जीवन और परिश्रमको खुशी-खुशी विना किसी प्रयासके वर्दाश्त कर रहे थे। आगे चलकर तो उन्होंने फौजमें वड़ा नाम कमाया।

मैंने वार-वार कहा है कि प्राकृतिक जीवनका मनुष्यपर एक वड़ा प्रभाव यह भी पड़ता है कि मनुष्यकी आत्मा परिष्कृत होती है और वह भद्र वनता है। यह चीज वच्चोंमें वरावर देखनेको मिल सकती है। निश्चय ही प्राकृतिक जीवन वह नींव है जिसपर आत्माके लिए ईमानदारी और सचाईका भव्य

प्रासाद वन सकता है। इसलिए प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते समय हमें आत्माको निर्दोप वनानेका पूरा प्रयास करना चाहिए और वच्चोंकी शिक्षा-दीक्षामें इसका विशेप यत्न करना चाहिए।

शिक्षा क्या है ?

मनुष्य ईश्वरकी प्रतिकृति है, वह प्यारका सार है। इसलिए उसकी शिक्षा प्रकृतिके अनुरूप ही होनी चाहिए। जहांतक बन सके मनुष्यमें ईश्वरीय भावको लौटाना चाहिए।

ईसाने कहा है :

"तू अपने सच्चे मालिक ईश्वरको पूरे दिलसे अपनी रूह और अपने दिमागकी सारी ताकतके साथ प्यार कर ।"

"अपने पड़ोसीको तू उसी तरह प्यार कर जिस तरह तू अपनेको प्यार करता है।"

इन शब्दोंमें मनुष्यके लिए सही प्राकृतिक शिक्षा भर दी गई है।

शिक्षणपर आजतक जो वड़े-से-वड़े ग्रंथ लिखे गए हैं, इस गंभीर विपयपर जितने अधिक-से-अधिक विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुए हैं उन सवमें मिलाकर उतना भी सार नहीं है जितना ईसाके केवल इस एक वाक्यमें है। आज लोग युवकोंको वैज्ञानिक ढंगसे शिक्षा देते हैं, पर होता यह है :

"ज्ञान वढ़ जाता है; पर हृदय चला जाता है।"

एक लड़का, जो जिस तिस तरह लैटिनकी पहली कितावके

शब्द याद कर लेता है, अपने साथ खेलनेवाले लड़केको जो साधारण स्कूलमें पढ़ने जाता है हेठी निगाहसे देखने लगता है, और जल्द ही उसका साथ छोड़ देता है। इस प्रकार ज्यों-ज्यों लड़का पढ़ाईमें वढ़ता जाता है उसका झूठा घमंड और वनावटी ढंग वढ़ता जाता है, जो वहुत खतरनाक है। लेकिन हमें आजकी शिक्षाद्वारा पैदा हुई कृत्रिमता और खोखलेपन तथा सचाईके अंतरको समझना चाहिए। हमारे आजके युवककी चाल सुधारनेके लिए उससे ड्रिल कराई जाती है, उसमें वाहरी चाल-ढालके सव नियम वताए जाते हैं, पर उसके हृदय और स्वभावको सुंदर वनानेके लिए कुछ भी नहीं किया जाता। उसकी आत्मामें दृढ़ता आनेके वदले उसका अध:पतन हो जाता है। अप्राकृतिक जीवन वितानेवाले फूहड़ अशिक्षित लड़कोंका उदाहरण भी अनुकरणीय नहीं है पर उनका अपरिष्कृत व्यवहार ऐसी नम्रता और मैत्री भावनासे अच्छा है जिनका हृदयसे कोई संवंध नहीं है। वनावटी नम्रता और सहृदयता धोखा और दगावाजी नहीं तो और क्या है ? अत: वच्चोंको प्राकृतिक जीवन विताना सिखाना चाहिए, यह उन्हें ईश्वर और मनुष्यको प्यार करना सिखावेगा और प्रेम ही हमारे जीवनको उन्नत वना सकता है। हमें उन्हें अपने साथीको सच्चे हृदयसे प्यार करना सिखाना चाहिए। क्योंकि ईसाके शव्दोंको दूसरी तरह यों भी तो कहा जा सकता है कि जो अपने पड़ोसीको प्यार करता है वह ईश्वरको भी प्यार करता है। युवकोंको ईश्वरको प्यार करना अवश्य सीखना चाहिए और अपने साथियोंके प्रति अपने हृदयमें प्रेम और मैत्रीकी भावना रखनी चाहिए जिसे उन्हें गरीव-अमीरका खयाल

किये बगैर प्रदर्शित करना चाहिए । जिन माता-पिताके हृदयों-मेंसे प्रेमकी दैवी विभूति नष्ट हो गई है अथवा जिन्होंने फिर उसे जाग्रत कर लिया है उन्हें अपने बच्चोंमें प्यार पैदा करनेकी रीति स्वयं ज्ञात हो जायगी । केवल इसी विधिसे मुक्ति एवं शांतिप्रदायिनी शिक्षा एवं सद्‌गुणोंकी प्राप्ति हो सकती है । केवल प्राकृतिक जीवन और अपने साथियोंके प्रति सच्चा प्यार ही मनुष्यको इस संसारमें आनंद—प्रसन्नता प्रदान कर सकते हैं और इस प्रकार प्राप्त आनंद और प्रसन्नता किसी अवस्थामें भी मनुष्योंका साथ नहीं छोड़ते ।

ऐसे बच्चेके जीवनमें दुःख और अभावका कभी प्रवेश नहीं होता ।

कितने ही अभिभावकोंका खयाल है कि कालेजकी शिक्षा प्राप्त कर लेनेपर ही उनके बच्चेका जीवन सुखी हो सकेगा । यह शिक्षा दिलानेके लिए वे बहुत चिंतित रहते हैं और बिना बच्चेके स्वास्थ्यका खयाल किए उसे कालेजमें भेजते हैं और इस प्रकार वे उसे घोर विपत्तिमें फँसा देते हैं । वे यह भी चाहते हैं कि लड़का पढ़-लिखकर ऊंचा ओहदा पाए, लंबी तनख्वाह मिले और लोग उसका खूब आदर और सम्मान करें ।

बाहरी सम्मानकी चकाचौंधमें मत आइए । अक्सर लोग इसके अंदर-ही-अंदर पीड़ाओंसे भरा भारमय जीवन व्यतीत करते हैं । सुखी वही है जो पूर्णतया स्वस्थ है, जिसकी आवश्यकताएं कम हैं—और जो सादगीसे और प्रकृतिके निकट रहता है, ऐसा आदमी स्वतंत्र है । उसके हृदयमें मनुष्यके प्रति प्यार होता है, और ईश्वरकी सहायताके प्रति विश्वास ।

जिस लड़केपर हमेशा मानसिक कार्य और चिंताका बोझ

पड़ा रहता है उसके स्नायु दुर्बल हो जाते हैं, फलतः उसकी सारी मेहनतोंके बावजूद रोग और कष्ट ही उसके पल्ले पड़ते हैं। कोशिश करके भी निराशा ही उसके हाथ आती है। ओहदा, सम्मान, नाम, धन, उसे नजदीक आए दिखाई देते हैं पर वे उसकी पकड़में नहीं आते। लड़कियोंपर मानसिक कार्य लादना तो और भी समझमें नहीं आता। उनके लिए तो वह लड़कोंसे भी अधिक हानिकारक है। स्त्रियां और लड़कियां मानसिक कार्यकी कठिनाई सहनेके लिए बनी ही नहीं हैं। जिन माता-पिताओंको इसकी अनुभूति हो गई है कि सुख बड़े कहलानेवाले समाजमें सीमित न होकर वह व्यक्तिके हृदयमें है और फिर निर्धन संतोषी लोगोंमें ही परिव्याप्त है, बहुत सोच-समझकर ही अपने बच्चोंके लिए धंधा चुनेंगे।

सभ्यता, विज्ञान और धनके छलभरे सुख और आनंदके बदले प्रकृतिके साहचर्यमें प्राप्त सच्ची प्रसन्नताको पसंद कर सकना आज अनेकोंके लिए कठिन है। जिन माता-पिताओंने विचारपूर्वक अपना दृष्टिकोण बदल लिया है, जो अभिमानवश कोई कार्य नहीं करते, न अपनेपर आम विचारोंका असर ही पड़ने देते हैं और जो अपने हिताहितको पूरी तरह समझ सकते हैं वे अपने बच्चोंको स्कूलकी उतनी ही शिक्षा दिलवाएंगे जितनी कि आजके जमानेमें नितांत आवश्यक है। स्कूलोंकी अंदरूनी हालतपर जरा गौर कीजिए, तब आप स्वयं कहेंगे कि लड़केकी स्कूली पढ़ाई जितनी कम हो उतना ही अच्छा है। स्कूल कम जानेके कारण लड़केको अच्छा धंधा मिलनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी।

भविष्यमें तो फलोंकी बागवानी आदि अनेक छोटे-छोटे

व्यापारोंके चल निकलनेकी आशा है जिनका करनेवाला स्वतंत्र, सुदर एवं स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकेगा। तब विज्ञान पढ़ानेवाले स्कूलमें मुक्ति खोजनेकी आवश्यकता नहीं है, यह मुक्ति तो प्राकृतिक जीवनके स्वाभाविक परिणाम, अखंड शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य और ईश्वर तथा उसके बंदोंको प्यार करनेसे मिलेगी।

वही जीवनका सच्चा दर्शन है। अपने तथा अपने बच्चोंपर इसका उपयोग करनेसे ही इस सदीका हमारा प्रचलित रोग स्नायुदौर्बल्य शीघ्रतासे जायगा और मनुष्य-जातिपर नूतन आनंदकी वर्षा होगी।

अनेक पैतृक दुर्बलताओंके कारण जन्मसे बच्चोंका शरीर, मन तथा आत्मा स्वाभाविकसे कुछ भिन्न होती है। यदि ऐसे बच्चोंको माता-पिता अपने इच्छित आदर्शकी ओर जबरदस्ती ले जानेकी कोशिश करेंगे तो फल अप्रीतिकर एवं घातक होगा।

जैसा बच्चा ईश्वर हमें दे उसके लिए हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिए और उसका पालन एवं शिक्षण प्राकृतिक ढंगसे, जिसका कि मैंने यहां बयान किया है, करना चाहिए।

इसलिए शिक्षणमें भी हमें प्रकृतिसे ही पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना चाहिए। यह शिक्षणका सबसे आवश्यक सिद्धांत है।

उपचार

आरोग्यलाभसंबंधी विवरणों, धन्यवादके पत्रों आदिका वस्तुतः कोई महत्त्व नहीं है। अप्राकृतिक साधनोंसे दिखावटी लाभ आसानीसे प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्यक्ष रूपमें तो रोग अच्छा हो जाता है, पर बादमें उससे भी खराब दूसरा रोग पैदा हो जाता है। यह कोई जरूरी नहीं है कि यह दूसरा रोग तत्काल प्रकट हो जाय; संभव है, यह पहले-जैसा बुरा भी न जान पड़े, पर दरअसल यह ज्यादा खतरनाक होता है। बहुतसे निःशक्त लोगों, विशेषकर नाड़ीदौर्बल्यवालोंको सुधार जान पड़ने लगता है और वे अपनेको नीरोग समझकर आरोग्य-लाभका विवरण भी लिखकर भेजते हैं, पर पीछे भ्रम दूर हो जानेपर उन्हें घोर नैराश्य होता है।

इसके अलावा प्रशंसात्मक पत्र प्राप्त करनेके लिए चाल-बाजियां भी खूब की जाती हैं। अगर उनपर विचार करें तो हम आसानीसे समझ जायेंगे कि गुप्त और पेटेंट दवाएं वेचनेवाले धूर्त लोग किस तरह आरोग्यलाभकी बहुत-सी रिपोर्टें पेश करते हैं। इसलिए विचार करनेका विषय यह है कि कौन-सी पद्धति कहांतक प्राकृतिक नियमोंके अनुकूल है। जो पद्धति प्राकृतिक नियमोंका अनुसरण करनेवाली होगी वही स्वास्थ्यकी दिशामें अग्रसर कर सकेगी।

मुझे आशा है कि मेरी पद्धति लोगोंका विश्वास प्राप्त कर सकेगी; क्योंकि यह हर पहलूसे प्रकृतिके अनुकूल पड़ती है। इसी विचारसे मैं यहां पत्रोंका उद्धरण और उपचारोंका अधिक विवरण न देकर स्पष्टीकरणके लिए सिर्फ थोड़ेसे उदाहरण दे रहा हूं।

शोथयुक्त आमवात

श्री...ग्रंथिशोथसे पीड़ित थे। ६ महीने पहले भी यह रोग उन्हें हुआ था और (उस समय) निकोटिन विष बुरी तरह इस्तेमाल किया गया था। उन्हें भयंकर दर्द होता था और अंग, विशेषकर हाथ ऐंठकर टेढ़े हो गये थे। उनके चिकित्सकने तो हवासे बचनेके लिए कहा था, पर मैंने उन्हें एक झंझरीदार झोंपड़ीमें रखा। वे निर्वस्त्र कर जमीनपर लिटा दिये जाते थे और वायु-प्रकाशका स्नान भी कई बार कराया जाता था। इस उपचारके बाद उन्हें गरम बिस्तरेपर लिटाकर पसीना लानेके लिए कंबल ओढ़ा दिया जाता था। खानेको गिरी, बादाम, फल, कच्चा दूध, मक्खन और थोड़ी-सी रोटी दी जाती थी।

पहले ही दिन उनका दर्द कम पड़ गया। दूसरे दिन अंग सीधे हो गये, पांचवें दिन टहलने लगे और नवें दिन तो अपना काम शुरू कर दिया।

कठिन नाड़ी-रोग

श्री...नौ वर्षोंसे नाड़ी-रोगसे परेशान थे। अंतमें वे धनुष्टंकारके भी शिकार हो गये। रोगने उन्हें जीवनसे निराश कर दिया था, पर एक ही सप्ताहके उपचारसे सुधारके लक्षण देख पड़ने लगे। उपचारमें वायु-प्रकाश-स्नान, पृथ्वीसे शक्ति-ग्रहण और प्राकृतिक स्नानका क्रम चलाया जा रहा था और खानेको गिरी, फल, दूध, मक्खन और थोड़ी-सी रोटी दी जाती थी। दोपहरतक कुछ नहीं खाते थे और बिना बिस्तरके ही जमीनपर सोया करते थे। १० सप्ताहमें वे पूर्णतः स्वस्थ हो गये। उनका खयाल था कि शयनकालमें धरतीसे प्राप्त होनेवाली शक्ति बहुत लाभदायक सिद्ध हुई।

सिरका विकार और बहरापन

श्री···का सिर एक मंचसे गिरनेके कारण जख्मी हो गया। उनके शरीरमें एकत्र विजातीय द्रव्यको इस क्षत-स्थानसे निकलनेका मार्ग मिल गया और वहां कठिन रुग्णावस्था प्रस्तुत हो गई। वे बचपनसे ही एक कानके बहरे थे। उसमें नश्तर लगा था और उनके मनमें यह धारणा बैठ गई थी कि कर्णपटल काटकर निकाल दिया गया है। इसके अलावा उनकी एक आंख भी खराब थी—हर एक चीज धुंधली-सी दिखाई देती थी। औषधोपचारकोंने जवाब दे दिया था। मेरे उपचारसे एक ही पक्षमें सुधार देख पड़ने लगा। उन्हें केवल सिरके रोगसे छुटकारेकी आशा थी, पर दूसरे सप्ताहमें उन्हें खराब कानसे भी कुछ-कुछ सुनाई देने लगा। जिसका उन्होंने स्वप्नमें भी खयाल नहीं किया था। घर जाकर उन्होंने उपचार जारी रखा और कुछ दिनोंमें उनकी आंखकी खराबी भी बहुत कुछ दूर हो गई।

उपचारमें प्राकृतिक स्नान, वायु और प्रकाशका प्रायः सारे दिन स्नान, नंगे पांव चलना आदि रखे गए थे। उन्हें खुली झोंपड़ीमें सोनेमें बड़ा आनंद मिलता था। खानेको गिरी, गरम मुल्कके फल, दूध, थोड़ी रोटी और मक्खन दिये जाते थे।

उदरविकार और सुषुम्नाका क्षय

एक ४२ वर्षके सज्जन उदरविकार और सुषुम्नाके क्षयसे वर्षोंसे पीड़ित थे। औषधोपचारकोंके कथनानुसार उनके उदरमें घातक अर्बुद था। सुषुम्नाका क्षय उनके चलते समय पैरोंके झटकेसे स्पष्ट हो जाता था। मेरे यहां आनेके समय वे

कोई चीज खानेमें असमर्थ थे और रातमें उन्हें लगभग चालीस बार कै हुआ करती थी।

वे झंझरीदार झोंपड़ीमें रखे गये और पेड़ूपर गीली मिट्टी-की पट्टी लगाई गई। पट्टी रहते समय तो कै बंद रहती, पर हटा लेनेपर फिर शुरू हो जाती। इससे रोगमें मिट्टीकी प्रभावकारिता स्पष्ट हो गई। कभी-कभी साधारण स्नान कर लेते थे, कुछ समर्थ हो जानेपर वायु-प्रकाश-स्नान भी चलाने लगे।

दस दिनोंके बाद मिट्टीकी पट्टी बंद कर देनेपर भी उन्हें कै नहीं आई। उस समयसे उनकी हालतमें सुधार होने लगा। भूख भी अच्छी मालूम होने लगी और बिना किसी हिचकके भरपेट फल खाने लगे। उदर-विकार दूर होनेपर सुषुम्नाका क्षय भी अच्छा होने लगा।

मूत्रावरोध—जलोदरका पूर्वरूप

श्री····दो सालसे सख्त बीमार थे और इसके कारण उन्हें अपना काम छोड़ देना पड़ा था। कृत्रिम सहायता लिये बिना कभी पेशाब नहीं उतरता था और पैरका शोथ भी शुरू हो गया था। इस समयतक वे कम-से-कम ७० चिकित्सकोंको अपना रोग दिखला चुके थे जिनमेंसे लगभग २० तो प्रसिद्ध प्राध्यापक थे। उन्होंने कई पेटेंट दवाओंका भी इस्तेमाल किया था और कुछ हदतक भ्रममें डालनेवाले आरोग्यलाभका अनु-भव भी किया था, पर इन अप्राकृतिक उपचारोंसे रोग घटनेके बजाय बढ़ता ही गया। मेरे यहां आनेके समय उनकी बीमारी भयंकर रूप धारण कर चुकी थी और वे मौतके डरसे जड़-से

हो गये थे। मूत्र अन्य मार्गोंसे निकलनेका प्रयत्न कर रहा था, यह ऊपरसे ही देखनेसे स्पष्ट हो जाता था। घुटनेके नीचे कई जगह खुले फोड़े हो गये थे जिनसे वदवूदार पंछा निकल रहा था। हालत कैसी खतरनाक थी यह समझनेमें देर न लगी। वे झंझरीदार झोंपड़ीमें पहुंचा दिये गये जिसमें उन्हें शुद्ध हवा मिल सके। पेड़ूपर और वृक्कवाले भागपर मिट्टीकी पट्टी लगाई गई जो थोड़ी देरके वाद वदल दी जाती थी। वायु-प्रकाश-स्नानके लिए उन्हें कभी-कभी झोंपड़ीसे वाहर भी आना पड़ता था। धरतीसे शक्ति प्राप्त करनेके अवसरोंका भी उन्होंने लाभ उठाया। पहले केवल फल खानेको दिये जाते थे, पीछे दूध, मक्खन और रोटी भी दी जाने लगी। इस उपचारसे उन्हें दूसरे ही दिन काफी पेशाव उतरा और साथ ही मामूली पाखाना भी हुआ। तीसरे दिन चलने लगे और चौथे दिन तो उनमें दौड़नेकी शक्ति आ गई। दूसरे सप्ताहमें पैरके जख्म सूख गये और वे पहाड़पर तीन-तीन, चार-चार घंटे चक्कर लगाने लगे।

नाड़ी-क्षोभ

श्री·····के नाड़ीसंस्थानमें इतना क्षोभ था कि वे ६ माससे काम छोड़कर घर वैठे हुए थे। रातको उन्हें जरा भी नींद नहीं आती थी और वेचैनीके मारे वड़वड़ाते रहते थे। वायु-प्रकाश-स्नान विशेष रूपसे कराया गया। पांचवें दिन वर्षाके कारण ठंढ अधिक थी। इससे उन्हें वड़ा लाभ हुआ। वे वहुत जल्द नीरोग होकर अपना काम करने लग गये। नाड़ीरोगोंमें ठंढी हवा और प्रकाशका स्नान वहुत प्रभावकारी होता है।

श्वसनक सन्निपात (न्यूमोनिया)

श्री····६ सप्ताहसे न्यूमोनियासे पीड़ित थे। उन्हें बड़ी परेशानी थी। औषधोपचार चल रहा था और मेरे यहां आनेके पहलेतक वे एक कमरेमें कैदीकी-सी हालतमें रखे गये थे। घातक ठंड लगनेका भय उनके दिमागसे निकाल देनेपर वे घंटों नंगे बाहर घूमने लगे। पहले ही दिन शामको उनकी तबीयत हलकी जान पड़ने लगी। उनके मतसे ६ सप्ताहके औषधोपचारसे जितना लाभ हुआ था उससे अधिक सिर्फ एक दिनमें सादे तरीकोंसे हुआ। कुछ ही दिनोंके उपचारसे वे बिलकुल नीरोग हो गये।

शोथ—जलोदर

श्री····शोथरोगसे ग्रस्त थे। उनके चिकित्सकोंके मतसे रोग असाध्य था। मेरे यहां वे बड़ी मुस्तैदीसे वायु-प्रकाश-स्नान चलाने लगे। शोथके स्थानों, विशेषकर उदर और पैर-पर मिट्टीकी पट्टीका प्रयोग किया गया। झोंपड़ीके परदे रातको यथासंभव खुले रखे जाते थे। आहार भी प्राकृतिक रखा गया। पहले ही सप्ताहमें अच्छा फल दिखने लगा और वे शीघ्र ही नीरोग हो गये।

श्री····का जलोदर सिर्फ बारह दिन उपचार करनेपर चला गया। इतनी शीघ्रतासे नीरोग हुआ देख उनका औषधो-पचारक अवाक् रह गया।

गलेका रोग

श्री····गलेके रोगसे वर्षोंसे पीड़ित थे। औषधोपचारसे

उन्हें अवतक कोई लाभ नहीं हुआ था। उपचारके और साधनोंके साथ गलेपर गीली मिट्टीका प्रयोग करनेपर उन्हें जल्द ही आरोग्यलाभ हो गया।

सिरकी रूसी

कुमारी····के सिरमें रूसी पैदा हो गई थी। फलाहार, वायु-प्रकाश-स्नान आदिके द्वारा शरीरको विजातीय द्रव्यसे मुक्त करनेका प्रयत्न किया गया। सिरपर गीली मिट्टीकी पट्टी भी लगाई जाती रही जो उसे वहुत अनुकूल जान पड़ी। चार ही सप्ताहमें वह विलकुल अच्छी हो गई।

सुषुम्नाका क्षय

श्री····सुषुम्नाके क्षयसे ग्रस्त थे। एक प्रसिद्ध चिकित्सालयमें चौदह सप्ताह रहे, पर कोई लाभ नहीं हुआ। वायु-प्रकाश-स्नानसे उनकी शक्ति वहुत वढ़ गई। पैरोंपर गीली मिट्टीका प्रयोग किया गया। शीघ्र ही सुधार देख पड़ने लगा। दो सप्ताह वाद वे लगातार घंटों टहलने लगे। चलते समय पैरोंका झटका कम पड़ता जाकर विलकुल दूर हो गया।

दंतपीड़ा

श्री····भयंकर दंतपीड़ासे हफ्तोंसे वेचैन थे। दंतोपचारकोंने दांतोंके गड्ढोंको भरकर पीड़ा-नाशक दवाओंका भी इस्तेमाल किया, पर किसीसे कोई लाभ नहीं हुआ। दर्दवाले दांतके सामने गालपर मिट्टीकी पट्टी देनेपर कुछ दिनोंमें दर्द विलकुल दूर हो गया। मिट्टी कभी धोखा नहीं देती, दर्दके कारणको ही दूर कर देती है।

अस्थिक्षय

श्री···के पैरकी अस्थि क्षयग्रस्त थी। वे ६ महीने अस्पतालमें रहे, दो वार नश्तर लगा और नीचेकी एक हड्डी भी निकाल दी गई, फिर भी पैर अच्छा नहीं हुआ। अगर उन्होंने मेरे उपचारका सहारा न लिया होता तो शायद पैर काटकर अलग भी कर दिया गया होता। वायु-प्रकाशस्नान, फलाहार आदिके साथ गीली मिट्टीके प्रयोगसे विलकुल नीरोग हो गये। निकाली हुई हड्डीकी जगह नई हड्डी तो नहीं वैठाई जा सकती थी पर पैर बिलकुल नीरोग हो गया और वे लंगड़ाते हुए उसका उपयोग भी करने लगे।

आंत्रिक सन्निपातज्वर

एक दस बरसका बच्चा आंत्रिक सन्निपातज्वरसे ग्रस्त हुआ। उसकी माताने पत्रद्वारा मेरी राय पूछी। मैंने खिड़कियां खुली रखकर नग्न सुलाने, भोजन बंद कर देने या नाममात्रका देने और रोज मामूली स्नान करानेको कहा। इस उपचारसे बच्चा दो-तीन दिनोंमें ही अच्छा हो गया। माताने औषधोपचारकसे कहे विना चुपके-चुपके यह उपचार किया। खतरनाक बुखारसे अत्यल्प समयमें ही बच्चेको मुक्त देखकर चिकित्सकको बड़ा अचंभा हुआ। उसने अपने आश्चर्यपर यह कहकर परदा डालनेकी कोशिश की कि निदानमें गलती हुई होगी, यह आंत्रिक सन्निपातज्वर नहीं था, हालां कि वह पहले कह चुका था कि वदनपर नजर आनेवाले दाग आंत्रिक सन्निपातज्वरके ही सूचक हैं। अगर रोगका चिह्न प्रकट

होनेके साथ ही ठीक उपचार हुआ होता तो कुछ ही घंटोंमें वह अच्छा हो गया होता।

साधारण निर्बलता

कुमारी···नाड़ी-संस्थानकी अस्तव्यस्तताके कारण बहुत कमजोर हो गई थी और उसका सिर बराबर भारी रहा करता था, वह बहुत कम चल पाती थी। जंगबार्नमें उपचार करानेपर दो ही सप्ताहमें वह बिना थकावट महसूस किये ११ घंटे रोज चलने लगी। इससे यह सिद्ध हो गया कि फलाहार, वायु-प्रकाश-स्नान आदिसे शक्ति प्राप्त होती है। साधारणतः यही विश्वास किया जाता है कि मांसाहारसे ताकत बढ़ती है, पर तथाकथित शक्तिवर्द्धक मांसाहार ही उक्त कुमारीकी निर्बलता और अस्वस्थताका कारण हुआ। फलाहारके सहारे वह जल्द ही स्वस्थ और सशक्त हो गई।

मूर्च्छा

श्रीमती····को मूर्छा हो गई थी। गर्दनपर गीली मिट्टी-की पट्टी रखनेपर उन्हें फौरन होश हो गया। इससे स्पष्ट है कि मिट्टीकी पट्टी रोजमर्राके जीवनमें भी लाभदायक होती है।

भगंदर

श्री····को भगंदर हो गया था और मेरे यहां आनेके पहले नश्तर भी लगाया जा चुका था। मुझे उनकी अवस्था चिंताजनक जान पड़ी। वे बैठनेके लिए हमेशा अपने साथ रबरका तकिया लिए चलते थे। मुझे भी उनके नीरोग होनेकी

आशा नहीं थी; क्योंकि मिट्टीकी पट्टी रुग्णभागतक नहीं पहुंच सकती थी और बाहरसे भी उसपर कोई प्रभाव नहीं डाला जा सकता था। फिर भी मिट्टीकी पट्टीका ही प्रयोग किया गया और इसीसे वे अच्छे भी हो गये।

अंधता

श्री····की एक आंख कुछ दिनोंसे बिलकुल अंधी हो गई थी। औषधोपचारकोंकी सारी कोशिश बेकार साबित हुई। मेरा उपचार चलानेपर कुछ ही दिन बाद उन्हें कुछ-कुछ दिखाई देने लगा। कुछ हफ्ते बाद आंख बिलकुल अच्छी हो गई। मिट्टीकी पट्टीने इसमें भी आश्चर्यजनक कार्य कर दिखलाया। उनके घर पहुंचनेपर उनका चिकित्सक मेरे उपचारकी यह सफलता देखकर अवाक् रह गया।

बालविसूचिका

एक ढाई सालके बच्चेको (बाल) विसूचिका हुई। उसको ज्वर हो आया। माता प्राकृतिक उपचारकी पुरानी पद्धतिसे परिचित थी। उसने दो बार शीतल स्नान कराया जिससे बुखार कम हो गया, पर फिर बढ़ गया। दूसरे दिन उसका पिता, जो मेरे सरल ढंगसे परिचित था, घर आया और बच्चेको खुली खिड़कीके सामने डेढ़ घंटे नग्न अवस्थामें अपनी गोदमें रखा जिससे बुखार बहुत कम हो गया। दूसरे दिन ज्वर फिर कुछ बढ़ा, पर वायु-प्रकाश-स्नान करानेपर रोग पूर्ण रूपसे चला गया।

बालविसूचिका होनेपर माताएं बहुत घबड़ा जाती हैं और औषधोपचारद्वारा नन्हे-से शरीरको हानि पहुंचाई जाती

है। मेरी पद्धतिमें शत्रुका वीरतापूर्वक सामना किया जाता है और भयका नाम भी नहीं रहता; क्योंकि स्वयं प्रकृति हमारा मार्ग-प्रदर्शन करती है जो हमारा साथ कभी नहीं छोड़ती। चंद दफा हवा और प्रकाशका स्नान, जिसके लिए किसी यंत्र, कंवल आदिकी कोई जरूरत नहीं होती और कुछ खर्च भी नहीं पड़ता, वच्चेको विलकुल नीरोग कर देता है और वच्चा जोशमें भरकर उछल-कूद मचाने लगता है।

जननेंद्रियके रोग

श्री····को वर्षोंसे नाड़ी-दौर्वल्य था। सिर वरावर भारी रहा करता था जिससे वे काम करनेमें असमर्थ हो गये थे और जीवनसे ऊवकर आत्महत्याकी ही वात सोचा करते थे। औपधोपचारकोंके निदान परस्पर-विरोधी थे और सबने रोगका दूसरा-ही-दूसरा कारण वतलाया। मेरा उपचार आरंभ करनेपर शीघ्र ही परिवर्तन देख पड़ा। एक पक्षके वाद सूजाक उभर आया। उन्होंने वतलाया कि कुछ वर्ष पहले एक लड़कीसे संवंध होनेपर यह रोग हुआ था और एक लेपका प्रयोग किया गया था। मेरे उपचारसे सूजाक जल्द ही अच्छा हो गया और उसके साथ ही नाड़ीदौर्वल्य भी जाता रहा। शक्ति प्राप्त हो जानेपर फिर जीवनमें दिलचस्पी पैदा हो गई।

यौन-अनैतिकता मनुष्यको सबसे अधिक हानि पहुंचाती है। यह भ्रष्टाचार आज वहुतसे रोगोंका कारण हो रहा है। यौनरोग जननेंद्रियोंमें ही उत्पन्न होते हैं और उनका पहला रूप सूजाक है। यह एक प्रकारसे तीव्र यौनरोग कहा जा सकता

है। मूत्रनलिकामें प्रतिश्याय हो जाता है और मवादके रूपमें उससे विप निकलने लगता है।

जीवन संयत न रहनेपर सूजाकसे छुटकारा नहीं मिलता, और औपधोपचारसे तो विप शरीरमें स्थायी रूपसे अड्डा जमा लेता है। इससे अंधता, क्षय, घातक अर्बुद आदि भयंकर रोग हो जाते हैं इसलिए मनुष्यको इस प्रकारके दुष्कर्मसे वचनेका प्रयत्न करना चाहिए और यदि भूलसे रोग हो ही जाय तो आरंभ होनेके साथ ही सही प्राकृतिक उपचार कराना चाहिए।

उपदंश और तज्जन्य व्रण सूजाकसे भी खतरनाक होते हैं। उनकी पहचान जननेंद्रियपर हुए फोड़ेसे हो सकती है। अगर इनपर जल्द ध्यान न दिया जाय तो शरीरमें विप तेजीसे वढ़ने लगता है और विभिन्न रूपोंमें प्रकट होता है। सारे शरीरमें यहांतक कि मुंहके अंदर भी फोड़े हो जाते हैं जिससे मनुष्यको समाजका त्याग कर देना पड़ता है। यह विप अपस्मार, उन्माद, सौपुम्निक क्षय आदि रोगोंके रूपमें भी प्रकट हो सकता है।

ये सव वुराइयां विशेषकर पारेके प्रयोगसे ही उत्पन्न होती हैं। यह शरीरके विपको निकाल वाहर करनेमें तो असमर्थ वना ही देता है, ऊपरसे और भयंकर विपके रूपमें शरीरमें पहुंच जाता है। इसके उपचारमें पारेका प्रयोग प्रकृतिके नियमोंके विरुद्ध और मानवताके प्रति भयंकर अपराध है।

उपदंश भी प्राकृतिक उपचारसे अच्छा हो जाता है। रोग हालका होगा तो जल्द हो अच्छा हो जायगा, पुराना हो तो धैर्य और अध्यवसाय आवश्यक होगा।

मधुमेह

यह रोग भी बहुत भयंकर होता है। औषध-विज्ञान इसमें खास तौरसे मांसाहारकी राय देता है, पर इस तरीकेसे मधुमेह कभी अच्छा होते नहीं देखा गया। और रोगोंकी तरह यह भी अप्राकृतिक जीवनका ही परिणाम होता है। मांसाहार-संबंधी उक्त गलत धारणाके कारण रोगियोंको फलाहारपर लाना कठिन होता है। इस धारणाका शीघ्र अंत कर लोगोंको यह हृदयंगम कर लेना चाहिए कि रोगोंमें कोई अंतर नहीं होता और सबका उपचार प्रकृतिके नुस्खेके मुताबिक होना चाहिए। जब मनुष्यको उपचारके सही तरीकेका पता चल जायगा तो मधुमेहसे डरनेका कोई कारण नहीं रहेगा।

फोड़े

श्री····को दो सालसे सारे शरीरमें फोड़े हो गये थे। अबतक वे पेटेंट लेपोंका प्रयोगकर उनसे पिंड छुड़ा रहे थे। पिंड क्या छुड़ा रहे थे एलोपैथिक लेपोंके सहारे विकृत द्रव्यको बाहर न निकालकर शरीरमें लौटाते जा रहे थे। इस अप्राकृतिक उपचारका परिणाम यह हुआ कि उनका बायां पैर इतना सूज गया कि वे चलने-फिरनेसे लाचार हो गये। जांघके ऊपरी हिस्सेपर विजातीय द्रव्यका इतना अधिक असर हुआ था कि वह बिलकुल काला पड़ गया था। स्थिति चिंताजनक थी। बहुतसे औषधोपचारकोंने तो पैर कटवा देना ही अच्छा समझा होता। विश्व-व्यापक उपचार गीली मिट्टीकी पट्टी-ने इसपर भी अपना कर्तव्य पूरे तौरसे निभाया। जांघके ऊपरी हिस्से—सूजनवाली जगह—पर पट्टी लगानेपर

चौथे दिन सारा विजातीय द्रव्य एकत्र हो गया और वहांसे मवाद तथा दूषित रक्त निकलने लगा। वहां एक छेद हो गया और उसी राहसे विजातीय द्रव्य रोज सतहपर आने लगा। लगातार पट्टी लगाते रहनेपर कुछ दिनोंमें जख्म भर गया। पट्टीके साथ-साथ शुद्ध हवा, धूप, वर्षा, फलाहार आदिने भी विजातीय द्रव्य बाहर निकालनेमें मदद की। मवाद निकलते समय रोगीका पेशाब भी रक्त-जैसा होता था जिससे यह स्पष्ट था कि उस मार्गसे भी विकार निकल रहा है।

मेरी पद्धतिसे उपचार करनेपर आरंभमें प्रायः फोड़े निकल आते हैं। कारण बिलकुल साफ है और यह शुभ लक्षण भी है; क्योंकि यह इस बातका सूचक है कि मेरे उपचारसे मल निकालनेवाले अंगोंको उत्तेजन मिला है। जबतक यह चलता रहे तबतक फोड़ेके संबंधमें कुछ न किया जाय, प्रकृतिको स्वयं अपनी फिक्र करनेके लिए छोड़ दिया जाय। अगर दर्द बढ़ जाय तो गीली मिट्टीकी पट्टीसे काम किया जा सकता है। फोड़ोंका उपचार सिर्फ गीली मिट्टीसे होना चाहिए, उन्हें चीरने या खोलनेकी जरूरत नहीं है। पकनेपर वे स्वयं फूट जायंगे और तब उन्हें बहानेमें यह मिट्टी और मदद करेगी।

फोड़ा निकलना शरीरके लिए बहुत लाभदायक है। इसमें कभी-कभी ज्वर भी हो जाता है जो इस बातका प्रमाण है कि शरीर स्वास्थ्यलाभकी क्रियामें संलग्न है।

मैंने प्रायः देखा है कि लोग गरम पट्टी या गरम पुलटिस छोड़नेके लिए जल्द राजी नहीं होते। यह प्रकृतिविरुद्ध है; क्योंकि गरम सेंकसे फोड़ा प्रायः समयके पहले ही पक जाता है। अप्राकृतिक उपचारसे शरीरको कुछ-न-कुछ हानि होती ही है।

गीली मिट्टीकी पट्टीसे ही शरीरको आराम मिलता है और घाव जल्द भर जाता है। अगर पतले सूती कपड़ेपर गीली मिट्टी फैला दी जाय तो वह पलस्तरकी तरह चिपक जायगी, ऊपरसे वांधनेकी जरूरत नहीं रहेगी।

शिरःशूल

श्री····वर्षोंसे शिरःशूलसे परेशान थे। रातको गरदनपर गीली मिट्टीकी पट्टी लगानेसे इस दीर्घकालीन शिरःशूलसे उन्हें हमेशाके लिए छुटकारा मिल गया।

दद्रु आदि चर्मरोग

श्री····वर्षोंसे क्षयकारक चर्मरोगसे पीड़ित थे। सारे उपचार निरर्थक सिद्ध हो चुके थे। गीली मिट्टीकी पट्टी-ने उन्हें रोगसे पूर्णतः मुक्त कर दिया।

सर्पदंश

हालमें ही एक ग्राममें एक लड़कीको घास छीलते समय एक वहुत विषैले सांपने डंस लिया। पैर सूजने लगा और उसे वहुत पीड़ा होने लगी। नगर ले जाते समयतक हाथ भी सूज गया और वह वेहोश हो गई। चिकित्सकोंके जवाव दे देनेपर उसका पिता मुरदेकी-सी हालतमें उसे वापस लाया। उसने कभी दंतकथाके रूपमें सुना था कि सदियों पहले संर्प-दंशसे इसी अवस्थामें पहुंचा हुआ एक आदमी जमीनमें गाड़नेसे अच्छा हो गया था। उसने भी यही करनेकी ठानी और वागमें गड्ढा खोदकर लड़कीको गलेतक नग्न गाड़ दिया। अधिकारियोंने लड़कीको निकलवानेकी कोशिश की, पर गांववालोंने पिताका

पक्ष लिया और सामूहिक रूपसे अधिकारियोंका विरोध करने लगे। बलवा होनेकी संभावना देखकर अधिकारी चुप हो गये। चौबीस घंटेके बाद निकालनेपर लड़की बिलकुल अच्छी पाई गई।

इस घटनासे यह स्पष्ट है कि अंतिम अवस्था प्रस्तुत हो जानेपर भी मिट्टी विषसे मुक्त कर देती है। अगर मिट्टी-का प्रयोग तत्काल किया जाय और एक-एक घंटेपर पट्टी बदली जाती रहे तो सर्पके विषका सारा असर जाता रहेगा।

पागल कुत्तेके काटनेपर भी सर्पदंशकी ही तरह गीली मिट्टीकी पट्टी फौरन लगाई जानी चाहिए। प्रोफेसर पास्ट-रकी युक्ति अविश्वसनीय और अनिश्चित है, पर प्रकृतिकी युक्ति कभी व्यर्थ नहीं जाती। अगर पास्टरके तरीकेसे कुत्तेसे प्राप्त उन्मादसे पिंड छूट भी जाय तो उससे मनुष्यका स्वास्थ्य इतना खराब हो जाता है कि वह कुत्तेके उन्मादसे भी भयंकर रोगका शिकार हो जाता है।

इन बातोंसे स्पष्ट है कि मिट्टी कैसी प्रभावकारी वस्तु है। वस्तुतः यह बिना मूल्यकी या सस्ती होते हुए भी अनमोल और सर्वसुलभ उपचारका साधन है।

सुषुम्नाका रोग और मोटापा

श्री····की नाड़ियां रुग्ण हो गई थीं और सुषुम्ना तो बिलकुल निष्क्रिय हो गई थी। उनका वजन २१५ पौंड था। मेरे यहां आनेके समय उनके बचनेकी कोई आशा नहीं थी, पर चार ही सप्ताहमें वे नीरोग होकर चले गए और अपना कारबार भी शुरू कर दिया। यहां उनका वजन ५५ पौंड घट

गया। वे प्रायः कमरतक और कभी-कभी सीनेतक जमीनमें गाड़ दिए जाते थे। यह उपचार बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ। और सब उपचार भी यथाविधि चलाए जाते रहे।

शोथयुक्त जीर्ण आमवात

श्री····जीर्ण शोथयुक्त आमवातसे वर्षोंसे ग्रस्त थे जिससे उनके अंग गतिहीन हो गये थे। प्राकृतिक उपचारकी पुरानी पद्धतिसे भी उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ और हालत दिनोंदिन खराब ही होती गई। उनका एक पैर काटा जाने-वाला था ही कि संयोगसे मेरी पुस्तक उनके हाथ पड़ गई। स्नान, फलाहार, वायु-प्रकाश-स्नान आदिसे उनको इतने कम समयमें आरोग्यलाभ हुआ कि उनके मित्र देखकर चकित रह गये। पैरकी तो रक्षा हो ही गई।

गठिया, कंप, कटिशूल तथा इस श्रेणीके अन्य रोग रक्तके दूषित होनेपर ही होते हैं। प्राकृतिक चिकित्साके सही तरीकेसे ये बहुत जल्द अच्छे हो जाते हैं।

कुत्तेके काटनेका घाव

श्री····को एक बड़े कुत्तेने काटा था जिससे दो घाव हो गए थे। एक घाव तो इतना बड़ा था कि देखनेवालेको यह विश्वास ही नहीं होता था कि वह कुत्तेका काटा हुआ है। वह लगभग पौने दो इंच बड़ा और पौन इंच गहरा था। कुत्तेने वहांका मांस नोच लिया था।

कुत्तेका काटना घावसे ज्यादा खतरनाक होता है इस कारण उनके मित्र बहुत चिंतित थे। मैंने घावको ठंडे पानीसे

खूब तरकर गीली मिट्टीकी पट्टी लगा दी और ऊपरसे गीले सूती कपड़ेसे उसे बांध दिया। पट्टी रोज सुवह वदल दी जाती थी। वे मेरे वताए हुए नियमोंके अनुसार प्राकृतिक ढंगसे रहते थे और वरावर चलते-फिरते, दौड़ते और पहाड़-पर भी चढ़ते रहे, पर कभी किसी तरहकी तकलीफ नहीं हुई। छोटा घाव तो दूसरे ही दिन भर गया, वड़े घावके कारण भी उनको कोई कष्ट नहीं हुआ और न उसमें सूजन ही हुई। तीन सप्ताहमें वड़ा घाव भी भर गया। पट्टी खोलनेपर उसमेंसे वदवूदार पंछा निकला करता था। मिट्टी घावके जरिए सारे शरीरके विकृत पदार्थको खींच लेती है, इसी कारण वह सर्पदंश आदिमें लाभदायक होती है। इस प्रकारके जख्मोंमें तंवाकू, शराव आदि मादक वस्तुएं वहुत हानिकारक होती हैं।

सारे मांसाहारी जीव हिंस्र होते हैं, पर हिंसाकी यह प्रवृत्ति क्षुधाकी तृप्तिके लिए ही जाग्रत होती है। मांसाहारी पुरुषोंमें यह प्रवृत्ति बड़े घृणित रूपमें व्यक्त होती है। मनुष्यके लिए मांसाहार प्राकृतिक नहीं है इसलिए इससे विचारों और भाव-नाओंका विकृत होना स्वाभाविक ही है। इसके अलावा एक और राक्षस मद्यके रूपमें लोगोंमें घुसा हुआ है जो बहकाकर सर्वनाश किया करता है। मनुष्य केवल आहारके लिए हत्या नहीं करता, वह अपने भाइयोंपर भी हाथ साफ किया करता है।

मनुष्यकी हिंस्र प्रवृत्तिका नियमन करने और इसकी भयं-करता कम करनेके लिए ही युद्धकला विकसित की गई है। युद्धमें मनुष्यको अपनी रक्तपिपासा शान्त करनेका अवसर मिलता है। रक्तकी नदियां वह चलती हैं और विजयके हर्ष-

नादमें मरते हुए लोगोंके कराहनेकी आवाज और भग्न हृदय पुत्रों, पिताओं, माताओं और स्त्रियोंके आर्तनाद मिले रहते हैं। अगर मनुष्यकी हिंस्रवृत्तिको खुलकर खेलनेका अवसर मिले, शांतिप्रिय सरकारें उसे रोकनेमें समर्थ न हो सकें तो उस हालतमें मैं लोगोंका ध्यान मिट्टीकी ओर आकृष्ट करूंगा। घायल सैनिकके लिए मिट्टी सुलभ है। वह अपनी लारसे इसे भिगो सकता है। अगर गोली नहीं निकलती तो उसे पड़ी रहने दीजिए, उसे निकालनेके लिए चीर-फाड़ करना हानिकारक ही नहीं, खतरनाक भी होता है। जख्मपर गीली मिट्टीकी पट्टी लगा देनेपर तकलीफ दूर हो जायगी और वह अच्छा होने लगेगा। अगर गीली मिट्टीका प्रयोग किया जाने लगे तो युद्धक्षेत्रके अस्पतालमें अंग-भंग करनेकी उतनी जरूरत नहीं रहेगी और जख्मीके कारण होनेवाली मृत्युसंख्या भी कम हो जायगी।

श्री····भीषण नाड़ीविकारसे ग्रस्त थे। किसी उपचारसे कोई लाभ न होनेपर उन्होंने तीन मास मेरा उपचार चलाया। बचपनमें उन्हें कोई बालरोग नहीं हुआ था और बादमें भी कोई तीव्र रोग या जुकाम नहीं हुआ था। उन्होंने इसे अच्छे स्वास्थ्यका लक्षण माना था, पर असल बात यह थी कि उनका शरीर तीव्र रोगों या जुकामके जरिए विजातीय द्रव्य बाहर निकालनेमें समर्थ नहीं था। नाड़ीरोगका यही कारण था। अगर उन्होंने प्राकृतिक उपचारका सहारा न लिया होता तो किसी पागलखानेमें होते या कब्रमें। उपचार आरंभ होने-पर उन्हें बड़े-बड़े फोड़े निकलने लगे। इसके बाद छोटे-छोटे तीव्र रोग शुरू हुए और विसूचिकाके लक्षणोंसे युक्त अतिसार

भी हुआ। इन सबसे उनको कुछ आराम ही मिलता गया। अंतमें भयंकर इन्फ्लुएंजा प्रकट हुआ। चेहरा विवर्ण हो गया और कमजोरी भी बढ़ गई। वर्षा और अधिक ठंढ होनेपर भी वे खुली झोंपड़ीमें रखे गये। कभी-कभी आधे घंटेतक वायु-प्रकाश-स्नान भी चलाते रहे। वे शायद ही कुछ खाते थे। साधारण स्नान भी चलता था। उस झोंपड़ीमें कुछ ही घंटोंतक रहनेपर उन्हें बड़ा आराम मालूम हुआ। विजातीय द्रव्य ढीला पड़कर मुंह और नाकसे निकलने लगा और पसीना आना भी शुरू हो गया। इसके अनंतर ज्वर उतर गया और उन्हें ऐसा जान पड़ा जैसे स्वास्थ्यकी दिशामें काफी आगे बढ़ गये हों।

क्या यह सीधा-सादा और सस्ता उपचार नहीं है? बहुतसे लोग इन्फ्लुएंजाका अप्राकृतिक उपचार कराकर कालके शिकार हो जाते हैं और जो बच जाते हैं उनकी हालत मरे हुए लोगोंसे भी खराब होती है; क्योंकि हलका तीव्र रोग जीर्ण रोगमें परिणत हो जाता है और वे जीवनमें तरह-तरहके कष्टों और रोगोंके शिकार होते रहते हैं।

यह खयाल करना कि केवल सबल व्यक्ति खुली हवासे लाभ उठा सकता है, भ्रम है। हवा कभी किसीको किसी भी हालतमें नुकसान नहीं पहुंचाती। कम तापमें वायु-प्रकाश-स्नानसे निर्बलोंको शक्तिवृद्धिकी अनुभूति होती है, यह बात यदि ब्रह्मा भी आकर कहें तो किसीको विश्वास नहीं होगा। जो व्यक्ति इस प्रकारकी झोंपड़ीमें रहनेका प्रबन्ध नहीं कर सकता उसे रातमें कमरेकी खिड़कियां खोलकर सोना चाहिए और नग्न शरीरमें वायु-प्रकाश लगने देना चाहिए। अगर सबल व्यक्तिके लिए हवा और प्रकाश आवश्यक है तो निर्बल और

अस्वस्थके लिए तो इनकी आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। रोगमें वायु हानिकर होती है, यह धारणा बड़ी हानिकारक है। बच्चोंको मसूरिका, रक्तपित्त आदि रोग होनेपर खिड़कियां बंद कर हवा और प्रकाशका प्रवेश बंद कर दिया जाता है या उन्हें जल्द खुली हवामें नहीं जाने दिया जाता; पर इससे बच्चों-का जीवन दुःखमय हो जाता है, वे अन्धता, बधिरता, मानसिक दौर्बल्य आदिके शिकार होते रहते हैं या कब्रिस्तानमें कब्रोंकी संख्या बढ़ाते हैं।

एक लड़केको मसूरिका निकलनेपर कमरेकी खिड़कियां बराबर खुली रखी गयीं, वायु-प्रकाशका स्नान कराया गया और तीसरे ही दिन मैदानमें निकाला गया। घर तथा पड़ोसके सभी लोग मां-बापके इस कार्यपर बुरा-भला कहने लगे और औषधोप-चारकने तो यहांतक कहा कि अगर ६ महीनेतक भी कोई खराबी नहीं देख पड़ी तो भी इसका नतीजा बुरा ही होगा। मसूरिका निकले कई साल हो गये, पर बच्चा प्राकृतिक ढंगसे रहता हुआ संतोषजनक रीतिसे प्रगति कर रहा है और अपने मां-बापके आनंदका कारण हो रहा है।

रोग होनेपर लोग मनुष्योंद्वारा आविष्कृत दवाओंके लिए चिकित्सकोंके यहां दौड़ते हैं जो खुद दर्द और रोगसे कराहते रहते हैं। जो लोग ऐसा करते हैं वे चतुर माने जाते हैं और प्रकृतिके उपायोंकी खिल्ली उड़ायी जाती है और जो लोग इन उपायोंका सहारा लेते हैं उनपर फबतियां कसी जाती हैं।

उपर्युक्त सभी रोगोंमें एक ही तरहका उपचार किया गया, केवल स्थानिक उपचारके लिए गीली मिट्टीके प्रयोगमें कुछ अंतर पड़ा। सबने पेड़ूपर गीली मिट्टीकी पट्टी लगाई और

नंगे पैर चलनेको सवको प्रोत्साहन दिया गया। योग्य व्यक्तियोंसे मालिश भी कराई गई। मालिश प्रायः साधारण स्नानके वाद हुई और यह बहुत लाभदायक सिद्ध हुई।

आरोग्यलाभका तरीका सादा होना चाहिए और उसमें वही एकसूत्रता होनी चाहिए जो स्वयं प्रकृतिमें है। यह सत्य है कि सभी लोगोंमें प्रगति एक-सी नहीं होती, पर इसका कारण पद्धति नहीं, शरीरमें वर्त्तमान जीवन-शक्तिका अंतर है।

तरह-तरहके रोगोंके नामों और लक्षणोंके फेरमें पड़कर समय नष्ट करना ठीक नहीं; जहां कोई रोगसंवंधी लक्षण देख पड़े प्रकृतिके नियमोंके अनुसार चलकर आरोग्यलाभका प्रयत्न शुरू कर देना चाहिए। आजकल रोगकी परीक्षा करनेकी विचित्र-सी चाल चल पड़ी है और अप्राकृतिक उपचार चलानेकी तैयारीमें ही कई दिन लग जाते हैं। इस परीक्षा और तैयारीमें जितना समय लगता है उतनेमें तो रोगसे मुक्ति ही मिल जा सकती है।

मैंने अवतक जो कुछ कहा है उससे हर एक आदमीको यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि रुग्णावस्थामें क्या करना चाहिए। रोगोंसे वचा रहकर कैसे जीवन व्यतीत किया जा सकता है, इसपर काफी लिख चुका हूं, फिर भी अगर रोग हो ही जाय तो शांत रहिए। मैंने प्राकृतिक उपचारके जो साधन वतलाये हैं उनकी सहायतासे रोहिणी, आंत्रिक सन्निपातज्वर, विसूचिका आदि भयंकर रोगोंकी सारी भयंकरता जाती रहेगी।

हर हालतमें शुद्ध, ताजी हवाकी प्राप्तिपर ध्यान दीजिए, गीली मिट्टीकी पट्टीका प्रयोग कीजिए, वायु-प्रकाशका स्नान और शीतक स्नान चलाइए, मालिश कराइए, उपवास कीजिए

और रोगमुक्त होनेपर भरसक अपक्वाहार ग्रहण कीजिए, खुली जगहमें रहिए, नंगे पांव चलिए और यथासंभव धरतीकी शक्तिका उपयोग कीजिए। जिन लोगोंने मेरी बातोंका समझदारीके साथ अनुसरण किया होगा वे यह समझ गये होंगे कि सभी रोगोंमें एक ही तरीका क्यों बरता जाता है और भिन्न-भिन्न रोगोंके लिए भिन्न-भिन्न तरीके क्यों नहीं हैं।

उदाहरणार्थ, अगर कोई व्यक्ति आंत्रिक सन्निपातज्वरसे आक्रांत होता है तो पहले तो उसके कमरेकी सारी खिड़कियां—सर्दीके दिनोंमें भी—खोल दीजिए, इसके बाद प्राकृतिक स्नान कराकर वायु-प्रकाशका स्नान कराइए और रोगी चलने लायक हो तो तेजीसे टहलाकर, नहीं तो कंबल ओढ़ाकर शरीरमें गरमी लानेकी कोशिश कीजिए। वायु-प्रकाश-स्नान हर मौसममें कई बार चलाया जा सकता है। यह भरसक मैदानमें ही होना चाहिए, अगर यह संभव न हो तो कमरेमें ही चलाइए। इसका लाभ तुरंत देख पड़ता है। समय १५ मिनटसे लेकर कई घंटोंतक हो सकता है। समय जितना अधिक होगा उतना ही अधिक लाभ होगा। पेड़परकी गीली पट्टी विशेप लाभदायक होती है। यह नाभिसे गरमी खींचकर वहांके विजातीय द्रव्यको छिन्न-भिन्न कर देती है। आहारसंबंधी नियमोंका पालन तो किया ही जाना चाहिए। यथासंभव खुली हवामें रहना अच्छा होता है।

विसूचिकाका उपचार भी इसी प्रकार होता है। विसूचिका तथा अन्य सभी तीव्र और जीर्ण रोगोंमें यह लाभदायक होती है; क्योंकि यही स्थान ज्वर तथा अन्य रोगोंका केन्द्र होता है। मसूरिका, वातकफज्वर, श्वसनक सन्निपात आदिमें भी यही उपचार चलाया जाय। अगर रोग जीर्ण (नाड़ीरोग, क्षय,

शोथ या इस प्रकारका कोई दूसरा रोग) है तो प्रकृतिके इन्हीं उपायोंका अवलंबन किया जाय और बरसेतक इन्हें चलाया जाय। क्षय तथा अन्य फुफ्फुसीय रोगोंमें मिट्टीकी पट्टी सीनेपर, शोथ (जलोदर) में सूजे हुए स्थानपर, पेटकी खराबीमें पेड़पर और यौन रोगोंमें पेड़ू और जननेंद्रियपर लगाई जाती है।

फोड़ा आदि चर्मरोगोंमें तो मिट्टीकी पट्टी ही मुख्य उपचार है, पर इनमें भी सारे शरीरके उपचारपर ध्यान देना चाहिए। अस्वस्थताकी तथा अच्छी हालतमें भी दोपहरतक कुछ न खाना लाभदायक होता है। अगर लाचारी हो तो प्रातःकाल अत्यल्प मात्रामें ही कुछ खाया जा सकता है।

रुग्ण होनेपर सब लोग चारों ओरसे तरह-तरहके अप्राकृतिक उपाय और दवाएं बतलाने लगते हैं, पर ये सभी निरर्थक ही नहीं होते, अपने साथ कुछ बुराई भी लाते हैं; इसलिए चाहे जैसी भी स्थिति हो केवल प्राकृतिक उपचारका सहारा लीजिए।

अगर संयोगवश आशाके अनुरूप बहुत जल्द सुधार न देख पड़े तो भी शांति और धैर्य बनाये रखें, घबड़ाकर अप्राकृतिक उपचारोंका प्रयोग न करने लगें। अप्राकृतिक उपचारोंसे सच्ची सफलता कभी प्राप्त नहीं हो सकती, न जाननेके कारण हम इनसे अपना बहुत बड़ा नुकसान कर लेते हैं।

औषधविज्ञान संक्रामक रोगोंका हौवा है और उसने सर्वत्र इसका आतंक फैला रखा है, पर जब हम इन भयंकर रोगोंसे भी छुटकारा पा जाते हैं तो इनसे डरनेका कोई कारण नहीं रह जाता। जो हमारी प्राकृतिक उपचारपद्धतिका अनुयायी है उसके दिमागसे तो सारे असाध्य और संक्रामक रोगोंका भय

दूर हो ही जाना चाहिए। इस भयसे वहुत वड़ा नुकसान हुआ करता है।

इसी सरल, एकरूप प्राकृतिक विधिसे लोग अपने स्वास्थ्यकी चिंता और औषधोपचारक वर्गसे मुक्ति लाभ कर सकते हैं। इस प्रकार लोगोंको अपने स्वास्थ्यपर, जो सर्वाधिक मूल्यवान् भौतिक संपत्ति है, पूर्ण अधिकार प्राप्त हो सकता है और अयोग्य, उत्पीड़क औषधोपचारकोंकी दासतासे मुक्ति मिल सकती है।

मानवजाति स्वतंत्रतारूपी वहुमूल्य वरदानके लिए वरावर संघर्ष और युद्ध करती रही है। क्या वह अपने शरीर, अपने स्वास्थ्यके संबंधमें स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न नहीं करेगी ?

प्राकृतिक चिकित्सा क्या है ?

रोज-ब-रोज डाक्टरोंकी तादाद बढ़ रही है और साथ-साथ अनगिनत औषधियोंकी। इनके ईजाद करनेवाले दूकानदार हर दवाके रामवाण होनेका दावा करनेमें कोई कोर-कसर नहीं करते। फिर भी जन-साधारणका स्वास्थ्य उन्नत हुआ नहीं जान पड़ता। आंख उठाकर देखिये तो हर आदमी आपको किसी-न-किसी रोगके चंगुलमें फंसा मिलेगा। इससे साबित होता है कि दवाएं आदमीको न तंदुरुस्त रख सकती हैं न कर सकती हैं। उसके लिए तो सीधा और एक ही जरिया है कि हम जिंदगीमें कुदरती तरीका अपनाएं।

प्राकृतिक चिकित्सकोंने तजुरबेसे जाना है कि रसायन और दवाएं रोगको अच्छा करना तो दूर रहा उल्टे रोगको—उसके कुछ लक्षणोंको—कुछ वक्तके लिए दूर करके, बाहर निकलते हुए रोगको शरीरके भीतर दबा देती हैं। जिसे हम रोग समझते हैं वह दरअसल अंदर छिपे हुए रोगके बाहरी लक्षणमात्र हैं। जैसे गांवमें कूड़ा-कचरा इकट्ठा होकर बीमारी फैलाता है वैसे ही शरीरकी गंदगी निकल न पानेपर अंदर सड़ने लगती है। वही गंदगी सब रोगोंकी जड़ है।

कुदरती इलाज गंदगीको शरीरसे निकाल फेंकनेमें पूरी मदद पहुंचाता है और मनुष्यको स्वस्थ, सशक्त एवं सतेज बनाता है।

कुदरती इलाजके मददगार हैं

उपवास, फलाहार, संतुलित भोजन, पानी, मिट्टी, धूप, प्राणायाम, आसन, कसरत और मालिश वगैरह। जिनसे रोग दबते नहीं बल्कि जड़से नेस्त-नाबूद होते हैं।

'आरोग्य-मंदिर' गोरखपुरमें